BAED-04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शिक्षा और विकास

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शिक्षा और विकास

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

संयोजक/सदस्य

संयोजक

डॉ. कीर्ति सिंह

सह आचार्या, शिक्षा

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. आर. पी. श्रीवास्तव (से.नि.**)**

जामिया मिलिया इस्लामिया नई दिल्ली

प्रो. सी. बी. शर्मा

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

नई दिल्ली

प्रो. अनिल शुक्ला

लखनऊ विश्वविद्यालय

लखनऊ (उ.प्र.)

डॉ. दामीना चौधरी (से.नि.) सह-आचार्य, शिक्षा

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संपादक एवं पाठ लेखक

संपादक

प्रो.रीटा अरोड़ा

शिक्षा विभाग,राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर

सहसम्पादक

डॉ.कीर्ति सिंह

सहायक आचार्या,शिक्षा

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालयी,कोटा

पाठ लेखक

प्रो.विजय लक्ष्मी शर्मा(से.नि.**),**

एस. एस. जी. पारीक टी. टी. कॉलेज, जयपुर

डॉ. अलका पारीक

व्याख्याता, एस. एस. जैन सुबोध महिला टी. टी. कॉलेज, जयपुर

डॉ.निधि शर्मा

प्राचार्य, एस. के. डी. टी. टी. कॉलेज, जयपुर

डॉ.सुधीर रूपानी

व्याख्याता, राजकीय उच्च अध्ययन संस्थान, बीकानेर

डॉ.सुषमा सिंह

व्याख्याता, जे. एल. एन. टी. टी. कॉलेज, जयपुर

डॉ.लीलेश गुप्ता

प्राचार्य जे. एल. एन. टी. टी. कॉलेज, जयपुर

डॉ.यदु शर्मा

प्राचार्य,एस. एस. जैन सुबोध महिला टी. टी. कॉलेज जयपुर

डॉ. उषा पाटनी

निम्बार्क टी. टी. कॉलेज, उदयपुर

डॉ.प्रीति सिंह

व्याख्याता, जयपुर नेशनल विश्वविद्यालय,जयपुर

डॉ. अरुणा चौहान

प्राचार्य, मीरा टी. टी. कॉलेज, जयपुर

डॉ. अंजना व्यास

व्याख्याता, जे. एल. एन. टी. टी. कॉलेज, कोटा

डॉ.कीर्ति सिंह सहायक आचार्य,शिक्षा

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालयी, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,

रावतभाटा रोड, कोटा

प्रो. (डॉ.) एम. के. घडोलिया

निदेशक(संकाय)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,

रावतभाटा रोड, कोटा

योगेन्द्र गोयल

प्रभारी(एम.पी.डी.)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,

रावतभाटा रोड, कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

श्री योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

Print:- Feb 2012 ISBN. 13/978-81-8496-307-6

सर्वाधिकार सुरक्षित- इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी' (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

कुलसचिव द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

शिक्षा और विकास

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	भारतीय समाज और शिक्षा का विकास	8–23
2	भारत में शिक्षा और प्रजातांत्रीकरण	24–42
3	भारत में शिक्षा और आधुनिकीकरण	43–53
4	भारत में शिक्षा तथा आर्थिक का विकास	54–62
5	भारत में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण और शिक्षा	63–75
6	भारतीय राजनीति और शिक्षा	76–96
7	शिक्षा और शैक्षिक प्रबन्धन	97–118
8	शिक्षा और सूचना क्रान्ति	119–129
9	शिक्षा का भविष्य शास्त्र	130–144
10	शिक्षा और स्त्रियों की प्रस्थिति/स्त्री शिक्षा और लैंगिक असमानता	145–162
11	जनसंख्या शिक्षा	163–180
12	पर्यावरण शिक्षा	**181–191**
13	भारत में तकनीकी शिक्षा	192–198
14	शिक्षा एवं विकसित होती सामाजिक असमानता	199-213
15	विज्ञान और प्रौद्योगिक युग मे शिक्षा	214-228

इकाई - 1

भारतीय समाज और शिक्षा का विकास

इकाई की संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 वैदिक काल में शिक्षा

1.3 बौद्ध काल में शिक्षा

1.4 मध्यकालीन भारत में शिक्षा का विकास

1.5 आधुनिक भारत में शिक्षा (स्वतन्त्रता से पूर्व)

1.6 सारांश

1.7 मूल्यांकन प्रश्न

1.6 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई की सम्पूर्ति पर विद्यार्थी निम्न जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

- प्राचीन भारत में शिक्षा का विकास वैदिक काल के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों में हुआ, से अवगत हो सकेंगे ।
- प्राचीन भारत में शिक्षा का विकास को समझ सकेंगे ।
- वैदिक कालीन तथा बौद्ध कालीन शिक्षा के सिद्धांतों से अवगत होंगे
- मध्यकालीन भारत में शिक्षा का विकास, मकतब एवं मदरसों की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मध्यकाल में शिक्षा का उद्देश्य मुस्लिम धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना था, समझ सकेंगे ।
- पूर्व स्वतन्त्रता काल के विकास ईस्ट इण्डिया कम्पनी, कलकत्ता मदरसा, संस्कृत शिक्षा बनारस तथा मिशनरियों के प्रयास द्वारा तथा मैकाले व वुड के घोषणा पत्र की सिफारिशों के आधार पर हुआ था, इसको सही प्रकार से समझ कर आपस में अन्तर कर सकेंगे ।
- आधुनिक काल में भारत का शिक्षा का विकास संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या कर सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज में रहता है उसी में उम्र का विकास होता है। मनुष्य ने धरती पर जब से पदार्पण किया तब ही से धीरे-धीरे मानव विकास की चार अवस्थाओं को पार करते हुये उम्र ने समाज का गठन किया और वे चार अवस्थायें है । आखेट अवस्था, पशुपालन अवस्था, कृषि अवस्था तथा औद्योगिक अवस्था । शुरू में मानव आखेट

करके पेट भरता था, धीरे-धीरे उम्र ने पशुओं को मारने की जगह उन्हें पालना भी शुरू कर दिया। और उसके लिये उन्हें पानी की जगह रहना भी जरूरी हो गया, व पशुओं की तरह झुण्ड में रहना भी । इसी तरह धीरे-धीरे वे लोग कृषि करने लगे और उनके पारिवारिक सम्बन्ध एवं रक्त सम्बन्ध भी विकसित होने लगे । अब समस्या यह थी कि बच्चों को शिक्षा देने का कार्य कौन करे और यह कार्य कुछ लोगों को दिया गया वही से शिक्षा प्रारम्भ होता है । जबकि हमें शिक्षा का उल्लेख पूर्ण पाषाण काल में भी प्राप्त होता है लेकिन विधिवत औपचारिक रूप से शिक्षा कृषि काल के अन्त तक अच्छी तरह विकसित हुई तथा तब से लगातार प्रगति के पथ पर अग्रसर है । लेकिन भारत में तो शिक्षा का प्रारम्भ उस आदिकाल में हुआ था, जब विश्व के अन्य देशों के निवासी पशुवत जीवन यापन कर रहे थे । कुछ इतिहासकारों का विचार है कि भारत में शिक्षा का प्रारम्भ आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व हुआ था । प्राचीन भारत में मुनियों एवं महर्षियों ने सभ्यता के ऊषा काल में ही शिक्षा के महत्त्व को समझ लिया था कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति, मानव जाति, समाज एवं देश का कल्याण संभव है । इस दृष्टिकोण से अनुप्रमाणित होकर मुनियों एवं महर्षियों ने देश में शिक्षा की समुचित व्यवस्था की थी । शिक्षा की यह व्यवस्था पूर्णत: भारतीय थी । इसी प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था ने शताब्दियों तक भारतीय वैदिक संस्कृति एवं साहित्य को संरक्षित रखा था । इसके साथ ही दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विविध शास्त्रों के ज्ञान क्षेत्र में ऐसे मौलिक विचारक तथा मनीषी उत्पन्न करने में भी सफल सिद्ध हुई थी, जिससे आज भी हमारा देश गौरान्वित है । इस सम्बन्ध में थॉमस ने लिखा है किशिक्षा - भारत में विदेशी नहीं है । कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ उत्पत्ति के समय से इतनी जल्दी ज्ञान के प्रति प्रेम हुआ हो या इसने इतना स्थायी और सशक्त प्रभाव डाला हो । वैदिक काल के सामान्य कवियों से लेकर आजकल के बंगाली दार्शनिक तक शिक्षकों एवं विद्वानों का अटूट क्रम भारत में मिलता है ।

1.2 वैदिक काल में शिक्षा

वैदिक काल में शिक्षा से अभिप्राय वेदकालीन शिक्षा से है क्योंकि वैदिक शिक्षा मूलत: वेदों -ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद पर आधारित थी । इस काल की शिक्षा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेद ही एक मात्र स्त्रोत थे । वेदों में शिक्षा शब्द का प्रयोग विद्या, ज्ञान, बोध और विनय आदि अर्थों में हुआ है । सायण ने ऋग्वेद भाष्य-भूमिका में लिखा है, जो स्वर, वर्ण मात्रा आदि के उच्चारण-प्रकार का उपदेश दे, शिक्षा दे, वही शिक्षा है ।

प्राचीन भारत में शिक्षा का विकास केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए नहीं हुआ था अपितु धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त करने का सतत प्रयास भी था । शिक्षा धर्म का एक अंग थी इसीलिए जीवन की समस्त क्रियायें धर्म का अनुसरण कर एक मात्र गन्तव्य मोक्ष की ओर अग्रसर हुई थी । क्योंकि मोक्ष प्राप्त करना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य था । इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर शिक्षा के उद्देश्यों एवं आदर्शो का वर्णन अल्तेकर इस प्रकार किया है- "ईश्वर-भक्ति की भावना एवं धार्मिकता का समावेश, चरित्र का निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक कर्त्तव्यों का समझना, सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार" ।

इस तरह वैदिक शिक्षा के उद्देश्य निम्न प्रकार हुये-

1. ईश्वर भक्ति की भावना एवं धार्मिकता का समावेश
2. चरित्र-निर्माण
3. व्यक्तित्व का विकास
4. नागरिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों की समझ
5. सामाजिक कुशलता की उन्नति
6. राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार

वैदिक काल में शिक्षा व्यवस्था

प्राचीन भारत में मुनियों व महर्षियों ने शिक्षा की समुचित व्यवस्था की थी । यह शिक्षा दो रूपों में उपलब्ध थी-

1 प्रारम्भिक शिक्षा 2 उच्च शिक्षा

1 प्रारम्भिक शिक्षा

इस समय बालको को घर में ही शिक्षा दी जाती थी जब बच्चा 5 साल का हो जाता था तब उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का शुभारम्भ "विद्यारंभ संस्कार" से होता था यह संस्कार कुलपुरोहित द्वारा सम्पन्न करवाया जाता था । बालक को स्नान करा कर नवीन वस्त्र धारण कराकर कुलपुरोहित के सामने बिठाया जाता था फिर उसके सामने नवीन वस्त्र बिछाकर उम्र पर चावल बिछा दिये जाते थे उसके बाद मन्त्र उच्चारण पूजा अर्चना की जाती थी । उसके उपरान्त कुलपुरोहित बालक की उंगली पकडकर बिछे हुये चावलो पर अक्षर बनाना सिखाते थे यही से बालक की शिक्षा प्रारम्भ होती थी । प्रारम्भिक शिक्षा का काल अल्तेकर के अनुसार छः साल माना गया है । माताओं द्वारा बच्चों को सर्वप्रथम कुछ वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करना सिखाया जाता था तथा उन्हे कण्ठस्थ करने को कहा जाता था, तत्पश्चात् पढ़ने लिखने की शिक्षा दी जाती थी । इसमें प्रारम्भिक भाषा ज्ञान, प्रारम्भिक व्याकरण एवं छन्दशास्त्र और व्यावहारिक गणित की शिक्षा दी जाती थी । कहानियों द्वारा बालक की कल्पना शक्ति का विकास व चरित्र निर्माण किया जाता था ।

2 उच्च शिक्षा

वैदिक कालिन शिक्षा का श्री गणेश 5वी शताब्दी पूर्व से ही माना जाता है । यही से उच्च शिक्षा का प्रारम्भ होता है ।

प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त बालक गुरूकुल में प्रवेश करने के सुयोग्य हो जाता था । शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के बालक का पढ़ने पूर्व उन्नयन संस्कार आवश्यक था ।

वैदिक कालीन शिक्षा में साहित्य एवं धर्मशास्त्र अध्ययन की अवधि 10 वर्ष थी । एक वेद के अध्ययन की अवधि 12 वर्ष और चार वेदों में 48 वर्ष का समय लगता था । एक वेद के जानने वाले को स्नातक, दो वेदों के जानने वाले बसु, तीन वेदों को जानने वाले को रूद्र और चार वेदों के ज्ञाता का आदित्य कहा जाता है ।

वैदिक कालीन शिक्षा में दो प्रकार का पाठ्यक्रम था पराविद्या और अपराविद्या, पराविद्या में वेद, पुराण, उपनिषद आदि आध्यात्मिक विषयों और अपराविद्या में इतिहास, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, औशधिशास्त्र, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, धनुर्विद्या आदि लौकिक विषय सम्मिलित थे ।

वैदिक काल में मौखिक रूप से शिक्षा दी जाती थी । मौखिक विधियां जिसमें छात्र उच्चारण अनुकरण करने कण्ठस्थ करते थे इसके बाद मनन चिन्तन और स्वाध्याय करते थे । इसके अलावा व्याकरण प्रश्नोतर वाद-विवाद आदि विधियों का प्रयोग किया जाता था ।

वैदिक काल में सत्र का प्रारम्भ श्रावण मास की पूर्णिमा को और पाश मास की पूर्णिमा को होता था । शिक्षा के प्रमुख केन्द्र तक्षशिला, पाटलीपुत्र, मिथिला कन्नोज थे इस काल में सैनिक शिक्षा और स्त्री शिक्षा का प्रचलन था । सैनिक शिक्षा तथा चिकित्सा शिक्षा की भी समुचित व्यवस्था थी।

स्वमूल्यांकन के प्रश्न:-

1 वैदिक कालीन शिक्षा के केन्द्र कौन-कौन से हैं ।

2 वैदिक शिक्षा में कौन-कौन सी शिक्षण विधियाँ काम ली जाती थी ।

1.3 बौद्ध काल में शिक्षा

बौद्धकालीन शिक्षा - लगभग 600 ई.पू. से 1200 ई. पू. तक का समय बौद्धकाल का कहा जाता है । महात्मा बुद्ध के द्वारा बौद्धधर्म का प्रचलन था । महात्मा बुद्ध ने जातिगत भेद-भावों को मिटा सभी वर्गों में अपने धर्म का प्रचार किया । इसका प्रभाव भारतीय शिक्षा पर भी पड़ा । परिणामस्वरूप एक नई शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ । जिसे बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली की संज्ञा दी जाती है ।

महात्मा बुद्ध ने जातिगत भेदभावों से अलग अपने धर्म का प्रचार किया जिसमें मठों में भिक्षुओं द्वारा सब प्रकार की शिक्षा दी जाती थी ।

– शिक्षा के उद्देश्य

इस काल के शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य थे

- बौद्ध धर्म का प्रचार करना
- निर्वाण प्राप्ति
- चारित्रिक विकास
- सांसारिक जीवन की तैयारी
- संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार

शिक्षा दो भागों में बांटी गई थी प्रारम्भिक शिक्षा और उच्च शिक्षा ।

प्रारम्भिक शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था बौद्ध मठों में थी । वह जनसाधारण के लिये भी उपलब्ध थी । मठों में प्रवेश के समय पबज्जा संस्कार होता था उम्र का अर्थ था बालक ने अपने परिवार से अलग होकर बौद्ध मठ में प्रवेश ले लिया है । इसके लिए माता-पिता की अनुमति आवश्यक होती थी । प्रवेश के उपरान्त बालक नवशिष्य या भिक्षु कहलाता था । महावग्गा में पबज्जा संस्कार का उल्लेख इस प्रकार मिलता है-बालक अपने सिर के बाल मुडाता था । पीले वस्त्र

धारण करता था । मठ के भिक्षुओं के चरणों में माथा टेकता था और फिर पालथी मारकर बैठ जाता था । मठ के प्रमुख भिक्षु उम्रसे तीन बार कहलाता था । "बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि" । इसके बाद उनको अच्छे आचरण की शिक्षा दी जाती थी-

बौद्धकाल में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार चाण्डालों को छोड़कर सबको प्राप्त था । प्रारम्भिक शिक्षा की आयु 6 वर्ष चलती थी । बालक को प्रथम 6 माह में सिद्धिस्तु नाम की बालपांथी पढ़ाई जाती थी । 16 माह बाद पांच विधाओं की शिक्षा दी जाती थी । शब्द विद्या, तर्क विद्या, चिकित्सा विद्या, आध्यात्म विद्या और शिल्प व कला विद्या । शिक्षण विधि प्राय: मौखिक थी इस समय शिक्षा का माध्यम पाली था ।

उच्च शिक्षा

बौद्ध मठों या विहारों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश के नियम अत्यन्त कठिन थे । शिक्षार्थी को बौद्ध संघ के 10 भिक्षुओं के समक्ष उपस्थित होकर उनके प्रश्नों के उत्तर देने होते थे । उनके उत्तरों को सुनने के बाद बहुमत से यह निर्णय लिया जाता था कि शिक्षार्थी को प्रवेश दिया जाये या नहीं । प्रवेश के अनुमति मिल जाने पर शिक्षार्थी का उपसम्पदा संस्कार होता था । उपसम्पदा के उपरान्त वह भिक्षु कहलाता था शिक्षा समाप्ति अथवा जीवन भर भिक्षु ही रहता था । लौकिक तथा धार्मिक दोनों प्रकार का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता था । शिक्षक सामान्य अर्थ को स्पष्ट करके उसके सूक्ष्म विवेचन कर पढ़ाते थे बौद्ध काल में अनुशासन पर विशेष बल दिया जाता था । बालकों को प्रथम 8 माह में सिद्धिरस्तु नाम की बालपोथी पढ़ायी जाती थी और 16 माह के पश्चात् शब्द विद्या, तर्क विद्या, चिकित्सा विद्या, आध्यात्म विद्या, शिल्प एवं कला की विद्या दी जाती थी । शिक्षण विधि मौखिक थी और शिक्षा का माध्यम पाली भाषा थी ।

प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य केन्द्र बौद्धमठ था, वल्लभी विक्रमशिला आदि केन्द्र थे ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 बौद्ध कालीन शिक्षा का माध्यम क्या था?

2 बौद्ध कालीन शिक्षा कहाँ दी जाती थी?

1.4 मध्यकालीन भारत में शिक्षा का विकास

मुस्लिम शासकों ने अपने शासन को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए इस्लामी शिक्षा एवं संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार किया । इसके लिए अधिकांश मुस्लिम शासकों ने प्राचीन शिक्षा केन्द्रों एवं पुस्तकों को जलाया और उनके स्थान पर मकतब और मदरसों का निर्माण कराकर इस्लाम धर्म का प्रचार प्रसार साधन बनाया ।

भारत में लगभग 550 वर्ष के मुस्लिम शासन काल में विभिन्न शासक रहे थे । सभी ने अपनी-अपनी आकांक्षाओं और परिस्थियों के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये । कुछ शिक्षा-प्रेमी शासकों का लक्ष्य देश में राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक समन्वय स्थापित करके एक नवीन राष्ट्र का निर्माण हेतु प्रसार करना था ।

मध्यकालीन शिक्षा के उद्देश्य

- ज्ञान का प्रसार करना
- इस्लाम धर्म का प्रचार करना था
- विशिष्ट नैतिकता का समावेश
- सांसारिक वैभव को प्राप्त करना
- धार्मिक कट्टरता का समावेश
- मुस्लिम श्रेष्ठता की स्थापना ।

शिक्षा व्यवस्था

मध्यकालीन शिक्षा मकतबों और मदरसों में व्यवस्थित थी । मकतब प्रारम्भिक और मदरसो उच्च शिक्षा के केन्द्र थे । मुस्लिम शासकों, धनी व्यक्तियों एवं विद्या-प्रेमियों ने मस्जिदों से जुड़े हुए मकतब और मदरसे स्थापित किये थे ।

प्रारम्भिक शिक्षा -मकतब

बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा मकतबों में दी जाती थी । मकतब अरबी भाषा के कुतुब शब्द से बना है, जिसका अर्थ है-लिखना । इस प्रकार मकतब का अभिप्राय उम्र स्थान विशेष से है, जहाँ लिखना सिखाया जाता है । केई ने लिखा है- प्राय: मस्जिद से जुड़ा हुआ मकतब प्राथमिक विद्यालय है जिसका मुख्य कार्य बालको को कुरान के उन अंशों की शिक्षा देना था , जिन्हे धार्मिक कार्यों और उनकी आस्थाओं को पूर्ण करने की दिशा में मन से जानने की अपेक्षा की जाती है । मकतबों में बालकों के प्रवेश की एक विशेष विधि थी, जिसे बिस्मिला यानी संस्कार कहा जाता था। जब बालक चार वर्ष, चार माह और चार दिन का हो जाता था उस दिन बालक के सभी सम्बन्धी जन एकत्रित होते थे और बालक को नवीन वस्त्र पहनाये जाते थे । फिर उसके सामने लिपि, कुरान की भूमिका और उम्रका 55वाँ और 87वाँ अध्याय रखा जाता था । इसमें दो प्रकार का पाठ्यक्रम होता था एक जनसाधारण के लिये और दुसरा शहजादों के लिये

उच्च शिक्षा-मदरसा

मदरसों में उच्च शिक्षा की व्यवस्था की और मदरसे प्राय: किसी मस्जिद से जुड़े होते थे । मदरसा शब्द अरबी शशा दरस (Dars) शब्द से सम्बन्धित है जिसका अभिप्राय है -भाषण देना । अत: मदरसा वह स्थान कहलाता है जहाँ भाषण दिये जाते है । डा. केई का मत है- "मदरसे उच्च शिक्षा के स्कूल थे व सामान्यतया मस्जिदों और दरगाओं से जुड़े थे । उनमें से कुछ विश्वविद्यालय के स्तर के अनुरूप उन्नति कर गये थे । मदरसों में शिक्षा 10 से 12 वर्ष तक होती थी । इसमें दो प्रकार का पाठ्यक्रम होता था" । 1 लौकिक 2 धार्मिक

लौकिक शिक्षा -इसके अंतर्गत अरबी एवं फारसी भाषाओं का साहित्य एवं व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, कानून, ज्योतिष, इतिहास, यूनानी शिक्षा और कृषि प्रमुख थे ।

धार्मिक शिक्षा- इसके अंतर्गत इस्लाम धर्म की शिक्षा दी जाती थी जिसमें कुरान का गहन अध्ययन, कुरान के शिष्य और मोहम्मद साहब के परम्परा एवं इस्लामी कानून आदि शामिल थे।

शिक्षा का माध्यम फारसी था । अरबी का अध्ययन अनिवार्य था । मौखिक शिक्षण विधि और रटने को विशेष पर जोर दिया जाता था । शिक्षक का समाज में उच्च स्थान था

यद्यपि उम्रका वेतन अल्प था तथापि उम्रको सार्वजनिक सम्मान और विश्वास प्राप्त था । छात्र और शिक्षक सम्बन्ध मधुर था । कठोर दण्ड की व्यवस्था थी अत: अनुशासनहीनता उच्चश्रृंखलता के उदाहरण नहीं मिलते थे । चरित्रवान, अध्ययनशील छात्रों को पुरस्कार दिये जाते थे । सैनिक शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा ललित कला का उल्लेख मिलता है । स्त्री शिक्षा का भी उल्लेख मिलता है किन्तु पर्दा प्रथा के कारण स्त्री शिक्षा कम विकसित हुई ।

शिक्षा के प्रमुख केन्द्र - दिल्ली, आगरा, लाहौर, स्यालकोट, मुल्तान, जालंधर, अजमेंर, मालवा, गुजरात, अहमदाबाद, हैदराबाद, लखनऊ आदि थे ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 भारत में मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली की विशेषताएँ बताइए?

2 मकतब और मदरसों से क्या अभिप्राय: है?

1.5 आधुनिक भारत में शिक्षा (स्वतन्त्रता से पूर्व)

स्वतंत्रता पूर्व शिक्षा का विकास

भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से कई व्यापारिक कम्पनियाँ आईं जिनमें ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा 1600 से 175 7तक बहुत सारे कार्य किये गये जिनमें शैक्षिक गतिविधियाँ विशेष महत्व रखती है । अंग्रेज व्यापारियों ने जहांगीर से अनुमति लेकर सूरत में पहली कोठी स्थापित की यह पूर्णतया: व्यापारिक कम्पनी थी लेकिन इसने ईसाई धर्म के प्रचार प्रसार का काम किया । इन्होंने कुछ लोगों को ब्रिटेन में धार्मिक शिक्षा प्रास करने भेजा और 1936 में ओक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अरबी विभाग की स्थापना की । 1698 में कम्पनी के आज्ञा पत्र के अनुसार प्रत्येक कारखाने में धर्म गुरू रखे जाये और दूसरा प्रत्येक किले और छावनी में विद्यालय खोले जाये । इस तरह 1715 से 1731 के मध्य मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, तंजौर और कानपुर में धार्मिक स्कूल खोले गये । 1781 में बंगाल के गर्वनर वारेन हेस्टिंग्स ने कलकत्ता के मुस्लमानों की सद्भावना प्राप्त करने कलकत्ता मदरसा की स्थापना की इसमें दर्शन, गणित, तर्कशास्त्र, ज्योतिष आदि विषय अरबी में पढ़ाये जाते थे । 1791 में बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना की गई जिसका कारण-

जोनसन डंकन के शब्दों में "प्रथम तो हिन्दू हमसे हमारी संस्कृति से प्रेम करने लगेंगे दूसरे इससे हिन्दू धर्म और परम्पराओं की रक्षा होगी और न्यायाधीशों की सहायता के लिये योग्य हिन्दू उपलब्ध हो सकेंगे इसमें धर्म शास्त्र, चिकित्साशास्त्र, ज्योतिष और हिन्दू कानून की शिक्षा दी जाती थी" । यहाँ शिक्षा का माध्यम संस्कृत था ।

1813 के आज्ञापत्र के आधारपत्र के अनुसार मिशनरियों को भारत में शिक्षा के प्रसार की स्वतंत्रता मिली । इसकी जिस धारा ने भारत में राज्य शिक्षा पद्धति की नींव डाली वह थी - "कम से कम एक लाख रूपया प्रतिवर्ष साहित्य के पुनरूत्थान व उन्नति, भारतीय विद्वानों के प्रोत्साहन एवं ब्रिटिश भारत के निवासियों में विज्ञान की शिक्षा व उसकी उन्नति पर ही लगाया जाये ।'' मिशनरियों ने खूब उत्साह से शिक्षा का कार्य प्रारम्भ किया । राजकीय व व्यक्तिगत दोनों प्रकार के शिक्षा, संगठन स्थापित हुये । आज्ञापत्र में धनराशि खर्च करने की विधि स्पष्ट

नहीं थी । अत: विवादास्पद स्थिति उत्पन्न हो गई, और यह दस्तावेज आशा से अधिक निराशाजनक प्रमाणित हुआ ।

1813 से 1833 तक का समय विवाद का ही रहा इसमें कोई विशेष प्रगति नहीं हुई । क्योंकि प्राच्य व पाश्चात्य शिक्षाविदों में संघर्ष पैदा हो गया ।

मैकाले का मानना था कि मातृ भाषा के माध्यम से बौद्धिक सुधार नहीं हो सकता है । उन्होंने अंग्रेजी भाषा के लिये कहा कि इस भाषा में श्रेष्ठ रचनायें हैं अन्य कोई साहित्य इसकी बराबरी नहीं कर सकता है । इसमें तत्व मीमांसा, सदाचार, शासन न्याय शास्त्र पर अत्यन्त गंभीर परिकल्पनायें हैं ।

उसके बाद एडम्स रिपार्ट (1835-1838) की सिफारिसों में स्कूलों की स्थापना तथा परीक्षा प्रणाली में प्रयोगात्मक कार्यों का महत्व विशेष रहा । इसमें यह सिफारिश की गई शिक्षको के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये और प्रशिक्षण हेतु नार्मल स्कूलों की स्थापना की जाये स्कूलों को आर्थिक सहायता दी जाये एवं विद्यालय हेतु भूमि आवंटित की जाये ।

1854 में सर चार्ल्स वूड के आज्ञापत्र में शैक्षिक नीति, शैक्षिक प्रशासन, शैक्षिक विकास पर विशेष ध्यान दिया तथा शिक्षा के उद्देश्य राजकीय कर्मचारियों की पूर्ति करना तथा अंग्रेजी माध्यम और पाठ्यक्रम में यूरोपियन ज्ञान का प्रसार करना प्रमुख था । इन्होंने सामान्य शिक्षा के विकास का विशेष ध्यान रखा तथा इसका उत्तरदायित्व लोक शिक्षा विभाग को दे दिया गया और विश्वविद्यालय शिक्षा स्थापना लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मानकर की जाये । इन्होंने जनशिक्षा, स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया इसके लिये शिक्षा को रोजगार से जोड़ना और सहायता-अनुदान प्रणाली का समर्थन किया ।

भारतीय शिक्षा आयोग 1882 के सुझाव एवं संस्तुतियों में प्रशासन, शिक्षक प्रशिक्षण, वित्त तथा देशी विद्यालयों के द्वारा माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में धार्मिक, मुस्लिम, स्त्री शिक्षा एवं हरिजनों तथा पिछडी जातियों की शिक्षा में ईसाई मिशनरियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही । लार्ड कर्जन के शैक्षिक सुधार में विश्वविद्यालयों में सुधार हेतु समिति का गठन किया गया ।

राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के द्वारा राष्ट्रीय चेतना का विकास करने के लिये राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना कर राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति की गई 1910 में गोखले बिल द्वारा अनिवार्य शिक्षा को लागु किया गया । वर्धा शिक्षा योजना में डॉ. जाकिर हुसैन समिति में बुनियादी शिक्षा को बढ़ावा दिया ।

हर्टाग समिति 1929 तथा ऐबट एवं वुड रिपोर्ट 1936-37, सार्जेण्ट योजना 1944 द्वारा उच्च शिक्षा की प्रगति के लिये सभी प्रकार की शिक्षा को बढ़ावा दिया गया और व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 लार्ड मैकाले के विवरण पत्र पर 1 0पंक्तियाँ लिखिये?

2 वुड का आज्ञा पत्र क्या था?

3 एडम्स रिपोर्ट के बारे में बताइये?

1.6 आधुनिक भारत में शिक्षा

ब. स्वतंत्रता पश्चात् शिक्षा का विकास

1947 को स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागु हुआ भारतीय संविधान में शिक्षा के लिये कुछ विशेष प्रावधान रखे गये ताकि देश में शिक्षा का सम्यक विकास हो सके । संविधान में कुछ प्रावधान जैसे शैक्षिक अवसरों की समानता तथा अल्पसंख्यक वर्गों को शैक्षिक सुरक्षा प्रदान करना तथा शिक्षा नीति आदि रखे गये तथा केन्द्र एवं राज्यों के शिक्षा सम्बन्धी दायित्वों का विभाजन, संघ, राज्य तथा समवर्ती सूची में किया गया । संवैधानिक प्रावधानों, देश की परिस्थियों एवं जनसाधारण की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा नीति में व्यापक परिवर्तन करके प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा का पुनर्गठन कर बहुमुखी विकास करने का निश्चय किया इसके लिये समुचित सुझाव प्राप्त करने के लिये विभिन्न समितियों एवं आयोगों का गठन किया ।

सर्वप्रथम राधाकृष्णन आयोग 1948-49 ई. में नियुक्त हुआ था । जिसे विश्वविद्यालय आयोग भी कहा जाता है । इस आयोग के अध्यक्ष डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन बाद में भारत में भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे । आयोग विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए नियुक्त किया गया था । आयोग ने अपनी रिपोर्ट सन् 1948-49 ई. में घोषित की ।

आयोग की मुख्य सिफारिशें -

1 विश्वविद्यालय की शिक्षा का स्तर ऊँचा किया गया । इसके लिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों की छात्र-संख्या कम की जायें इसके शिक्षण को सुधारा जाए तथा उप-कक्षा-प्रणाली को अधिक प्रभावशाली बनाया जाए ।

2 विश्वविद्यालय के शिक्षकों को वेतनमान एवं सेवा की शर्तों आदि में सुधार किया जाए, ताकि योग्य तथा चरित्रवान व्यक्ति शिक्षक के पद पर नियुक्त हो सके ।

3 विश्वविद्यालय के शिक्षकों का वेतनमान एवं सेवा की शर्तों आदि मी सुधार किया जाय, ताकि योग्य तथा चरित्रवान व्यक्ति शिक्षक के पद पर नियुक्त हो सके ।

4 विश्वविद्यालय में अनुसंधान की सुविधाओं को बढ़ाया जाए ।

5 उच्च शिक्षा का माध्यम के लिए किसी प्रादेशिक भाषा का व्यवहार किया जाए । प्रादेशिक भाषाओं का विकास पूर्ण तत्परता से किया जाना चाहिये ।

इसके बाद 23 सितम्बर, 1952 (1952-54) में माध्यमिक शिक्षा आयोग की स्थापना की गई इसके अध्यक्ष लक्ष्मण स्वामी मुदालियर थे । इसलिए इसे मुदालियर आयोग भी कहते हैं । इसके द्वारा माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति जांच करना एवं निम्न बिन्दुओं पर सुझाव देना था-

- माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य संगठन और पाठ्यवस्तु ।
- प्राथमिक, बेसिक और उच्च शिक्षा से इसका सम्बन्ध ।
- विविध प्रकार के माध्यमिक विद्यालय का परस्पर सम्बन्ध ।
- अन्य सम्बन्धित समस्याओं पर अपना सुझाव देना था ।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने वर्तमान माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में निम्नलिखित दोषों का उल्लेख किया

- जीवन से अलग ।
- संकीर्ण व एक पक्षीय ।
- अंग्रेजी शिक्षा माध्यम ।
- दोषपूर्ण शिक्षण विधियां ।
- कक्षाओं में विद्यार्थियो की भीड़ ।
- दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली ।

माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति ने माध्यमिक शिक्षा के प्रशासन एवं वित्त के द्वारा पाठ्यचर्या, छात्र अनुशासन शिक्षक तथा परीक्षा पर नियन्त्रण करते हुये स्त्री शिक्षा, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का विकास करने की सिफारिश की । इस आयोग द्वारा शिक्षण के कार्यों के निर्धारण हेतु स्पष्ट दिशा निर्देश दिये । इस आयोग ने मुख्य रूप से तकनीक शिक्षा पर जोर दिया, इसके अन्तर्गत कताई एवं बुनाई, लकड़ी का काम, धातु का कार्य, बागवानी एवं टेलरिंग आदि शिल्प चुने जिनका काम विद्यालयों में सिखाया जाना था । अर्थात् व्यावसायिक शिक्षा पर पूर्ण जोर दिया ।

भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) का गठन 1964 में हुआ इसके अध्यक्ष प्रो. डी.एस. कोठारी थे इसलिए इसको कोठारी आयोग भी कहते हैं । इस अध्ययन के अलावा 16 सदस्यों की कमेटी थी। इसके सचिव जे.पी. नायक थे । सभी पक्षों का अध्ययन कर रिपोर्ट पेश की । इसके प्रमुख सुझाव थे-

1 शिक्षा व उत्पादकता को बढ़ावा देने वाली हो ।

2 शिक्षा का सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दे ।

3 शिक्षा का आधुनिकीकरण किया जाए ।

4 शिक्षा, सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करें ।

इस आयोग ने 1+02+3 की शिक्षा का भी प्रावधान रखा । इस आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया ।

भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) की सिफारिशों के आधार पर 1968 में प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारित की गई । इस शिक्षा नीति में 17 आधारभूत सिद्धान्तों का निर्धारण किया गया था।

1 नि: शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा

2 शिक्षकों का स्तर, वेतन व शिक्षा - शिक्षकों को स्वतंत्र अध्ययन करने तथा महत्वपूर्ण राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर लिखने व भाषण देने की शैक्षिक स्वतंत्रता की रक्षा की जाए ।

3 भाषाओं का विकास किया जाए - क्षेत्रीय भाषायें, त्रिभाषासूत्र, हिन्दी, संस्कृत व अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं के विकास के लिये विशेष प्रावधान रखे जाए ।

4 शिक्षा के अवसरों की समानता - शिक्षा के अवसरों की सभी को समानता से सुविधा मिली। इसका प्रयत्न किया जायेगा ।

5 प्रतिभा की खोज - छोटी उम्र में ही बालकों की प्रतिभाओं की खोज कर विकास के हर संभव प्रयास किये जाए ।

6 कार्यानुभव व राष्ट्रीय सेवा - कार्यानुभव व राष्ट्रीय सेवा शिक्षा के कार्यक्रमों के स्वावलम्बन, चरित्र निर्माण व सामाजिक संकल्प के विकास पर जोर दिया जायेगा ।

7 विज्ञान शिक्षा तथा अनुसंधान - राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिये विज्ञान की शिक्षा व अनुसंधान को प्राथमिकता दी जायेगी ।

8 कृषि व उद्योगों के लिये शिक्षा- पर भी विशेष बल दिया जायेगा ।

9 पुस्तकों का उत्पादन - पर विशेष बल दिया जायेगा व स्वायत्त पुस्तक निगम की स्थापना पर विचार किया जायेगा ।

10 परीक्षाओं का विश्वसनीय व वैद्यतापूर्ण बनाने का प्रयास किया जायेगा ।

11 माध्यमिक शिक्षा स्तर पर तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा की सुविधायें बढ़ाये जाने की व्यवस्था की जायेगी ।

12 विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार करना, अनुसंधान व प्रशिक्षण के कार्य को बढ़ावा दिया जायेगा।

13 अंशकालीन शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रम का बड़े पैमाने पर विकास किया जायेगा ।

14 साक्षरता व प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों को विस्तृत करने व विकसित करने का प्रयास किया जायेगा ।

15 खेल-कूद तथा शारीरिक शिक्षा को बढ़ावा दिया जायेगा ।

16 अल्पसंख्यकों की शिक्षा को बढ़ाने का हर संभव प्रयास किया जायेगा ।

17 शिक्षा के ढांचे में परिवर्तन कर 10+2+3 की शिक्षा को अपनाना ।

1977 में जनता पार्टी की सरकार ने पर्याप्त विचार-विमर्श के उपरान्त राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979 में 23 शीर्षकों का एक मसौदा लिपिबद्ध किया गया । जिसमें शिक्षा की भूमिका, उद्देश्य, पाठ्यवस्तु, व्यवस्था को सर्वव्यापी प्रारम्भिक शिक्षा के साथ, प्रौढ़ शिक्षा एवं माध्यमिक शिक्षा में आधुनिक विषयों को अनुसंधान के साथ सम्बन्धित करते हुये अध्यापकों की भूमिका के महत्व पर बल दिया गया है ।

इसमें सर्वव्यापी शिक्षा को सभी के लिये कर दिया गया । निर्धन छात्रों को मध्यान्त भोजन, निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें व गणवेश जैसे प्रोत्साहन प्रदान किया जाये । प्रौढ़ों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना, व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहन, तकनीकी शिक्षा व अनुसंधान पर जोर, परीक्षा के साथ आन्तरिक मूल्यांकन आदि पर जोर दिया ।

05 जनवरी 1985 को प्रधानमंत्री ने देश को 21 वीं सदी के लिए तैयार करने को कहा, इसके लिए नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 निर्धारित की गई ।

1986 की शिक्षा नीति को 12 भागों में लिपिबद्ध किया गया था -

1 नई शिक्षा नीति का निर्माण किया जाये व उसे क्रियान्वित किया जाये ।

2 हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा सभी के लिये है । हमारे सर्वांगीण विकास, भौतिक तथा आध्यात्मिकता का यह आधार है । अर्थव्यवस्था के विभिन्न स्तरों के लिये मानव शक्ति को विकसित करती है ।

3 राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का मूलमंत्र एक निश्चित स्तर तक प्रत्येक शिक्षार्थी को बिना किसी जाति, पांति, धर्म, स्थान के एक जैसी शिक्षा प्रदान की जायेगी । सारे देश में एक ही प्रकार की शैक्षिक संरचना 10+2+3 का स्वीकार किया जाये । शिक्षा के लिये सभी सार्थक सहभागिता भी अपेक्षित है ।

4 समानता के लिये शिक्षा को स्वीकार किया गया । अनुसुचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक, विकलांग, महिलाओं, सभी के लिये शिक्षा है ।

5 शिक्षा के जितने भी स्तर हैं उन पर सभी पर शिक्षा का पुनर्गठन किया जाये । बालकों की देखभाल तथा बालकेन्द्रित शिक्षा पर ध्यान दिया जाए । प्राथमिक, माध्यमिक, व्यावसायिक, उच्च शिक्षा, खुला विश्वविद्यालय के विकास की समुचित व्यवस्था ।

6 तकनीकी व प्रबंध शिक्षा की समुचित व्यवस्था के अन्तर्गत नवाचार, शोध और विकास को महत्व दिया गया । सभी स्तरों पर दक्षता तथा प्रभावकारिता बढ़ावा ।

7 शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाने का प्रयास करना ।

8 शिक्षा की विषय-वस्तु व प्रक्रिया को नया मोड़ देना । सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, मूल्यों की शिक्षा के क्रम में, भाषा के विकास, संचार माध्यम व शैक्षिक प्रौद्योगिकी कार्यानुभव, पर्यावरण, विज्ञान व गणित तथा शारीरिक शिक्षा का विकास करना, मूल्यांकन प्रक्रिया व परीक्षा प्रणाली में सुधार करना ।

9 शिक्षकों की भर्ती प्रणाली चयन व योग्यता के आधार पर हो सके । व्यावसायिक प्रमाणिकता की हिमायत करके शिक्षक की प्रतिष्ठा बढ़ाने का प्रयास करना । अध्यापक शिक्षा को बढ़ावा दिया जाये ।

10 शिक्षा की आयोजना व प्रबंधन की व्यवस्था के पुनर्गठन को उच्च प्राथमिकता दी जाये। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड विकास का पुनरावलोकन करेगा । भारतीय शिक्षा सेवा का गठन किया जाये ।

11 शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति से संबंधित अन्य सभी लोगों ने इस बात पर बल दिया कि अगर विकासोन्मुख लक्ष्यों को प्राप्त करना है तो शिक्षा में पूंजी का निवेश अधिक से अधिक हो ।

12 इसका सबसे बड़ा काम है शैक्षिक प्रौद्योगिकी की बुनियाद को सुदृढ़ बनाना । इस बुनियाद को जिससे इस शताब्दी के अन्त तक 100 करोड़ लोग होंगे । अब मानव संसाधन विकास का एक राष्ट्रव्यापी प्रयास पुन: शुरू होना चाहिये, जिससे शिक्षा बहुमुखी भूमिका पूर्ण रूप से निभा सकें ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा के लिए राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में सारे देश में एक प्रकार की शैक्षिक संरचना के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायिक विषयों के पाठ्यक्रम में स्थान दिया तथा मूल्यांकन प्रक्रिया

और परीक्षा में सुधार के प्रयास किये गये । वर्तमान समय में इन्टरनेट ई-लर्निंग, पत्राचार, खुला विश्वविद्यालय के द्वारा अनेक नवीन पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं । वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय इसका ज्वलन्त उदाहरण है ।

इसी क्रम में सन् 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा की गई तथा संशोधित नीति प्रारूप 7 मई, 1992 संसद के दोनों सदनों में रखे गये तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कतिपय संशोधन करके 1992 (POA 1992) की नई शिक्षा नीति बनाई गई । इसमें सम्पूर्ण भारतवर्ष +2 स्तर को स्कूल शिक्षा के अंग के रूप में स्वीकार करने का संकल्प जोड़ा गया । इसमें साक्षरता अभियान पर अधिक जोर दिया गया । शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुनर्गठन किया जाने की बात की । तकनीकी शिक्षा व प्रबंध पर जोर दिया गया ।

इसके बाद शिक्षा में कई प्रकार के सुधार समय-समय पर होते रहे । शिक्षा सबके द्वार, अभियान चालू किया गया । यह कार्यक्रम 2000 में शिक्षा दर्पण के नाम से प्रारम्भ हुआ जिसमें शिक्षा के क्षेत्र में उभरने वाली कमियों का आंकलन किया गया व 2002 में शिक्षा सबके द्वार अभियान प्रारम्भ किया गया । इसी तरह सर्व शिक्षा अभियान भी प्रारम्भ किया गया । इसके अन्तर्गत शिक्षा को गांवों तथा ढाणियों तक पहुंचाने का प्रयास किया गया और इसमें दूर गांव में स्कूल खोले गये व उच्च स्तर पर इस कार्य को किया गया । 2005 में ज्ञान आयोग का गठन किया गया ।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग 2005 द्वारा स्कूली शिक्षा के संबंध में की गई सिफारिशें

देश में बदलती शैक्षिक परिस्थितियों व गुणात्मकता के परिप्रेक्ष्य में भारत में 2005 में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन हुआ । इस आयोग ने स्कूली शिक्षा के संबंध में कई सिफारिशें की है -

1 बालकों का शिक्षा अधिकार ।
2 बजट प्रावधान व व्यय करने का मदों में लचीलापन ।
3 विकेन्द्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता ।
4 कार्यात्मक साक्षरता का विकास ।
5 नीति स्कूलों के लिए उचित वातावरण ।
6 स्कूली शिक्षा पर डाटाबेस ।
7 विभागों के बीच अधिक समन्वय ।
8 गुणवत्ता मॉनीटरिंग के राष्ट्रीय मूल्यांकन निकाय ।
9 अध्यापकों के प्रशिक्षण ।
10 पाठ्यचर्या एवं परीक्षा प्रणाली में सुधार ।
11 अध्यापकों के प्रभावी प्रशिक्षण ।
12 स्कूल निरीक्षण को चुस्त करना ।
13 सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अधिकतम प्रयोग ।
14 शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा की सुलभता ।
15 दुर्गम क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार ।

16 बालिकाओं के नामांकन व ठहराव सुनिश्चित करना ।

17 निःशक्त बालकों के लिए शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार ।

18 मुस्लिम बच्चों की स्कूल तक पहुंच सुनिश्चित करना ।

19 श्रमिक बच्चों के लिए ब्रिजकोर्स का प्रावधान ।

20 स्थानांतरित अभिभावकों के बच्चों के लिए शिक्षा के विशेष प्रयास ।

21 अनुसूचित जाति एवं जनजाति के बच्चों के लिए शिक्षा की अनिवार्यता इत्यादि ।

22 अंग्रेजी भाषा के शिक्षण पर बल ।

इसके बाद निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 26 अगस्त 2009 को बना । इसके अन्तर्गत प्रत्येक 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालकों को अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करने के लिये यह अधिनियम बनाया गया । इसमें प्रारम्भिक शिक्षा के अन्तर्गत पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक की शिक्षा अभिप्रेत है अगर कोई बालक प्रवेश न प्राप्त कर सका तो उसे अपनी आयु के अनुसार कक्षा में प्रवेश शिक्षा पूरी करने तक निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा ।

समय-समय शिक्षा के प्रमुख अभिकरणों के रूप में निम्न संस्थाओं ने शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और शिक्षा के उन्नयन सदैव प्रयत्नशील रहती है :-

- नवोदय विद्यालय
- वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान एवं परिषद
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं परीक्षण परिषद
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
- राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के अध्यक्ष कौन थे?

2 मुदालियर शिक्षा आयोग में किस बात पर विशेष जोर दिया गया था?

3 प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति कौन सी है?

1.5 सारांश

भारत में शिक्षा का प्रारम्भ ऐसे आदिकाल में हुआ जब अन्य देश शिक्षा से वंचित थे । प्राचीन भारत में मुनियों, महर्षियों द्वारा दर्शन, न्याय गणित्र ज्योतिष, आर्युवेद आदि विविध शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी । वैदिक काल के सामान्य कवियों से शिक्षको तथा विद्धानों का महत्वपूर्ण योगदान शिक्षा के विकास में रहा । इस काल में भाषा व व्याकरण की शिक्षा उपदेशों एवं मौखिक रूप से दी जाती थी ।

प्राचीन काल में शिक्षा की व्यवस्था प्रारंभिक व उच्च शिक्षा के रूप में आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी ।

बौद्ध काल में धर्म का प्रचार करने, चारित्रिक विकास करने, सांसारिक जीवन की तैयारी के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति का संरक्षण प्रसार पर भी बल दिया जाता था ।

मध्यकालीन भारत में मुस्लिम शासको ने अपनी परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा प्रदान करने में धर्म के प्रचार व प्रसार को महत्व दिया यह कार्य मकतब एवं मदरसा के द्वारा होते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा शिक्षा कलकत्ता, मदरसा संस्कृत शिक्षा बनारस तथा मिशनरियों में दी जाने लगी । मैकाले के विविरण पत्र में विज्ञान शिक्षा के साथ भाषा के माध्यम पर विशेष बल दिया गया । एडम्स रिपोर्ट की सिफारिशों के अनुसार स्कूलों की संख्या में वृद्धि करना तथा परीक्षा प्रणाली में सुधार कर प्रयोगात्मक कार्यों को महत्व दिया गया ।

वुड्स के घोषणा पत्र में शिक्षा द्वारा राजकीय कर्मचारियों की पूर्ति करना तथा अंग्रेजी माध्यम से यूरोपियन ज्ञान का प्रसार करना प्रमुख लक्ष्य था ।

भारतीय शिक्षा आयोग 1982 के सुझाओं में प्रशासन शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय तथा देशी विद्यालयों के द्वारा माध्यमिक उच्च शिक्षा में धार्मिक, मुस्लिम, स्त्री, हरिजनों तथा अन्य पिछडी जातियों की शिक्षा में ईसाई मिशनरियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही ।

लार्ड कर्जन ने शैक्षिक सुधार करने के लिये उच्च शिक्षा हेतु विश्वविद्यालय में समिति का गठन किया ।

हटार्ग समिति ने तथा राष्ट्रीय शिक्षा आदोंलन के द्वारा राष्ट्रीय चेतना का विकास करने के लिये राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की गई जिसमें गोखले बिल द्वारा अनिवार्य शिक्षा महत्वपूर्ण थी ।

आधुनिक भारत में संविधान में वर्णित शैक्षिक अवसरों की समानता को आधार मानकर सभी वर्गों के लिये शैक्षिक सुरक्षा प्रदान की गई । 1952-53 में माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति ने शिक्षा से जुड़े सभी पक्षों के विकास के सुझाव दिये ।

भारतीय शिक्षा आयोग 1964-68 में डा. कोठारी ने सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता के लिये शिक्षा के आधुनिकीकरण पर बल दिया । राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार पुरे देश में समान शिक्षा नीति की संरचना 10+2+3 के रूप में की गई है । वर्तमान समय में इन्टरनेट, ई-लर्निंग, पत्राचार, खुला विश्वविद्यालय अनेक नवीन पाठ्यक्रम चलाये जा रहे है । वर्धमान खुला विश्वविद्यालय ज्वलन्त उदाहरण है

उसके बाद सर्व शिक्षा अभियान, शिक्षा सबके द्वार तथा 2005 में ज्ञान आयोग तथा इसके बाद निःशुल्क व अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम 26 अगस्त, 2009 में बनाया गया जिसमें सभी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया ।

अत: कहा जा सकता है भारतीय समाज ने हमेशा ही शिक्षा को प्रभावित किया है ।

1.5 मूल्यांकन प्रश्न

1 प्राचीन भारत के शैक्षिक विकास के चरणों का उल्लेख कीजिये ।

2 मध्यकालीन भारत में शिक्षा के विकास की क्या विशेषतायें थी?

3 ब्रिटिश काल में शिक्षा के विकास की प्रकिया से क्या आप संतुष्ट हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिये ।

4 भारत में आधुनिक काल की शिक्षा के विकास का वर्णन अपने शब्दों में कीजिये ।

1.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 डॉ. सिंह, कर्ण भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास:

2 Swami Harish Chandra-History of Development Education in India.

3 Dr. Banarashi, Moti Lal Das, Ancient Education in India-Delhi.

4 Eleventh five year plan.2012-2007

5 Journal) June - (2011 The Rajasthan Journal of Education.

6 सिंह, कृष्णवीर तथा मिश्र महेन्द्र कुमार - शिक्षा के सिद्धान्त ।

7 सिन्हा, मंजरी तथा डॉ- सिंधू आई एस . विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षा तथा शिक्षक की भूमिका, आगरा,। 2005

8 एन.सी.टी.(1998) - पोलिसी पर्सपैक्टिव्स इन टीचर एजूकेशन - क्रिटीक एण्ड डॉक्यूमेन्टशन, (द्वितीय संस्करण), नेशनल काउन्सिल फॉर टीचर एजूकेशन, नई दिल्ली।

9 श्री वास्तव जे.पी. एवं मितल एम.एल. आधुनिक भारतीय शिक्षा, ईगल बुक्स इण्टरनेशनल, मेरठ, 1994

इकाई - 2

भारत में शिक्षा और प्रजातांत्रीकरण

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रजातंत्र के लिए शिक्षा

2.3 शिक्षा का प्रजातंत्र

2.4 भारत में शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण की स्थिति

2.5 शिक्षा व्यवस्था का प्रजातंत्रीकरण

2.6 सारांश

2.7 मूल्यांकन प्रश्न

2.8 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेगें -

- प्रजातंत्र की सफलता के लिए शिक्षा
- प्रजातंत्र का शिक्षा पद्धति पर प्रभाव
- प्रजातंत्रीय शिक्षा व्यवस्था में विभिन्न पक्षों का संचालन

2.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग प्रजातंत्र का युग है । संसार के सर्वाधिक स्थायित्व वाले विभिन्न एवं विकसित देश प्रजातांत्रिक देश हैं । जो देश राजतंत्र, कुलीनतंत्र, अधिनायकतंत्र (तानाशाही) या साम्यवादी व्यवस्था के अंतर्गत थे । वे या तो प्रजातंत्र बन गए या प्रजातंत्र की ओर उन्मुख हो चुके हैं । भारत पहले ग्रेट ब्रिटेन का एक उपनिवेश मात्र था । परन्तु 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ-साथ वह संसार का सबसे बड़ा प्रजातंत्र बन गया जिसकी पुष्टि 26 जनवरी, 1950 से लागू हुए उसके संविधान द्वारा कर दी गई ।

कुछ समय पूर्व ही पाकिस्तान वर्षों तक अधिनायकतंत्रीय व्यवस्था के अंतर्गत रहने के पश्चात एक प्रजातांत्रिक देश बन गया । रूस जैसा साम्यवादी देश, प्रजातंत्र की ओर उन्मुख हो चुका है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विश्व प्रजातंत्र की दिशा में बढ़ रहा है ।

परन्तु वर्तमान युग में ही ऐसे भी उदाहरण देखने में और आ रहे हैं कि कई छोटे प्रजातांत्रिक देशों में सेना ने सत्ता हथिया ली और वह देश एकतंत्र या अधिनायकतंत्र बन गया । अस्तु किसी भी देश में प्रजातंत्र की सफलता और स्थायित्व के लिए उचित परिस्थितियां होनी चाहिए । सर्वप्रथम आवश्यक परिस्थिति है, जनता का सुशिक्षित होना । जिस देश में जनता जिस सीमा तक शिक्षित होगी, उसी सीमा तक उस देश में प्रजातंत्र का भविष्य उज्जवल होगा । दूसरी आवश्यक परिस्थिति यह है कि देश की जनता में प्रजातंत्र की सफलता और उसकी सुरक्षा

के प्रति जागरूकता होनी चाहिए । तीसरी आवश्यक स्थिति यह है कि प्रजातंत्र देश के आर्थिक उन्नयन में सहायक हो । भूखी जनता न प्रजातंत्र स्थायित्व कर सकती है, न उसका संचालन और सुरक्षा । यदि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में लोगों की रोटी की समस्या हल न हो, तो वे अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता की बलि दे सकते हैं और इस प्रकार प्रजातंत्र को समाप्त कर सकते हैं । परन्तु, दूसरी एवं तीसरी परिस्थितियां, प्रथम परिस्थिति जनता की सुशिक्षा पर ही आधारित हैं। यदि देश में अच्छी शिक्षा होगी तो जनता में जागरूकता, भी होगी और उसका आर्थिक उन्नयन भी । अस्तु, प्रश्न यह उठता है कि प्रजातंत्र के लिए शिक्षा कैसी हो? और कैसे हो? परन्तु इस प्रश्न का तात्पर्य है? ओर "प्रजातंत्र" से तात्पर्य है? अस्तु, पहले इन्हीं प्रश्नों पर विचार करेंगे ।

2.2 प्रजातंत्र के लिए शिक्षा

प्रजातंत्र के लिए शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिए पहले यह विचार करना होगा कि प्रजातंत्र के उभरने, स्थाई रहने और सफलता के लिए क्या-क्या पूर्व शर्तें हैं, प्रजातंत्र से क्या अपेक्षायें हैं। और प्रजातंत्र के अंतर्गत क्या होना चाहिए । प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक जे.एस. मिल के अनुसार प्रजातंत्र की स्थापना और उसके स्थायित्व के लिए लोगों में तीव्र आकांक्षा और शक्ति होनी चाहिए । जब तक लोग चाहेंगे नहीं प्रजातंत्र की स्थापना नहीं हो सकती और उसे प्राप्त करने के लिए उनमें "शक्ति" भी होनी चाहिए । अस्तु, प्रजातंत्र की सफलता के लिए लोगों में तीव्र आकांक्षा और दृढ़ इच्छा होनी चाहिए और साथ ही उसे प्राप्त करने और आपत्ति काल के समय उसकी रक्षा करने की शक्ति होनी चाहिए । मिल यह भी आवश्यक मानता है कि प्रजातंत्र में नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए लिखित संविधान भी होना चाहिये । मिल के अनुसार समाज का आर्थिक विकास भी होना चाहिए क्योंकि आर्थिक सुरक्षा के बिना प्रजातंत्र सफल नहीं हो सकता । अंतिम शर्त यह है कि प्रजातांत्रिक समाज में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिए क्योंकि शिक्षा के बिना प्रजातंत्र अर्थहीन हो जाता है । लोगों को यह ज्ञान होना चाहिए कि क्या चाहते हैं और अपनी आकांक्षा की पूर्ति कर सकते हैं ।

भारतीय मनीशियों ने भी इस दिशा में विचार व्यक्त किए हैं । गांधी जी ने सन् 1935 में इलाहाबाद में कहा था "मेरी यह मान्यता है कि प्रजातंत्र का विकास बलकृत विधियों से नहीं हो सकता । प्रजातंत्र की भावना बाहर से नहीं थोपी जा सकती । उसे मन से उत्पन्न होना चाहिए ।" यंग इंडिया नामक पत्रिका में गांधी जी ने 29 जनवरी, सन् 1925 को लिखा था, "स्वराज जनसधारण को सत्ता के नियमित और नियंत्रित करने की भावना के प्रति शिक्षित करके प्राप्त किया जा सकता है ।"

संसदीय प्रजातंत्र पर प्रथम भारतीय विचार गोष्ठी में 25 फरवरी, 1956 को नेहरू जी ने कहा था कि "मेरे लिए प्रजातंत्र का अर्थ समस्याओं के समाधान का शांतिपूर्ण विधियों से एक प्रयास है ।.. एक समुचित प्रजातंत्र में अनुशासन स्वआरोपित होता है । जहां अनुशासन नहीं है, वहां प्रजातंत्र भी नहीं है ।"

मद्रास के भूतपूर्व राज्यपाल और विचारक श्री प्रकाश जी के विचारों से भी इस पर प्रकाश पड़ता है कि प्रजातंत्र स्थापना के लिए क्या अपेक्षित है और प्रजातंत्र में क्या अपेक्षित है। 23 अगस्त, 1956 को मद्रास विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण में उन्होंने कहा था" :

इसलिए यदि हम प्रजातंत्रिक समाज की स्थापना करना चाहते हैं तो यह उचित और समीचीन होगा कि हमें यह समझना चाहिए कि प्रजातंत्र से हमारा तात्पर्य है और हम व्यक्ति के रूप में अपने पारिवारिक, अपने सामाजिक तथा अपने व्यावसायिक क्षेत्रों में कैसे काम कर सकते हैं जिससे कि हम उसके योग्य बन सकें ।" श्री प्रकाश जी आगे कहते है: "प्रजातंत्र, निःसंदेह मानव और मानव के बीच समानता के विचार को सामने रखता है ।" इसलिए प्रजातंत्र केवल अकादमिक अध्ययन का सिद्धान्त मात्र नहीं है, वह व्यक्तियों पर निश्चित आबंध लागू करता है, वह सभी के लिए क्रिया की एक निश्चित दिशा का अनुसरण निर्धारित करता है और जो भी उसमें रहता है उनसे बच नहीं सकता ।" उनके अनुसार ये अपेक्षायें हैं कि वह -

क यह धारणा कि केवल हमारा मत ही ठीक है, मतभेद के लिए कोई स्थान नहीं है और हमारे मत की ही अंत में स्थापित होना चाहिए, प्रजातंत्र के मूल सिद्धान्तों के विपरीत है और उसके लिए घातक है ।

ख प्रजातंत्र में सभी मामलों पर विचार-विमर्श बिना अपने संदर्भ के, अपने को अलग रखकर, होना चाहिए ।

ग प्रजातंत्र में विधि (कानून) बनाने वाली और शासन का संचालन करने वाली सर्वोच्च सत्ता का चयन करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति अपना मत निर्भीकतापूर्वक देता है ।

घ प्रजातंत्र में किसी महापुरूष के आगमन की प्रतीक्षा नहीं होती कि वह आकर नेतृत्व ग्रहण करे और कार्य संचालन करे । प्रजातंत्र में प्रत्येक यह अनुभव करता है कि वह अपना योगदान कर राज्य को स्थायित्व प्रदान कर सकता है और जब तक वह है, राज्य के लिए वह उतना ही अपरिहार्य है जितना अन्य कोई व्यक्ति ।

प्रजातंत्र के संबंध में मिल, गांधी जी, नेहरू जी तथा श्री प्रकाश जी के उक्त विचारों का अध्ययन कर लेने के पश्चात यह स्पष्ट संकेत मिल जाता है कि प्रजातंत्र के लिए शिक्षा आवश्यक है ओर उस शिक्षा की दिशा क्या होनी चाहिए - ज्ञान की दृष्टि से, समझ की दृष्टि से, कुशलताओं की दृष्टि से तथा अभिवृतियों एवं मूल्यों की दृष्टि से । उक्त मनीशियों के विचारों से प्रजातंत्र के उभरने, स्थायित्व होने, सफल होने, उसके स्थायित्व के हेतु जो शर्तें उभरकर सामने आई हैं, वे निम्न प्रकार है -

1 जो प्रजातंत्र की स्थापना करना चाहते हैं उन्हें यह स्पष्ट होना चहिए कि प्रजातंत्र का अर्थ क्या है अथवा उसकी संकल्पना क्या है?

2 प्रजातंत्र की स्थापना उसकी सफलता और आपत्तिकाल में उसकी रक्षा के लिए लोगों में तीव्र आकांक्षा, दृढ़ संकल्प और पर्याप्त शक्ति होनी चाहिए । परन्तु प्रजातंत्र की भावना बाहर से नहीं थोपी जा सकती और न प्रजातंत्र का विकास बलकृत विधियों से सम्भव है ।

3 प्रजातंत्र में नागरिक स्वतंत्रताऐं होनी चाहिए और उनके रक्षार्थ लिखित संविधान भी ।

4 नागरिकों को अपनी कर्तव्यों का पालन ईमानदारी से एवं निष्ठापूर्वक करना चाहिए ।

5 प्रजातंत्र के अंतर्गत समाज का आर्थिक विकास होना चाहिए ।

6 प्रजातंत्र के अन्तर्गत निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए ।

7 प्रजातंत्र में जन-साधारण को सत्ता को नियमित और नियंत्रित करने की भावना के प्रति शिक्षित किया जाना चाहिए ।

8 प्रजातंत्र में समस्याओं का समाधान शांतिपूर्ण विधियों से होना चाहिए ।

9 प्रजातंत्र में स्वआरोपित अनुशासन होना चाहिए ।

10 प्रजातंत्र के योग्य बनने के लिए हमें अपने पारिवारिक, सामाजिक क्षेत्रों में प्रजातंत्र की भावना से कार्य करना चाहिए ।

11 प्रजातंत्र के अन्तर्गत सभी मनुष्यों को समान माना जाना चाहिए अर्थात प्रत्येक व्यक्ति की मान-मर्यादा अथवा प्रतिष्ठा समान होनी चाहिए ।

12 जीविकोपार्जन के समस्त साधनों की समान प्रतिष्ठा होनी चाहिए ।

13 सभी अल्पसंख्यकों के, चाहे धर्म, जाति आदि के आधार पर वे स्थायी प्रकृति के हों, चाहे

14 मतभेदों के आधार पर अस्थायी प्रकृति के, नागरिक अधिकार सुरक्षित होने चाहिए, उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय और दुर्व्यवहार नहीं होना चाहिए तथा उनके हितों की रक्षा होनी चाहिए । प्रजातंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने मत की स्वीकृति के लिए अंतिम बिन्दु तक संघर्ष करना चाहिए परन्तु एक बार सामूहिक निर्णय हो जाने पर उसे स्वीकार कर लेना चाहिए चाहे वह व्यक्ति के मत से कितना ही विपरीत क्यों न हो ।

15 प्रजातंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे के मत का आदर करना चाहिए ।

16 प्रजातंत्र में सभी मामलों पर विचार निष्पक्ष रूप से, अपने को अलग रखकर, होना चाहिए ।

प्रजातंत्र के उभरने, स्थायित्व होने, सफल होने और स्थायी रहने के लिए जो शर्तें या अपेक्षाऐं उस पर गिनायी गयी हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि प्रजातंत्र के लिए शिक्षा आवश्यक है । उचित एवं उपयुक्त शिक्षा के अभाव में प्रजातंत्र न उभर सकता है, न सफल हो सकता और न स्थायी रह सकता है । अस्तु, शिक्षा को प्रजातंत्र की दिशा में उन्मुख होना चाहिए ।

2.3 शिक्षा का प्रजातंत्रीकरण

शिक्षा में प्रजातंत्रीकरण का अर्थ है कि शिक्षा के सभी अवयवों अथवा अंगों का प्रजातंत्रीकरण होना चाहिए । शिक्षा के लक्ष्य अथवा उद्देश्य शिक्षा की पाठ्यचर्या, शिक्षा की विधियां अथवा शिक्षण विधियां, शिक्षा का मूल्यांकन एवं शिक्षा का संगठन, सभी कुछ ऐसे होने चाहिए कि सभी में प्रजातंत्र की -झलक मिले और सभी प्रजातंत्र के उन्नयन में सहायक हों ।

2.3.1 प्रजातांत्रिक शिक्षा के लक्ष्य

सर्वप्रथम हम प्रजातंत्रिक शिक्षा के लक्ष्यों पर विचार करेंगे । ऐसी शिक्षा जो प्रजातंत्र के उभरने उसकी स्थापना, उसकी सफलता तथा उसके स्वामित्व में सहायक हो उसके लक्ष्य अथवा उद्देश्य निम्न प्रकार होंगे-

– प्रत्येक व्यक्ति का सामंजस्यपूर्ण सर्वांगीण विकास करना जिससे कि वह परिवार और समाज का उपयोगी सदस्य बन सके तथा प्रेम, सहयोग एवं सौमनस्य पूर्वक परिवार एवं समाज में रह सके ।

- प्रत्येक व्यक्ति में व्यावसायिक नैतिकता एवं कार्य क्षमता उत्पन्न करना जिससे कि वह समाज की समृद्धि एवं प्रगति में सहायक हो ।
- प्रत्येक व्यक्ति का विकास एक अच्छे नागरिक के रूप में करना जिसे अपने अधिकारों का पूर्ण ज्ञान हो और जो उनके उपयोग में पूर्ण सक्षम हो, जो समाज में अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति पूर्णतया जागरूक हो और उनका निर्वाह भी करे ।
- प्रत्येक व्यक्ति में ऐसी कुशलतायें उत्पन्न करना जो उसे आत्मनिर्भर बनायें, उसके व्यक्तिगत उन्नयन में भी सहायक हों ।
- प्रत्येक व्यक्ति में ऐसी कुशलतायें उत्पन्न करना जिससे कि वह अपने अवकाश का समय का सदुपयोग कर सके ।
- प्रत्येक व्यक्ति में स्व-अनुशासन उत्पन्न करना और उसका चारित्रिक विकास करना ।
- प्रत्येक व्यक्ति में तर्क शक्ति एवं सर्जनात्मक का विकास करना जिससे कि वह समस्त अंधविश्वासों से मुक्त हो सके और नूतन उद्भावनायें कर सके ।
- प्रत्येक व्यक्ति को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान देना ।
- प्रत्येक व्यक्ति में प्रजातांत्रिकता एवं अन्य संबंध मूल्यों जैसे स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, न्याय, पक्ष-निरपेक्षता, शांतिपूर्ण विधियों से किसी निर्णय पर पहुंचना आदि का विकास होना चाहिए ।
- प्रत्येक व्यक्ति में नेतृत्व के गुणों का विकास करना ।

यहाँ पर यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि प्रजातंत्र और शिक्षा के मध्य क्रियात्मक संबंध है ।

शिक्षा के लक्ष्य अथवा उद्देश्य निर्धारित करता है और शिक्षा उनकी पूर्ति का साधन प्रस्तुत करती है । परंतु शिक्षा उनकी पूर्ति का साधन तभी बन सकती है जब शिक्षा की समस्त प्रक्रिया प्रजातंत्रिक लक्ष्यों से नियमित एवं नियंत्रित हो । अस्तु आगे अब हम इस पर विचार करेंगे कि शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण हेतु अथवा प्रजातंत्रिक शिक्षा हेतु पाठ्यचर्या किस प्रकार की हो।

2.3.2 प्रजातंत्रिक पाठ्यचर्या

शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण अथवा प्रजातंत्रिक शिक्षा हेतु पाठ्यचर्या, प्रजातंत्रिक शिक्षा हेतु निर्धारित लक्ष्यों से नियमित और नियंत्रित होनी चाहिए । यहां प्रजातंत्रीकरण हेतु अथवा प्रजातंत्रिक पाठ्यचर्या की विस्तृत चर्चा करना सम्भव नहीं है, परन्तु प्रजातंत्रिक लक्ष्यों को दृष्टिगत रखते हुए हम उन सिद्धान्तों की चर्चा करेंगे जिनके आधार पर पाठ्यचर्या का निर्धारण हो सकता है । यह सिद्धान्त निम्न प्रकार है :

1 प्रजातंत्रिक पाठ्यचर्या में उन समस्त ज्ञान एवं समझ तथा कुशलताओं, अभिवृतियों और मूल्यों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो प्रजातंत्रिक लक्ष्यों के अंतर्गत अपेक्षित है ।

2 प्रजातंत्रिक पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिए और उसमें व्यक्तिगत क्षमता के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए ।

3 प्रजातंत्र की संकल्पना गतिशील है अस्तु प्रजातंत्रिक समाज भी परिवर्तनशील समाज होता है । अस्तु, प्रजातांत्रिक पाठ्यचर्या में समाज की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने की शक्ति होनी चाहिए ।

4 प्रजातंत्रिक पाठ्यचर्या स्थानीय आवश्यकताओं और स्थानीय साधनों के अनुरूप होनी चाहिए ।

5 प्रजातांत्रिक पाठ्यचर्या के निर्धारण में ऐसी कुशलताओं को स्थान दिया जाना चाहिए जो प्रत्येक व्यक्ति को अपने अवकास के समय का सदुपयोग करने में सहायकता प्रदान करें ।

6 प्रजातांत्रिक पाठ्यचर्या में प्रत्येक व्यक्ति की भावी व्यावसायिक आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाना चाहिए जिससे की अपनी शिक्षा समाप्ति करने के पश्चात जब वह जीवन में प्रवेश करना चाहे तो आत्मनिर्भर हो सके, समाज में दूसरे व्यक्तियों पर बोझ न बने क्योंकि बेरोजगार अथवा दूसरों पर भार बना हुआ व्यक्ति अथवा वह जिसकी जीवन की मूल आवश्यकताये पूर्ण न हो रही हों, प्रजातंत्र में अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह नहीं कर सकता ।

7 प्रजातांत्रिक पाठ्यचर्या में औपचारिक शिक्षण, खेल-कूद अथवा अन्य सहपाठ्यक्रम क्रियाओं द्वारा व्यवस्था होनी चाहिए कि व्यक्ति में प्रजातांत्रिकता एवं अन्य संबद्ध मूल्यों जैसे स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, पंथ निरपेक्षता, व्यक्ति के सम्मान, शांतिपूर्ण विधियों से किसी निर्णय पर पहुंचना आदि का विकास तथा नेतृत्व के गुणों का विकास हो ।

2.3.3 प्रजातांत्रिक शिक्षण विधियां

प्रजातांत्रिक लक्ष्यों से ही प्रजातांत्रिक विधियों का भी निर्धारण होता है जिन शिक्षण विधियों में शिक्षार्थी की सहभागिता अधिकाधिक हो, जो क्रिया केन्द्रित हो तथा जिनमें गतिशीलता हो वे ही प्रजातांत्रिक लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक हो सकती है । कठोर, पारंपरिक, स्थायी एवं अपरिवर्तनशील विधियां प्रजातंत्र के विकास एवं उन्नयन में कभी सहायक नहीं हो सकती । ऐसी विधियां जिनमें शिक्षार्थी केवल प्राप्तकर्ता हो, सहभागी न हो, प्रजातांत्रिक शिक्षा के किंचित मात्र भी अनुकूल नहीं हैं । प्रजातांत्रिक शिक्षण विधियां शिक्षार्थी की रूचि और आवश्यकता के अनुकूल होनी चाहिए तथा वे स्वतंत्र चिंतन एवं स्वतंत्र अभिव्यंजना को प्रोत्साहित करें ।

अस्तु, इस प्रकार की शिक्षण विधियां जैसे - करके सीखना, माण्टेसोरी पद्धति, खेल द्वारा शिक्षा, हस्तशिल्प के साथ समवाय की पद्धति (बेसिक शिक्षा के अनुसार), परियोजना पद्धति विचार-विमर्श विधि, डाल्टन योजना, विन्नेटका योजना अथवा कार्यक्रमिक अधिगम जिनमें शिक्षार्थी स्वतंत्रता का अनुभव करे और जो उसे स्वतंत्र चिन्तन एवं स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अधिकाधिक अवसर प्रदान करें, प्रजातांत्रिक शिक्षा के अंतर्गत प्रयुक्त होनी चाहिए ।

यह भी स्मरणीय है कि प्रजातांत्रिक शिक्षण विधियों के प्रयोग हेतु शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक अथवा सुविधाकर्ता की अधिक होनी चाहिए, एक कक्षा शिक्षक या प्रशिक्षक की

नहीं । शिक्षक को शिक्षार्थियों का "मित्र" दार्शनिक एवं मार्गदर्शक होना चाहिए और उसके तथा शिक्षार्थियों के बीच संबंध अत्यन्त सौहार्दपूर्ण होने चाहिए ।

2.3.4 प्रजातांत्रिक मूल्यांकन

जहां भी शिक्षक होगा मूल्यांकन अवश्य होगा क्योंकि मूल्यांकन के बिना पाठ्यचर्या अथवा शिक्षण विधियों की सफलतम का ज्ञान नहीं हो सकता और न यह ज्ञात हो सकता है कि शिक्षार्थी समस्त शैक्षिक प्रयास से क्या लाभ उठा सका अर्थात कितनी प्रगति कर सका । एक मूल्यांकन इस प्रकार होता है जिसमें शिक्षार्थी की भूमिका नहीं होती । उसे शिक्षक या मूल्यांकनकर्ता के निर्देशानुसार कार्य करना होता है, जैसे प्रश्नों के उत्तर देना, कुछ बनाना, कुछ प्रयोग करना । यह मूल्यांकन सामान्यत: 3 महीने, 6 महीने या वर्ष के अंत में किया जाता है किन्तु प्रजातांत्रिक मूल्यांकन वह होगा जिसमें जिसका मूल्यांकन हो रहा है उसकी सहभागिता हो और उसमें उसकी चेतना न हो कि उसका मूल्यांकन हो रहा है । जिस मूल्यांकन में मूल्यांकित व्यक्ति की सहभागिता हो उसे सहभागीय मूल्यांकन कहा जाता है । "सहभागीय मूल्यांकन" में "स्वमूल्यांकन" एवं माता-पिता व भाई-बहिनों की सहायता से मूल्यांकन भी सम्मिलित है । शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच विचार-विमर्श करते हुए भी मूल्यांकन किया जाता है । साथ ही साथ मूल्यांकन ठीक और निष्पक्ष हुआ है । प्रजातांत्रिक शिक्षा व्यवस्था में मूल्यांकन की इस पद्धति का अपनाया जाना प्रजातंत्र के हित में होगा ।

2.3.5 शिक्षा का संगठन

प्रजातंत्र के लिए शिक्षा अथवा शिक्षा के प्रजातांत्रिकरण के हेतु यह परमावश्यक है कि शिक्षा का संगठन प्रजातांत्रिक आधार पर हो । शिक्षा के संगठन को प्रजातांत्रिक बनाने के लिए निम्नलिखित आबंधों अथवा शर्तों की पूर्ति आवश्यक है -

1 शिक्षा का संगठन लचीला होना चाहिए । उसमें कहीं भी कठोरता नहीं होनी चाहिए ।

2 शिक्षा का संगठन गत्यात्मक एवं प्रगतिशील होना चाहिए ।

3 शिक्षा का संगठन में केवल नीति-निर्धारकों तथा शैक्षिक प्रशासकों की ही प्रमुखता नहीं होनी चाहिए अपितु शिक्षक, शिक्षार्थी, अभिभावकों और समाज के प्रतिनिधियों की भी उसमें सहभागिता होनी चाहिए । शिक्षा के संगठन हेतु जो भी संस्थायें अथवा समितियां नीति-निर्धारण हेतु बनायी जाएं उसमें सभी संबंध वर्गों के प्रतिनिधि होने चाहिए ।

4 दैनिक शैक्षिक प्रशासन में भी शिक्षकों और शिक्षार्थियों की सहभागिता होनी चाहिए और उनके विचारों का आदर होना चाहिए ।

5 सह-पाठ्यक्रम क्रियाओं के संगठन का आधार पूर्णतया प्रजातांत्रिक होना चाहिए और इनमें संबंधित, निर्णयों में सर्वाधिक प्रमुखता शिक्षार्थियों की, उम्रसे कम शिक्षकों की और उससे कम शैक्षिक प्रशासकों की होनी चाहिए ।

6 अनुशासन के मामले में स्व-अनुशासन पर बल दिया जाना चाहिए । शिक्षार्थियों के स्तर पर, शिक्षकों के स्तर पर तथा शैक्षिक प्रशासकों के स्तर पर सभी को अपनी-अपनी आचार संहितायें दूसरे वर्गों की सम्मतिया लेकर बनानी चाहिए और उनका स्वत: पालन

करना चाहिए और अपने तथा दूसरे वर्गों के प्रतिनिधियों की सहायता से उनके क्रियान्वयन और अनुपालन पर दृष्टि रखनी चाहिए ।

7 शिक्षा का संगठन समानता और न्याय के आधार पर होना चाहिए । उसमें सभी को समान शैक्षिक अवसर प्राप्त होने चाहिए तथा धर्म, पंथ, विश्वास, जाति, प्रजाति, प्रदेश, भाषा, निर्धनता अथवा विकलांगता के आधार किसी प्रकार के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए जब तक कि उसके लिए कोई तर्क सम्मत या बुद्धिसम्मत सुदृढ़ आधार न हो ।

2.4 भारत में शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण की स्थिति

2.4.1 शिक्षा के लक्ष्य

भारतीय संविधान के आमुख में भारत को प्रजातंत्र बनाने का संकल्प भी किया जाता है। जिसमें भारतीय प्रजातंत्र की संकल्पना भी व्यक्त होती है । इसके संबंध में आप अनुच्छेद 3 के अंतर्गत पढ़ चुके हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से भारत एक प्रजातंत्र बन गया, 26 जनवरी 1950 से इन की विधिवत पुष्टि हो गयी । इस समय भारत संसार का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है । स्वाभाविक है कि भारतीय प्रजातंत्र का यह आदर्श भारतीय शिक्षा में भी प्रतिबंधित हो ।

वर्तमान समय में शिक्षा के लक्ष्यों "प्रजातंत्रीकरण" एवं संबद्ध मूल्यों जैसे पंथ निरपेक्षता (धर्म-निरपेक्षता) समाजवाद आदि का समावेश किया गया है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 स्पष्ट उल्लेख किया गया हैं ।

साथ ही शिक्षा हमारे संविधान में प्रतिष्ठित समाजवाद, धर्म-निरपेक्षता और लोकतंत्र के लक्ष्यों की प्राप्ति में अग्रसर होने में हमारी सहायता करती है ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति: 1986 में भाग - 2 में "शिक्षा का सार और उसकी भूमिका" के अन्तर्गत जो आलेख है, वह प्रजातांत्रिक शिक्षा के कुछ लक्ष्यों को निम्न प्रकार स्पष्ट करता है:

- हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में" सबके लिए शिक्षा" हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है ।
- शिक्षा सुसंस्कृत बनाने का माध्यम है । यह हमारी संवेदनशीलता और दृष्टि को प्रखर करती है जिससे राष्ट्रीय एकता पनपती है, वैज्ञानिक तरीके के अमल की सम्भावना बढ़ती है और समझ और चिंतन की स्वतंत्रता आती है ।
- शिक्षा नीति में आगे भाग 4 में एक संकल्प व्यक्त किया गया है जो "समानता" अथवा अवसरों की समानता के लक्ष्य पर प्रकाश डालता है ।
- राष्ट्रीय नीति विषमताओं को दूर करने पर विशेष बल देती है और अब तक वंचित रहे लोगों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान पर लक्ष्य पर प्रकाश डालता है ।
- प्रजातांत्रिक शिक्षा का लक्ष्य है सभी को शिक्षित करना । इस विषय पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उल्लिखित निम्न विचारों पर प्रकाश पड़ता है ।
- साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा का महत्व अत्यन्त अधिक है ।

– समूचे देश को निरक्षरता उन्मूलन के लिए कटिबद्ध होना है, खासकर 15-35 आयु वर्ग के निरक्षर लोगो को ।

भारत में शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा के जो लक्ष्य वर्तमान समय में हैं उनमें से कुछ की झलक "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986" के उक्त उदाहरणों में स्पष्ट रूप से मिल जाती है । परन्तु कुछ की झलक आगे वर्णित पाठ्यचर्या, शिक्षण-विधियों, मूल्यांकन और शिक्षा के संगठन के अंतर्गत मिलेगी ।

2.4.2 शिक्षा की पाठ्यचर्या

शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण हेतु पाठ्यचर्या की नवीनतम स्थिति की झलक "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986" तथा उसके "कार्य हेतु कार्यक्रम" से मिलती है । इन दोनों की अभिलेखों से उदाहरण देते हुए, हम पाठ्यचर्या की कुछ मुख्य बातों का उल्लेख करेंगे जो शिक्षा के लक्ष्यों पर भी प्रकाश डालती है ।

प्रजातंत्र के अन्तर्गत ऐसी कुशलताऐं उत्पन्न की जानी चाहिए जो व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाये, जो उसके व्यक्तिगत उन्नयन में सहायक हो एवं जो सामाजिक उन्नयन में सहायक हों । ऐसी कुशलताऐं निम्न कक्षाओं की पाठ्यचर्या में कार्यानुभव की व्यवस्था एवं उच्च कक्षाओं की पाठ्यचर्या में शिक्षा के व्यावसायीकरण द्वारा की गयी है । "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986" में इस संबंध में निम्नलिखित नीति-निर्देश दिए गए है:

कार्यानुभव को सभी स्तरों पर दी जाने वाली शिक्षा एक आवश्यक अंग होना चाहिए । "यह अनुभव एक सुसंगठित और क्रमबद्ध कार्यक्रम के द्वारा किया जाना चाहिए । कार्यानुभव की गतिविधियां विद्यार्थियों की रूचियों, योग्यताओं और आवश्यकताओं पर आधारित होगा ।"

शिक्षा के प्रस्तावित पुनर्गठन में व्यवस्थित और सुनियोजित व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रम दृढ़ता से क्रियान्वित करना बहुत जरूरी है । इससे व्यक्तियों की रोजगार पाने की क्षमता बढ़ेगी।

प्रत्येक व्यक्ति के सामंजस्य एवं सर्वांगीण विकास हेतु "राष्ट्रीय शिक्षा नीति: 1986" निम्नलिखित नीति निर्देश दिए गए है -

शिक्षा की पाठ्यचर्या और प्रक्रियाओं को सांस्कृतिक विषयवस्तु के समावेश द्वारा अधिक से अधिक रूपों में समृद्ध किया जाएगा । इस बात का प्रयत्न होगा कि सौन्दर्य, सामंजस्य और परिष्कार के प्रति बच्चों की संवेदनशीलता बढ़े ।

शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त साधन बन सके ।

हमारा समाज सांस्कृतिक रूप से बहु-आयामी है, इसलिए शिक्षा के द्वारा उन सार्वजनीन और शाश्वत मूल्यों का विकास होना चाहिए । इन मूल्यों से धार्मिक अंधविश्वास, कट्टरता, असहिष्णुता, हिंसा और साम्यवाद का अंत करने में सहायता मिलनी चाहिए ।

इन संघर्षात्मक भूमिका के साथ-साथ मूल्य शिक्षा का एक गम्भीर सकारात्मक पहलू भी है जिसका आधार हमारी सांस्कृतिक विरासत, राष्ट्रीय लक्ष्य और सार्वभौमिकता दृष्टि है, जिस पर मुख्य तौर से बल दिया जाना चाहिए ।

पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने की बहुत जरूरत है और वह जागरूकता बच्चों से लेकर समाज के सभी आयुवर्गों और क्षेत्रों में फैलनी चाहिए । पर्यावरण के प्रति जागरूकता विद्यालयों और कॉलेजों की शिक्षा का अंग होनी चाहिए । इसे शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में समाहित किया जाएगा । गणित को ऐसा साधन माना जाना चाहिए, जो बच्चों को सोचने, तर्क करने, विश्लेषण करने और अपनी बात को तर्कसंगत ढंग से प्रकट करने में समर्थ बना सकता है । एक विशिष्ट विषय होने के अतिरिक्त गणित को किसी ऐसे विषय का सहवर्ती माना जाना चाहिए जिसमें विश्लेषण तर्कशक्ति की जरूरत हो ।"

विज्ञान की शिक्षा को सुदृढ़ किया जाएगा ताकि बच्चों में जिज्ञासा की भावना, सृजनात्मक, वस्तुगतता, प्रश्न करने का साहस और सौन्दर्यबोध जैसी योग्यतायें और मूल्य विकसित हो सकें ।

खेल-कूद और शारीरिक शिक्षा सोचने की प्रक्रिया के अभिन्न अंग है और इन्हें विद्यार्थियों की कार्यसिद्धी के मूल्यांकन में शामिल किया जायेगा ।

शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से और उनके बाहर भी युवाओं को राष्ट्रीय और सामाजिक विकास के कार्य में सम्मिलित होने के अवसर दिये जायेंगे"

"राष्ट्रीय शिक्षा नीति: 1986" के "कार्य हेतु कार्यक्रम" में सार भाग पाठ्यचर्या के दस क्षेत्रों में शिक्षण सामग्री की रचना करने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को निर्देश दिया गया है । ये दस क्षेत्र निम्न प्रकार है-

1 भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास
2 संवैधानिक उत्तरदायित्व
3 राष्ट्रीय अस्मिता के पोषण हेतु आवश्यक विषय वस्तु
4 भारत की सर्व-सामान्य सांस्कृतिक परम्परा
5 समाजवाद प्रजातंत्र और पंथ निरपेक्षता (अथवा धर्म निरपेक्षता)
6 यौन की समानता
7 पर्यावरण का संरक्षण
8 सामाजिक बाधाओं का निवारण
9 छोटे परिवार के आदर्श अनुपालन
10 वैज्ञानिक स्वभाव का मनस्थापन

इसी प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रस्तुत की गयी राष्ट्रीय पाठ्यक्रमिक संरचना में जो पाठ्यक्रमिक चिंतायें जिनके आधार पर ही पाठ्यवस्तु या विषय-वस्तु का निर्धारण किया गया है, वे निम्न प्रकार है -

1 शिक्षा और अवसर की समानता
2 सांस्कृतिक परंपरा संरक्षण
3 संवैधानिक उत्तरदायित्व
4 राष्ट्रीय विशिष्टता एवं एकता को सुदृढ़ करना
5 चरित्र निर्माण एवं मूल्यों का मनस्थापन

6 विश्व परिप्रेक्ष्य

7 पर्यावरण की रक्षा और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा

8 छोटे परिवार के आदर्श का अनुपालन

9 भविष्य अभिनवीकृत शिक्षा

10 सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा

11 शिक्षा के प्रति बालकेंन्द्रित उपागम का विकास

12 "अधिगम करने के अधिगमन" को सुविधायुक्त करना

13 सर्जनात्मक अभिव्यंजना को सुविधायुक्त करना

14 वैज्ञानिक स्वभाव का मनस्थापन

15 शिक्षा और कार्य के संसार में अंतर्सम्बन्ध स्थापित करना

16 सतत एवं व्यापक मूल्यांकन

17 जन-संचार साधनों एवं शैक्षिक तकनीकी का उपयोग

अंत में यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि 1968 से पूर्व कक्षा 8 तक सामाजिक शास्त्र वैकल्पिक विषय था । कक्षा 9 से 12 तक नागरिक शास्त्र वैकल्पिक विषय था और विश्वविद्यालय स्तर पर राजनीति विज्ञान वैकल्पिक विषय था । विश्वविद्यालय स्तर पर तो स्थिति आज भी वैसी ही है । परन्तु सन् 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित होने के पश्चात सामाजिक विज्ञान विषय कक्षा 1 से 10 तक अनिवार्य विषय बन गया और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर आज भी नागरिक शास्त्र अथवा राजनीति विज्ञान वैकल्पिक विषय है । सामाजिक विषय या सामाजिक विज्ञान, नागरिक शास्त्र तथा राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत प्रजातंत्र, न्याय, समानता, बंधुत्व, समाजवाद, पंथ-निरपेक्षता जैसी संकल्पनायें, नागरिक के अधिकार-कर्तव्य भारतीय संविधान, आदि पर विचार-विमर्श किया जा रहा है ।

2.4.3 शिक्षण विधियां

जहां तक शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण हेतु शिक्षण विधियों अथवा प्रजातांत्रिक शिक्षण विधियों का संबंध है, भारत की स्थिति बहुत उत्साहजनक नहीं है । सर्वाधिक प्रयोग व्याख्यान विधि का किया जाता है जिसमें शिक्षार्थी केवल संप्राप्ति के छोर पर रहता है । अनुच्छेद 6.3 के अंतर्गत जिन प्र प्रजातांत्रिक शिक्षण विधियों पर उल्लेख किया गया है उनका प्रयोग भारत में यदा कदा है और कुछ अच्छे अथवा आदर्श विद्यालयों में ही मिलता है जहां शिक्षक उत्साही है वहां खेल द्वारा शिक्षा करके सीखना, हस्तशिल्प के साथ समवाय जैसी पद्धतियों का उपयोग होता है । कुछ साधन सम्पन्न विद्यालयों में परियोजना पद्धति द्वारा शिक्षण की कुछ उदाहरण मिल जायेंगे । स्वतंत्र अभिव्यंजना के अवसर भी बहुत कम संस्थाओं में विशेष रूप से सार्वजनिक विद्यालयों में और बहुत कम छात्रों को मिलते हैं । विचार-विमर्श विधि का उपयोग भी केवल कुछ विशिष्ट सार्वजनिक विद्यालयों में और बहुत कम केवल कुछ विशिष्ट सार्वजनिक विद्यालयों अथवा महाविद्यालयों जैसे विषयों में जिनमें कि प्रायोगिक कार्य पाठ्यचर्या का अंग है और जहां साधन हैं, "करके सीखना विधि" का उपयोग किया जाता है । नगरों के अच्छे

विद्यालयों में तथा महाविद्यालयों में फिल्म, ओडियो टेप, वीडियो टेप, रेडियो एवं दूरदर्शन का प्रयोग भी शिक्षा में किया जा रहा है ।

अंत में यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि सन् 1987 से भारत सरकार राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के माध्यम एवं राज्य सरकारों के सहयोग से एक बहुत शिक्षक अभिनवीकरण कार्यक्रम चल रहा है जिसके अन्तर्गत शिक्षकों को नवीन शिक्षण विधियों के प्रति जागरूक बनाने का प्रयास किया जा रहा है ।

2.4.4 शिक्षा में मूल्यांकन

शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण अर्थात् प्रजातांत्रिक शिक्षा हेतु मूल्यांकन का प्रजातंत्रीकरण किया जा रहा है । यद्यपि देश में अभी अधिकतर संस्थाओं में परंपरागत परीक्षा पद्धति ही प्रचलित है, जिसमें परीक्षार्थी को केवल प्रश्नों का उत्तर देना होता है । परन्तु इस दिशा में शासन, शिक्षा विभाग और विश्वविद्यालय सभी सक्रिय हैं जिससे कि मूल्यांकन को अधिक प्रजातांत्रिक एवं सार्थक बनाया जा सके । इस संबंध में "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986" में कुछ अंश उद्धृत किए जा रहे हैं:

- अत्यधिक संयोग (चांस) और आत्मगतता (सब्जेकटीविटी) के अंश को हटाना ।
- रटाई पर जोर को हटाना ।
- ऐसी सतत् और संपूर्णमूल्यांकन प्रक्रिया का विकास करना जिसमें शिक्षा के शास्त्रीय और शास्त्रेतर पहलू समाविष्ट हो जायें और जो शिक्षण की पूर्ति अवधि में व्याप्त रहें ।
- अध्यापकों, विद्यार्थियों और माता-पिता द्वारा मूल्यांकन की प्रक्रिया का प्रभावी उपयोग।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के "कार्य हेतु कार्यक्रम" के कुछ प्रावधान भारत में प्रजातांत्रिक शिक्षा के अंतर्गत मूल्यांकन पर प्रकाश डालते हैं जो निम्न प्रकार हैं -

1 परीक्षक की सत्यनिष्ठ परीक्षा की विश्वसनीयता के लिए निर्णायक है ।

2 यह विश्वसनीयता परीक्षा के खुलेपन के द्वारा स्थापित हो सकती है । यह मानना होगा कि विद्यार्थियों का यह अपरिहार्य अधिकार है कि वे अपनी उत्तर पुस्तिकाओं की और उसके मूल्यांकन की जांच कर सकें और दूसरों से उनकी तुलना कर सकें ।

3 प्रत्याशियों को परवर्ती प्रयासों द्वारा अपनी श्रेणियां उन्नत करने का अवसर मिलना चाहिए ।

4 प्रश्न बैंकों का विकास प्रश्न-पत्र बनाने वालों के सहायतार्थ किया जायेगा ।

5 एक विस्तृत अंक योजना का विकास किया जाएगा जिससे कि उत्तर पुस्तिकाओं में अंक प्रदान करने में वस्तुगत सुनिश्चित हो सके ।

6 नूतन उद्भावनायें जैसे कि "खुली पुस्तक परीक्षा, निदानात्मक मूल्यांकन" आदि का प्रयोग किया जाए ।

7 इस प्रकार आप देखेंगे कि शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण के साथ-साथ "शिक्षा में मूल्यांकन" का प्रजातंत्रीकरण भी हो रहा है । यद्यपि क्रियान्वयन की दिशा में अभी बहुत कुछ होना है परन्तु मूल्यांकन के क्षेत्र में प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया चल रही है ।

2.4.5 शिक्षा का संगठन

शिक्षा का संगठन के प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया भारत में यद्यपि स्वतंत्रता के पूर्व ही प्रारम्भ हो चुकी थी परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् इसमें गति कुछ तीव्र हुई है । सभी शिक्षा संस्थाओं विशेष रूप से माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय स्तर पर सभी प्रबंध एवं अनुशासन समितियों में शिक्षकों एवं छात्रों के प्रतिनिधि रखे जा रहे हैं । यह व्यवस्था धीरे-धीरे व्यापक होती जा रही है । छात्र संघ और शिक्षक संघ अपेक्षाकृत प्रभावशाली होते जा रहे हैं और प्रबंध चाहे व्यक्तिगत, अभिकरणें के साथ में हो, चाहे स्वेच्छिक अभिकरणों के हाथ में और चाहे शासकीय अभिकरण के हाथ में, छात्रों, शिक्षकों, अन्य कर्मचारियों तथा अभिभावकों का प्रभाव शैक्षिक प्रबंध में बढ़ता जा रहा है । जहां तक सह-पाठ्यक्रम क्रियाओं का प्रश्न है, स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही विश्वविद्यालय स्तर पर छात्र संघ स्वतंत्रतापूर्वक इनका आयोजन करते हैं और माध्यमिक स्तर पर भी क्रमश: स्थिति वैसी ही होती जा रही है।

"राष्ट्रीय शिक्षा नीति:1986" में भी शैक्षिक प्रबंध के प्रजातंत्रीकरण के संबंध में उसके भाग 10 में निम्न प्रकार से नीति-निर्देश किया गया है:

- विकेंद्रीकरण तथा शिक्षा संस्थाओं में स्वायतता की भावना उत्पन्न करना ।
- लोक-भागीदारी को प्रधानता देना, जिसमें गैर सरकारी ऐजेन्सियों का जुड़ा तथा शैक्षिक प्रयास शामिल हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत में शिक्षा का संगठन प्रजातंत्रीकरण की दिशा में अग्रसर है । परन्तु अभी इस दिशा में पर्याप्त क्रियान्वयन होना है ।

2.5 शिक्षा व्यवस्था का प्रजातांत्रिकरण

शिक्षा प्रणाली का प्रजातंत्रीकरण एक रणनीति और लक्ष्य के रूप में:-

- वर्तमान शिक्षा प्रणाली के विकेन्द्रीकरण, उचित वैधानिक परिवर्तन की मांग ।
- पहल के रूप में राजनैतिक परिवर्तनों के स्थायित्व और देश के आर्थिक सुधार पर निर्भरता ।
- शिक्षा प्रणाली सभी स्तरों एवं खण्डों पर सुधार की प्रक्रिया को परिभाषित करना ।
- सामाजिक मूल्यों की दीर्घ अवधि एवं जटिल प्रक्रिया को स्वीकारते हुए व्यक्तियों और समूहों में संज्ञानात्मक एवं सामाजिक दक्षताओं को विकसित करना एवम् शिक्षण संस्थाओं के संगठन का पुनर्निर्माण करना ।

2.5.1 लोकतान्त्रिक रणनीतियाँ आवश्यक दशाये :-

- सूचना व प्रवाह, प्रसार, एवं सूचनाओं की पहुंच
- प्रजातांत्रिक तरीके के लोकतान्त्रिक निर्णयन
- सभी समूहों की भागीदारी एवं हितों को ध्यान रखने की कला
- सभी स्तरों पर क्षमता/ सामर्थ्य निर्माण एवं भूमिका, नियमों का स्पष्ट परिभाषीकरण।
- केन्द्रीय एवं स्थानीय पारदर्शिता एवं जवाबदेही

परिवर्तनों को कैसे उत्पन्न एवं उत्साहित किया जाये :-

- परिवर्तनों की पूर्व दशा एवं परिणामों दोनों के नियमों एवं कानूनों में परिवर्तन और संशोधन करना ।
- स्थानीय पहल (योजना, कार्यक्रम, गतिविधि), केन्द्रीय योजनाबद्ध सुधारों को साथ समायोजित करना ।
- क्रियात्मक अनुसंधान रणनीतियों को सतत, प्रारम्भिक सुधारों की प्रक्रिया के लिए लागु करना ।
- पाठ्यक्रम शिक्षक प्रशिक्षण, गुणवत्ता नियन्त्रण के क्षेत्र में सुधार के चरणों के साथ सहयोग ।
- उचित परिवर्तनों लोकतान्त्रिकरण के सफल क्षेत्रों का जाल बिछाया ।
- वृहद स्तर पर परिवर्तन एवं कार्यक्रमों को लागू करने से पहले छोटे स्तर पर लागू करके देखना ।

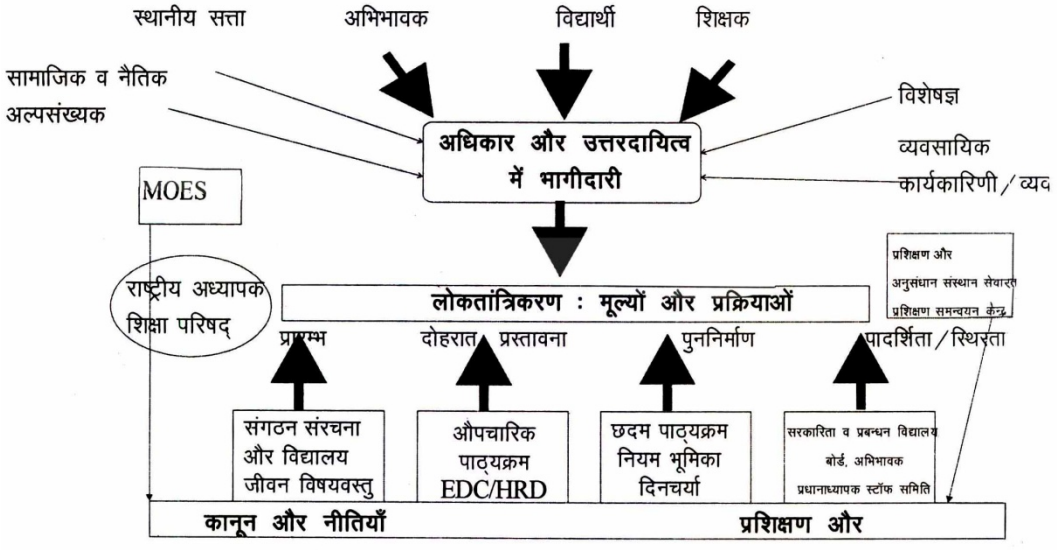

2.5.1. विद्यालय स्तर पर लोकतांत्रिकरण की विधि

2.5.2 प्रोत्साहन / संसाधन (Support / Resources)

- लोकतान्त्रिक राजनैतिक परिवर्तन
- लोकतान्त्रिक परिवर्तनों एवं लोकतन्त्र की शिक्षा हेतु समाज के महत्वपूर्ण भागों (युवा, गैर सरकारी संस्थाऐं और पर्णधारी) की रूचि एवं तत्परता ।
- लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं एवं लोकतन्त्र से जुड़ी शोध संस्थान, स्वैच्छिक संस्थाऐं, स्थानीय, गैर सरकारी संस्थाओं की प्रयोजनाऐं एवं क्रियाऐं ।
- अन्तर्राष्ट्रीय एवं विदेशी गैर सरकारी संगठनों एवं सरकारी संस्थाओं एवं प्रतिनिधियों का सहयोग एवं सहायता संक्रमण काल से गुजर रहे दूसरे देशों से उपलब्ध अनुभव ।

2.5.3 बाधा, कठिनाईयां और अंतर्विरोध

- सीमित वित्तीय संसाधन

- शैक्षिक व्यवस्था के अन्दर एवम् व्यापक सामाजिक स्तर पर लोकतान्त्रिक परम्पराओं का अभाव ।
- तीव्र एवं क्रान्तिकारी परिवर्तनों से अवास्तविक प्रत्याक्षाऐं एवम् प्रतिभागियों की अपर्याप्त अभिप्रेरणा ।
- शिक्षा के एवम् अन्य क्षेत्रों में भी अप्रभावी संस्थान।
- दुविधा नई संस्थाओं का स्थापना अथवा मौजुदा संस्थाओं में बदलाव ।
- विभिन्न सुधारात्मक कार्यों में संकल्पनात्मक एवम् समय के समन्वय सम्बन्धित कठिनाईयां ।
- लोकतान्त्रिकरण की वजह से गुणवत्ता एवं व्यवसायिकता की कमी का डर ।
- नवाचारों एवं परिवर्तनों से डर, परम्परागत विधियों एवं विषयवस्तु को सुरक्षित महसूस करना ।

2.5.4 रणनीति निर्देशन

- प्रणाली स्तर पर
- नीतियाँ कानून /
- शैक्षिक नीतियों / सुधारों की योजना एवं ग्रहण करने में सभी पर्णधारियों को शामिल करना ।
- प्रबंधन के विकेन्द्रीकरण एवं निर्णय निर्माण से सम्बन्धित कानूनों में सुधार करना ।
- ड्रोप आउट (अवरोधन) (जैसे - रोमा (घुमंतू(जनसंख्या को पूर्व विद्यालयी आयु से ही विद्यालय में प्रवेश लेने के लिए अलग से कार्यक्रम बनाना और विकलांग बच्चों एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए प्रोग्राम बनाना) बालकों के लिए विधि विकसित करना ।

प्रणाली संरचना / संस्थान

शिक्षा प्रणाली के लचीलेपन और पारदर्शिता पर बल देना, छात्रों को विभिन्न विद्यालयों और विभिन्न स्तरों पर स्वतंत्र प्रवाह एवम् अध्यापकों (अन्त: अनुशासनात्मक, सेवाकालीन प्रशिक्षण एवम् व्यवसायिक उन्नति पर बल देना) । सभी शैक्षिक एवं प्रशिक्षण संस्थाओं को अनिवार्य रूप से नामांकन कार्यक्रम एवम् उपलब्ध सेवाओं और उपलब्धियों की रिपोर्ट को अनिवार्य रूप से सार्वजनिक करना ।

- औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था में सहयोग को बनाये रखने के लिए मापन एवं प्रत्यापन करवाना गुणवत्ता पूर्ण गैर सरकारी और निजी क्षेत्रों जिन को कि पूर्व में अनुमोदित किया जा चुका है ।
- क्रमिक वृद्धि शिक्षा व्यवस्था से जुड़े अध्यापकों, विद्यालयों एवम् कार्यक्रमों की प्रत्यापन (accredation) व्यवस्था को विकसित करना ।
- शिक्षण कार्यक्रमों, सेवाओं एवं संस्थानों की विविधता को समर्थन करना ।
- प्रणाली के औपचारिक और अनौपचारिक शैक्षिक व्यवस्था में सुधार लाना ।

पाठ्यचर्या के स्तर पर: -

- पाठ्यक्रम सुधारों की प्रस्तावना: विशेष विषयवस्तु के लिए विषयवस्तु आधारित कार्यक्रमों के बजाय आधारभूत पाठ्यक्रम लागु करना ।
- अनिवार्य, ऐच्छिक विषयों को क्रमिक रूप से बढ़ाना ।
- विद्यालय / कक्षा कक्ष आधारित कोर करिकला और पाठ्यचर्या का विकास जो कि विशेष कार्यक्रमों और शिक्षकों के प्रशिक्षण विशेष रूप से अन्त: अनुशासनात्मक विषयों और शिक्षा के नवाचारी विधियों को प्रोत्साहित करना ।
- शिक्षको, निर्देशकों और व्यवसायिक सलाहकारों मनोविज्ञानी, शिक्षाविदों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों, सहयोगात्मक अधिगम । शिक्षण रणनीतियाँ जैसी लोकतान्त्रिक विधियों को शामिल करना ।
- अच्छे पाठ्यक्रम एव पाठ्यपुस्तकों की वृद्धि एवं प्रसार और सभी स्तरों पर ऐसे शिक्षण उपकरणों को शामिल करना जो कि मानव अधिकारों एवं बच्चों के अधिकारों, लोकतान्त्रिक मूल्यों एवं सिद्धान्तों के साथ तालमेल बिठाये ।
- औपचारिक विद्यालयी प्रणाली में लोकतान्त्रिक नागरिकता के लिए शिक्षा से परिचित कराना ।
- विद्यालय / शिक्षा प्रक्रिया के स्तर पर विद्यालय / संस्थागत स्तर पर नियम निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षक, छात्र, अभिभावक स्थानीय समुदाय प्रबन्धन में सहभागिकता ।
- विद्यालयों को मुक्त संस्थाओं के रूप में बदलना और विकसित करना । स्कूलों में स्वायत्ता का विकास, प्रत्येक विद्यालय को अपने मूल्य बनाने के लिए सहयोग करना, जो कि विद्यार्थियों, अध्यापकों, अभिभावको और स्थानीय समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग करती है । यह कार्य विद्यालय विकास प्रयोजना द्वारा किया जा सकता है ।
- विद्यालय में लोकतान्त्रिकरण के लिए जनता के विचार विमर्श द्वारा तथा सामान्य लोकतान्त्रिक नियमों, भूमिकाओं और उत्तरदायित्व को लेने के लिए छद्म पाठ्यक्रम के निर्माण तथा पुनर्निर्माण द्वारा किया जा सकता है ।
- शिक्षा प्रक्रिया में आधुनिकीकरण और परिवर्तन अध्यापकों को विकसित प्रशिक्षण द्वारा और विद्यालयों में विभिन्न प्रयोजनाओं और क्रियात्मक अनुसंधानों के विकास में मदद द्वारा शिक्षण / प्रशिक्षण के नवीन प्रत्यय को पूरा किया जा सकता है ।
- लोकतन्त्र के लिए अभिभावकों को शिक्षा की विषयवस्तु तथा प्रविधि को समझने में सहायता प्रदान कर सशक्त बनाना ।
- विद्यालय बोर्ड सदस्य, प्रधानाध्यापक, शिक्षकों की नियुक्ति के लिए लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में सुधार तथा स्थापना करना ।
- क्षेत्रीय स्तर, नगरपालिका, विद्यालय के प्रबन्धक और प्रशासकीय अधिकारी में उत्तरदायित्व कार्यकुशलता को पुनर्भाषित किया जाये, विभिन्न विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा ।
- अध्यापक, ट्रेड यूनियन, और विद्यार्थी एसोसियेशन और व्यावसायिक कार्यकारिणी के सहयोग प्रदान कर उन्हें लोकतान्त्रिक संगठन के रूप में विकसित ।

- विद्यार्थियों और स्थानीय समुदाय के लिए अतिरिक्त पाठ्यक्रम तथा बाह्य विद्यालय गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जावे ।
- सूचना के विभिन्न स्त्रोतों के लिए अतिरिक्त पाठ्यपुस्तकों व प्रमापीकृत पुस्तको के साथ लागू करना ।

2.6 सारांश

वर्तमान युग प्रजातंत्र का युग है । संसार के अधिकतर देशों में या तो पूर्ण प्रजातंत्र है या प्रजातंत्र की ओर उन्मुख हो चुके हैं या प्रजातंत्र की ओर उन्मुख होने की प्रक्रिया में हैं । परन्तु कहीं-कहीं जहां प्रजातंत्र की जड़े मजबूत नहीं थी, वहां शासन सत्ता का उलटफेर देखने में आया है, सत्ता सेना ने संभाल ली और अधिनायकतंत्र स्थापित हो गया । अस्तु किसी देश में प्रजातंत्र की सफलता और स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि जनता में सुशिक्षा हो, प्रजातंत्र की सफलता और सुरक्षा के प्रति जागरूकता हो तथा देश की आर्थिक परिस्थिति का उन्नयन हो । परन्तु इन तीनों में सबसे अधिक आवश्यक है, सुशिक्षा । परन्तु प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा कैसी हो और कैसे हो जो जनता को प्रजातंत्र के योग्य और सक्षम बनाए? इसी से सम्बन्ध प्रश्न उठते हैं:

"शिक्षा क्या है?" और "प्रजातंत्र क्या है?"

"शिक्षा" शब्द और उसके अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द "एज्यूकेशन" की व्युत्पत्ति पर विचार कर और अनेक विचारकों द्वारा प्रस्तुत शिक्षा की परिभाषाओं पर विचार कर यह ज्ञात होता है कि शिक्षा का विकास की प्रक्रिया है जो व्यवहार का परिष्कार करती है । वह प्रशिक्षण की सचेतन है, एकीकृत वृद्धि है और वह "पर्यावरण" का प्रभाव है । शिक्षा शब्द का प्रयोग प्रक्रिया और उत्पाद दोनों अर्थों में होता है । शिक्षा के संबंध में अनेक प्रश्न उठते हैं जिनका उत्तर देने के लिए शिक्षा के पांच अवयवों या अंगों पर विचार करना आवश्यक है:

1 शिक्षा के लक्ष्य अथवा उद्देश्य
2 शिक्षा की पाठ्यचर्या
3 शिक्षण विधियां
4 शिक्षा में मूल्यांकन और
5 शिक्षा का संगठन

प्रजातंत्र का अर्थ "प्रजा अथवा जनता द्वारा शासन" है । भारत में छठवीं और चौथी शताब्दी ई. पू. में प्रजातंत्र के अस्तित्व के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं परन्तु इसका बीज रामायण के काल में ही विद्यमान था । पाश्चात्य विद्वान प्रजातंत्र का प्रारम्भ यूनान (ग्रीस) के छोटे-छोटे नागरिकों राज्यों से मानते हैं तथा "प्रजातंत्र" के अंग्रेजी पर्यायवाची "डेमोक्रेसी" की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के एक शब्द से । प्रजातंत्र का अर्थ सामान्य रूप से यह माना जाता रहा है कि "प्रजा का शासन, प्रजा के द्वारा और प्रजा के लिए ।" परन्तु वर्तमान युग में प्रजातंत्र का अर्थ विस्तार हो गया है और प्रजातंत्र अब केवल शासन की प्रणाली एवं सामाजिक एवं राजनैतिक नियंत्रण का एक रूप मात्र नहीं है वह जीवन की एक विद्या भी है जिसकी विशिष्टतायें हैं: व्यक्ति की मान-मर्यादा या प्रतिष्ठा के प्रति आदर, मानव मात्र में अनुपमता को प्रोत्साहन,

सहयोग एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण में विचारों का आदान-प्रदान और सांस्कृतिक एवं बौद्धिक भिन्नताओं के प्रति सहनशीलता । अस्तु प्रजातंत्र के कई पक्ष हैं: नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक । भारत में प्रजातंत्र की संकल्पना भारतीय संविधान के आमुख में संविधान के समर्पण के संकल्प में व्यक्त की गयी है ।

प्रजातंत्र के उभरने, स्थायी रहने, सफलता तथा स्थायित्व के लिए कुछ पूर्व शर्तें हैं । प्रजातंत्र की स्थापना उसकी सफलता और उसकी रक्षा के लिए जनता में तीव्र आकांक्षा, दृढ़ इच्छा, योग्यता और शक्ति होनी चाहिए । प्रजातंत्र में नागरिकों को अपने कर्तव्य का पालन ईमानदारी और बुद्धिपूर्वक करना चाहिए, समाज का आर्थिक विकास होना चाहिए और निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिए । प्रजातंत्र में कुछ स्वतंत्रतायें होनी चाहिए और उनकी रक्षा के लिए लिखित संविधान जे.एस .मिल, गांधी जी, नेहरू जी और प्रकाश जी के विचारों से इस विषय पर प्रकाश पड़ता है कि प्रजातंत्र के उभरने, स्थापना, सफलता और स्थायित्व के लिए क्या पूर्व शर्तें हैं, प्रजातंत्र से क्या अपेक्षायें हैं और प्रजातंत्र के अंतर्गत क्या होना चाहिए ।

इन विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रजातंत्र के लिए शिक्षा आवश्यक है । परन्तु यह शिक्षा प्रजातंत्र की ओर उन्मुख होनी चाहिए अथवा इस प्रकार कहें कि शिक्षा का प्रजातंत्रीकरण होना चाहिए । परन्तु प्रश्न उठता है कि शिक्षा का प्रजातंत्रीकरण से हमारा क्या तात्पर्य है और वह किस प्रकार हो सकता है ।

शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण का अर्थ है कि शिक्षा के लक्ष्य अथवा उद्देश्यों, शिक्षा की पाठ्यचर्या, शिक्षा की विधियों अथवा शिक्षण-विधियों, शिक्षा में मूल्यांकन और शिक्षा का संगठन सभी से प्रजातंत्र की झलक मिलनी चाहिए और सभी शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण में सहायक हो ।

भारत में जो संसार का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है, शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया स्वतंत्रता पूर्व से ही प्रारम्भ हो गयी थी परन्तु कुछ वर्षों से उसमें गति आ गयी है । भारत में शिक्षा का लक्ष्य स्पष्ट रूप से प्रजातंत्रीकरण के पक्ष में हैं और उसके उन्नयन का संकल्प व्यक्त करते हैं । भारत में शिक्षा की पाठ्यचर्या दृढ़ रूप से प्रजातंत्र के पक्ष में अभिनवीकृत है। जहां तक प्रजातांत्रिक शिक्षण विधियों का प्रश्न है, इस दिशा में अभी प्रगति बहुत मंद है । शिक्षा में मूल्यांकन को प्रजातंत्रीकरण की दिशा में उन्मुख किया जा रहा है । शिक्षा के संगठन के प्रजातंत्रीकरण की दिशा में क्रियान्वयन स्वतंत्रतापूर्व से ही चला आ रहा है और हाल के कुछ वर्षों में विशेष गति आयी है ।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण की दिशा में आशा जनक प्रगति हो रही है ।

2.7 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 प्रजातंत्र के लिए शिक्षा क्यों आवश्यक है? इस विषय पर तर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत कीजिये।

2 भारत में शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण पर एक आलोचनात्मक निबंध लिखिए ।

2.8 संदर्भ ग्रंथ

1 "रीडिंग्स इन डेमोक्रेसी", एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1963

2 ब्रूवेकर, जॉन एस., मार्डन फिलासोफीज ऑफ एज्यूकेशन मेंकग्राहिल, 1962
3 "द कोंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया" लॉ एजेन्सी इलाहाबाद, 1977
4 नायन, पी. आर. दबे, पी. एन. अरोरा, कमला (संपादक) आनन्द, सी. एल. व अन्य "द टीचर एंड एज्यूकेशन इन इमर्जिंग इंडियन सोसायटी", राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली, 1983
5 माथुर, एस.एस. "ए सोशियोलोजीकल एप्रोच दू इंडियन एज्यूकेशन" विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1956
6 जायसवाल, सीताराम, "प्रिंसीपल्स ऑफ एज्यूकेशन", वोरा एंड कं. पब्लिशर्स, बम्बई, 1956
7 प्रकाश, श्री, डेमोक्रेसी इन एज्युकेशन, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1967
8 डयूवी जान, डेमोक्रेसी एंड एज्यूकेशन, मैकमिलन एंड कं., न्यूयार्क, 1960
9 प्रोग्राम ऑफ एक्शन (नेशनल पॉलिसी आन एज्यूकेशन: 1986) मिनिस्ट्री ऑफ हयूमन रिसोर्स डेवलपमेंन्ट, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1986 ।

इकाई - 3

भारत में शिक्षा और आधुनिकीकरण

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आधुनिकीकरण का अर्थ एवं परिभाषाएं

3.3 आधुनिकता की प्रकृति एवं विशेषतायें

3.4 आधुनिकीकरण के विभिन्न तत्व

3.5 भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में बाधाएं

3.6 आधुनिकता की प्रक्रिया में तीव्रता लाने वाले कारण

3.7 आधुनिकीकरण का शिक्षा पर प्रभाव

3.8 शिक्षा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करने में शिक्षा की भूमिका

3.9 मूल्यांकन प्रश्न

3.10 संदर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- आधुनिकीकरण के अर्थ एवं परिभाषाओं को जान सकेंगे ।
- आधुनिकीकरण के विभिन्न तत्वों को बता सकेंगे ।
- भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की बाधाओं का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- आधुनिकीकरण का शिक्षा पर प्रभाव का विवेचन कर सकेंगे ।
- आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करने में शिक्षा की भूमिका को जानेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

वर्तमान विश्व एक नई सहस्त्राब्दि में प्रवेश कर चुका है । बीस सहस्त्राब्दि में विश्व में अनेक राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन देखे व अनुभव किये हैं । प्रत्येक काल में होने वाले इन परिवर्तनों को अलग-अलग नामों से पुकारा गया है जैसे कभी पुनर्जागरण, धार्मिक आन्दोलन, कभी सामाजिक विकास व सामाजिक परिवर्तन, कभी ये राजनैतिक चेतना, राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, कभी सांस्कृतिक विलय, आर्थिक, तकनीकी व संसाधनों का विकास, कभी ये तीव्र वैज्ञानिक विकास व मानव के भौतिक विकास आदि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विश्व के सभी देशों व समाजों का परिवर्तन सदैव होते रहे हैं । परिवर्तनों ने ही इस वर्तमान विश्व का निर्माण किया है, जिसे हम सर्वाधिक आधुनिकतम विश्व के रूप में देख रहे हैं । किन्तु यह भी शाश्वत सत्य है कि "परिवर्तनों का दौर थम गया है बल्कि परिवर्तनों की गति में वृद्धि हुई है । वर्तमान काल में हम इन परिवर्तनों को वैश्वीकरण, उदारीकरण, आर्थिक विकास, उपभोक्तावाद,

भौतिकवाद, सूचना क्रांति, वैज्ञानिक तकनीकी विकास, जनसंख्या व पर्यावरण चेतना, नारी प्रस्थिति में बदलाव आदि नवीन रूपों में देख रहे हैं । ज्यों-ज्यों मानव सभ्यता ने वैज्ञानिक, तकनीकी, भौतिक विकास किया है इसका प्रत्यक्ष प्रभाव राजनैतिक व्यवस्थाओं, आर्थिक जगत, सामाजिक संरचना व सांस्कृतिक परिवेश पर भी पड़ा और प्राय: सभी प्रकार की व्यवस्थाओं में जीवन के प्रत्येक पहलू में बदलाव आया है । इस बदलाव को आधुनिक शब्द का अर्थ के रूप में देखा जा रहा है या ये कहा जाए कि इस बदलाव को आधुनिकता अथवा आधुनिकीकरण की संज्ञा दी जा रही है ।

3.2 आधुनिकीकरण का अर्थ एवं परिभाषाएं

आधुनिकीकरण शब्द से तात्पर्य है कि ऐसी प्रक्रिया जिसमें आधुनिक बनने की सोच है । आधुनिकीकरण की सोच के बिना पूर्ण रूप से आधुनिकीकरण संभव नहीं हो सकता । विचारों में आधुनिकता का होना आवश्यक है । डॉ.डी.एस कोठारी ने शिक्षा के उद्देश्यों के अन्तर्गत जो आधुनिकता की बात की है, वह आधुनिकता के विचारों से ही संबंधित है । शिक्षा परम्परागत सोच को बदले । व्यक्ति प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर समाज और राष्ट्र की प्रगति में योगदान दें ।

आधुनिकीकरण के विभिन्न अर्थ लगाए गए हैं । इस शताब्दी के आरम्भ से ही आधुनिकीकरण शब्द चर्चा का विषय बन गया था । साधारण मनुष्य के लिए सुख-सुविधा के आधुनिक साधनों का प्रयोग ही आधुनिकीकरण है । परन्तु एक शिक्षित व्यक्ति के लिए उदारवादी विचारधारा, तर्क-वितर्क के आधार को मान कर चलना और विचार विश्लेषण के बाद किसी तथ्य को स्वीकारना ही आधुनिकीकरण है । एक ग्रामीण और निरक्षर व्यक्ति के लिए औद्योगीकरण ही आधुनिकीकरण है ।

विशेषज्ञों के अनुसार आधुनिकीकरण से अभिप्राय "शिक्षा में संख्यात्मक और गुणात्मक सुधार लाना और राष्ट्र हित के लिए शिक्षित एवं कुशल और प्रगति में विश्वास रखने वाले नागरिकों को उत्पन्न करना है । आधुनिकीकरण पूर्णरूप से आर्थिक, तकनीकी, औद्योगिक और सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया है । यह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कम विकासशील देशों को अधिक विकासशील देशों के स्तर तक पहुंचाने के लिए सक्रिय है । आधुनिकीकरण की दृष्टि से जर्मनी, जापान, रूस तथा अमेरिका आदि का उदाहरण दिया जा सकता है ।

पाश्चात्य देश के अनुकरण को आधुनिकीकरण नहीं कहा जा सकता । इसलिए आधुनिकीकरण का अर्थ पश्चिमीकरण से नहीं है । आधुनिक समाज सह-अस्तित्व, भाईचारे, सहयोग, उदारता और समझौते की भावना में विश्वास करता है न कि तनाव, दबाव और अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा में । आधुनिकीकरण दो स्तर पर होता है, व्यक्ति के स्तर पर तथा समाज के स्तर पर । सामाजिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में वही व्यक्ति सहयोग दे सकते है जो चिन्तनशील सचेत, जागरूक और गतिशील हैं ।

"आधुनिकीकरण" शब्द का अभिप्राय आधुनिक बनने की क्रिया है । इसका अर्थ आधुनिक जीवनशैली को अपनाना है ।

आधुनिकीकरण की परिभाषाएं :

(i) ब्लैक बेहला (Black Behal) ने आधुनिकता को - "सामाजिक प्रणाली की क्षमता की वृद्धि माना है । ताकि उसमें तथा उसके बाहर की जानकारी को प्राप्त किया जा सके ।"

(ii) मूरे (Moore) के शब्दों में - "आधुनिकीकरण का अर्थ है एक क्रांतिकारी परिवर्तन, जो एक समाज को उन्नत, आर्थिक रूप से समृद्ध तथा राजनैतिक से अपेक्षाकृत स्थिर समाज के रूप में परिवर्तित करने की और ले जाता है ।"

(iii) दूबे (Dube) के शब्दों में -"आधुनिकीकरण आवश्यक रूप में एक प्रक्रिया है - एक परम्परागत समाज व्यवस्था से एक विशेष अभीष्ट प्रकार की तकनीक से जुडी समाज व्यवस्था की ओर बढ़ना।"

(iv) मि. इनकेलज (Inkels) द्वारा रचित पुस्तक 'आधुनिक बनना' (ठमबवउपदह डवकमतद) में आधुनिकीकरण की विशेषताओं का वर्णन मिलता है जो निम्न है -

1. नये विचारों को स्वीकारना (Acceptance of new ideas): आधुनिकीकरण होने या आधुनिक बनने से तात्पर्य है - प्रगतिशील होना और समाज को सकारात्मक दिशा प्रदान करने के लिए नई सोच या नए विचार को अपनाना । परन्तु नई विचारधारा को सूझबूझ और आलोचनात्मक विश्लेषण के बाद स्वीकारना ।
2. नये ज्ञान को प्राप्त करने की जिज्ञासा (Curiosity for acquiring new knowledge): आज का युग भौतिक युग के साथ-साथ ज्ञान का भी युग है । इस युग में ज्ञान का विस्फोट हो रहा है । बीते युग में ज्ञान भंडार सीमित था । इसलिये नये ज्ञान प्राप्त करने हेतु जिज्ञासा का होना बहुत आवश्यक है । प्रत्येक देश अपनी पहचान अलग से बनाना चाहता है । इसके लिए नये ज्ञान को ग्रहण करने के लिए जिज्ञासा का होना बहुत आवश्यक है ।
3. भूत की अपेक्षा वर्तमान पर बल (Emphasis on the present rather than past): हमें लकीर का फकीर होकर प्राचीन मूल्यों विश्वासों और रीति-रिवाजों से बंधना नहीं चाहिए बल्कि सोच को नई दिशा प्रदान करने का प्रयास करना बहुत आवश्यक है भूत को भुलाकर ही हम आधुनिक बन सकते है ।
4. नई तकनीकी एवं विधियों को स्वीकारना (Acceptance of new techniques and method): आधुनिकता के लिए इस बात की आवश्यकता है कि हम विकसित देशों में प्रयोग होने वाली तकनीकों और विधियों का प्रयोग करें । परन्तु ऐसा करने से पहले इस बात को समझना बहुत आवश्यक है कि वे तकनीक और विधियाँ हमारे देश की परिस्थितियों के अनुकूलतम हों ।
5. न्याय की समानता में विश्वास (Faith in equal justice): आधुनिकता के लिए समाज में न्याय का होना बहुत आवश्यक है । इस समान न्याय के आधार पर ही उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की खाई को कम किया जा सकता है । प्रतिभा प्रदर्शन के अवसर बिना किसी भेदभाव के सब को प्राप्त होने चाहिए ।
6. क्रियात्मक एवं यथार्थवाद दृष्टिकोण (Practical and realistic attitude): आधुनिक राष्ट्र के लोगों का सैद्धांतिक दृष्टिकोण न होकर व्यावहारिकवादी और

यथार्थवादी दृष्टिकोण होना बहुत आवश्यक है । जब तक व्यावहारिकवादी और यथार्थवादी दृष्टिकोण नहीं होगा तब तक हम कोई भी निर्णय नहीं ले सकेंगे और प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकेंगे । इस बात का निर्णय करना बहुत आवश्यक है कि हमें क्या स्वीकार करना चाहिए और क्या स्वीकार नहीं करना चाहिए।

3.3 आधुनिकता की प्रकृति एवं विशेषताएँ

आधुनिकता का सम्बन्ध युग परिवर्तन से है । यूरोप में आधुनीकरण 16वीं शताब्दी के लगभग प्रारम्भ हुआ । तब सामन्तवादी व्यवस्था थी । इसी के साथ औद्योगिक क्रान्ति हुई और इसके साथ ही विज्ञान में भी क्रान्ति हुई । इसके परिणामस्वरूप यूरोप और अमेरिका में आधुनिकता का उदय हुआ । आधुनिकता केवल यूरोप तक सीमित नहीं थी जब यूरोप नये बाजार में रूप के एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका आये तो यहाँ पर भी इसका उदय हुआ।

आज दुनिया में आधुनिकता का जो स्वरूप है, उसके कुछ विशिष्ट लक्षण है -

- आधुनिकता व्यापक अवधारणा है - इसका सम्बन्ध केवल सामाजिक, राजनीतिक पक्ष से नहीं है, बल्कि यह विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित है ।
- आधुनिकता उद्विकास का परिणाम- आधुनिकता के उद्विकास में धर्मनिरपेक्ष राज्य, वैश्यीय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन ऐसी प्रक्रियाएँ रही, जिन्होंने आधुनिकता के उद्विकास को नई धारा प्रदान की ।
- आधुनिकता का विकास राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रक्रियाओं के कारण हुआ- पश्चिमी देशों तथा अमेरिका का दूसरे देशों के साथ आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से सम्पर्क स्थापित हुआ और इस तरह आधुनिक समाज का अस्तित्व सारी दुनिया में आया ।
- आधुनिकता में उपभोक्ता वस्तुओं की प्रचुरता है और विभिन्न जीवन शैलियाँ है आधुनिक समाज में वस्तुओं की प्रचुरता है साथ ही इनमें समानता तथा भिन्नता भी पायी जाती है । इस भाँति जीवन शैली भी व्यापक हो गई है । एक तरफ तो आधुनिक समाज में सांस्कृतिक विभिन्नता, व्यक्तिवादिता पायी जाती है वही दूसरी तरफ शिक्षण संस्थाएं तथा सार्वजनिक उपक्रम समानता लाने का प्रयास कर रहे हैं । वास्तव में आधुनिक समाज अपनी संरचना में जटिल होता जा रहा है।
- आधुनिकता में पूंजीवाद औद्योगीकरण और धर्मनिरपेक्षता लाती है।
- सभी सामाजिक सम्बन्धों और संघर्षो का संघटन शक्ति है - आधुनिक समाज में राज्य एक ऐसी शक्तिशाली संस्था है, जो नागरिको के सम्पूर्ण जीवन पर अपना नियन्त्रण रखती है क्योंकि राज्य की नीतियां व्यापक है और यह समाज की सभी गतिविधियों को नियन्त्रित रखती है । सभी औद्योगिक समाजों में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था एक व्यापक प्रत्यय है ।
- वैश्वीकरण और उसके आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पहलू आधुनिकता को संवारते है - आधुनिकरण का सम्बन्ध वैश्वीकरण से है । आज वैश्वीकरण के फलस्वरूप राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का आविर्भाव हुआ है । आधुनिकरण ने कई संघर्षो को जन्म

दिया जिसमें बड़ा संघर्ष आधुनिकता तथा परम्परा का है । बढ़तर हुई आधुनिकता के सामने क्या स्थानीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति जीवित रह पायेगी? दूसरा प्रश्न है क्या सम्पूर्ण संसार की आधुनिकता एक समान हो जाऐगी? कुल मिलाकर हमें आधुनिकता को वैश्वीकरण की प्रक्रिया के साथ में देखना होगा । यह इसलिये कि आधुनिकता और वैश्वीकरण एक दूसरे की पूरक हैं । दूसरा आधुनिकता का बहुत बड़ा लक्षण वैश्वीकरण है ।

आधुनिकता किसी पद या स्थिति को अभिव्यक्त नहीं करती वरन् एक प्रक्रिया को अभिव्यक्त करती है । विद्धानों का मत है कि आधुनिकता स्थिर समाजों की अपेक्षा गतिशील समाजों में अधिक पाई जाती है । गतिशील समाज का अभिप्राय उन जनतान्त्रिक समाजों से है, जिनका आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक विकास वैज्ञानिक विधियों पर आधारित होता है ।

इस प्रकार आधुनिकता के सम्बन्ध में निम्न बातें कही जा सकती है -

- यह सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है ।
- यह प्रक्रिया प्रौद्योगिकी पर आधारित होती है ।
- इसे समाज पर लादा या थोपा नहीं जा सकता ।
- आधुनिकता में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के तत्व पाये जाते हैं ।

एन्थोनी गिडिन्स ने आधुनिकता की पांच महत्वपूर्ण विशेषताएं बताई है -

1. उद्योगवाद
2. पूंजीवाद
3. प्रशासनिक शक्ति
4. राष्ट्र राज्य
5. प्रतिबिम्ब समाज

3.4 आधुनिकीकरण के विभिन्न तत्व

1. वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Attitude): वैज्ञानिक दृष्टिकोण व्यक्ति को अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता से दूर रखता है और उसको उदारवादी बनाता है । उसका चिन्तन तर्कपूर्ण और आलोचनात्मक होता है वह निरीक्षण और पूरी जांच के बाद ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है ।
2. परिवर्तन में विश्वास (Faith in Change): जीवन में परिवर्तन एक सहज प्रक्रिया है क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है । बिना परिवर्तन जीवन गतिरहित हो जाता है जीवन में गतिशीलता लाने के लिए परिवर्तन का होना बहुत आवश्यक है । जो व्यक्ति आधुनिकीकरण में विश्वास रखता है तो उसे परिवर्तन का भी स्वागत करना चाहिए ।
3. परिवर्तन सहमति से (Change through Persuasion(: परिवर्तन आम सहमति से हो । परिवर्तन के लिए शक्ति का प्रयोग नहीं होना चाहिए । दूसरों की सहमति प्राप्त करके शान्तिप्रिय तरीकों से इसे अपनाना चाहिए । दूसरों को यह अहसास करवाना

बहुत आवश्यक है कि जो परिवर्तन होने जा रहा है वह उनके लाभ और बेहतर जीवन के लिए है । परिवर्तन के लिए प्रजातान्त्रिक ढंग से प्रयास किये जाने चाहिए ।

4. विवेकपूर्ण चिन्तन (Rational Thinking): मानव इस संसार में ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है क्योंकि मनुष्य के पास सोचने की शक्ति है इसलिए वह विवेकशील प्राणी है । उसे अच्छे-बुरे की पहचान है विवेकशील प्राणी ही आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति दे सकता है ।
5. भौतिकता में विश्वास (Faith in Materialism): आज का युग भौतिकवाद का युग है। प्रारम्भ में भौतिक साधन नहीं थे परन्तु आज भौतिक साधन मनुष्य को आधुनिकीकरण के लिए प्रेरित करते है ।
6. प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण (Democratic Attitude): वे सभी व्यक्ति, समूह और संस्थाएँ जिनका प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण है, वे परिवर्तन लाने में सहायक होते हैं । प्रजातान्त्रिक नैतिकता आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तेज करती है ।
7. ज्ञान का विस्फोट (Explosion of Knowledge): आज का युग विज्ञान और टेक्नोलोजी का युग है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान का प्रयोग हो रहा है इसी कारण इस का विस्तार हो रहा है । इन सभी साधनों से आधुनिकता सहज हो गई है ।
8. धर्म-निरपेक्षता पर बल (Emphasis on Secularism): भारत प्रजातांत्रिक देश है और धर्म-निरपेक्षता इसका विशेष मूल्य है । धर्म-निरपेक्ष व्यक्ति सहनशील और उदार होता है यह धार्मिक स्वतंत्रता आधुनिकीकरण की प्रणाली में संभव है ।
9. औद्योगीकरण (Industrialization): विज्ञान के आविष्कारों और विभिन्न क्षेत्रों में खोज के परिणामस्वरूप औद्योगीकरण पर बल दिया जा रहा है। एक आधुनिक समाज के लिए औद्योगीकरण का होना बहुत आवश्यक है । औद्योगीकरण की प्रक्रिया आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करती है ।
10. शहरीकरण (Urbanization): आज के युग में ग्रामीणों का झुकाव शहर की ओर हो रहा है । इसका कारण शिक्षा का प्रसार है । ग्रामीणों का शहर की ओर झुकाव भी आधुनिकीकरण में सहायक है ।
11. कम्प्यूटरीकरण (Computerisation): भारत के नई शताब्दी में प्रवेश करने के साथ ही कम्प्यूटरीकरण का युग भी शुरू हो गया । आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कम्प्यूटर का प्रयोग हो रहा है । व्यवसाय, सरकारी दफ्तरों, बैंकों और निजी फैक्टरी में अधिक से अधिक कम्प्यूटर का उपयोग किया जा रहा है इससे हमारे काम करने के तरीकों में नवीनता आई है यह नवीनता का परिवर्तन समाज को आधुनिक बनाने में पूर्णरूप से सहायक है ।
12. जीवन का राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण (National and International outlook of life): आधुनिकता की गति को तीव्र करने के लिए भारत देश के नागरिकों और समाज का दृष्टिकोण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय होना चाहिए । राष्ट्रीयता का संकुचित अर्थ न लगाकर विस्तृत अर्थ लगाना चाहिए ।

3.5 भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में बाधाएं

1. एकता का अभाव (Lack of Unity): भारत एक बहु-पक्षीय, बहु-धर्मीय, और बहु-जातीय देश है । लोग अपने धर्म, भाषा, क्षेत्र में दृढ़ विश्वास करने लगे हैं । उनमें एकता का अभाव है जब कि यह देश की संपूर्ण प्रगति के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
2. सामाजिक संगठन का साम्प्रदायिक प्रकार (Communal type of Social Organisation): देश के विभिन्न सामाजिक संगठन साम्प्रदायिकता पर आधारित है । वे अपने स्वार्थों व उद्देश्यों के लिए ही कार्य करते है । उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वे जो प्रयत्न और ध्येय अपनाते हैं, वे संकुचित तथा सीमित है । ये संगठन देश की उन्नति के लिए कार्य नहीं करते ।
3. संकुचित धार्मिक विश्वास (Narrow religious belief): भारतीय समाज में बहुत धर्म है । लोग केवल अपने धर्मों में ही विश्वास करते हैं । उनमें दूसरे धर्मों के प्रति कोई लगाव तथा धैर्य नहीं है । उनके लिए उनके धार्मिक विश्वास का ही प्राथमिक महत्व है और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय रूचि माध्यमिक रूप से महत्वपूर्ण है ।
4. अज्ञानता (Illiteracy): जन-साधारण की अज्ञानता देश की उन्नति तथा विकास में मुख्य बाधा है । लोगों की शिक्षा ही समाज को विस्तृत दृष्टिकोण वाला बना सकती है।
5. गरीबी (Poverty): भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में एक अन्य रूकावट जनसाधारण की गरीबी है । विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में सभी प्रकार की प्रगति में काफी व्यय करने की आवश्यकता है । सभी को सर्वप्रथम रोटी, कपड़ा और मकान के बारे में सोचना पड़ता है । और बाद में अन्य चीजो पर विचार करना पड़ता है ।
6. पुरानी सांस्कृतिक परम्पराएं (Old Cultural Traditions): भारतीय समाज की अपनी पुरानी परम्पराएं तथा प्राचीन संस्कृति है । इस संदर्भ में भारतीय समाज विशिष्ट तथा अद्भुत है, परन्तु आधुनिकता सभी प्रकार के परिवर्तन में विश्वास करती है । कई रूढ़िवादी लोग जीवन के इस तेजी से बदलते सामाजिक ढांचे के साथ अनुकूलन करने में असमर्थ रहते है ।
7. समाज की बन्द प्रवृत्ति (Closed System of Society): भारतीय समाज बन्द प्रवृत्ति की प्रणाली है अर्थात् यह परिवर्तन को सहजता से स्वीकार नहीं करती । समाज में क्रमबद्ध वर्ग होते है । सामान्य लोगों को गतिशीलता पसन्द नहीं । अत: यह आधुनिकता की प्रक्रिया में बाधा डालती है ।
8. आदर्शो तथा वास्तविकता में अन्तर (Gap between Ideals and Actuals): यद्यपि लोग उच्च विचार तथा आदर्श रखते है, परन्तु वास्तविकता कुछ और ही होती है । इससे दोनों में खाई उत्पन्न होने लगती है । यह खाई या अन्तर जीवन के कई पक्षों में देखा जा सकता है । जो भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में रूकावट पैदा करता है ।
9. जातिवाद (Casteism): आधुनिकीकरण के मार्ग में जातिवाद एक अन्य बाधा है । प्राचीन काल में भारतीय समाज अनेक जातियों-उपजातियों में बंटा हुआ था । ये जन्म

पर आधारित थे । उच्च जाति को अपने बारे में श्रेष्ठता की भावना है व नीच जाति को हीनता की भावना है । लोग अपनी जाति के प्रति वफादार होते है । वह जाति आधारित समाज से निकलना नहीं चाहते । इसके परिणामस्वरूप वे समाज में परिवर्तन को स्वीकार करने में असफल रहते हैं । इसी प्रकार जातिवाद आधुनिकीकरण में बाधा बनता है ।

10. भाषा का मुद्दा (Language Issue): भारत अनेक भाषाओं की भूमि है । यहां के विभिन्न प्रान्तों के लोग भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते है । राष्ट्रीय विकास के लिए हमें एक भाषा रखनी होगी । परन्तु भाषाओं को लेकर इस देश में सदा लड़ाई-झगड़ा रहा है। विभिन्न भाषाएं आपसी तालमेल को रोकती है तथा आधुनिकीकरण में बाधा पहुँचती है ।

3.6 आधुनिकता की प्रक्रियाओं में तीव्रता लाने वाले कारण

1. मुनाफाखोरी की विचारधारा - पूंजीवाद के उदय के पश्चात् मुनाफाखोरी की विचारधारा आयी । पूंजीवाद में दो वर्गों का अस्तित्व आया - (i) गरीब (ii) अमीर / गरीब लोग जिस देश में रहते थे, उन्हे गरीब या पिछडे देश और अमीरों की दुनिया या समृद्ध देश अंग्रेजों ने भारत में कल कारखानों चलाये, भाप से चलने वाले उद्योग स्थापित किये और इस उद्योग, पूंजीवाद और बाजार ने आधुनिकता की प्रक्रियाओं को नई धारा दी, गति प्रदान की ।
2. राजनीतिक क्रान्तियों - 19वीं और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कई राजनीतिक क्रान्तियों का उदय हुआ । फ्रांस की क्रान्ति ने आधुनिक अधिकारों के बारे में बताया । स्वतन्त्रता, समानता तथा सामाजिक न्याय अस्तित्व में आऐ । इंग्लैंण्ड की रक्तहीन राज्य क्रान्ति की प्रजातान्त्रिक मूल्यों से जनता को परिचित कराया । इन मूल्यों ने न केवल राजनीतिक परिवर्तन को बढ़ावा दिया, इसके कारण सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवर्तन आए ।
3. पूंजीवादी संस्कृति की जवाबी संस्कृति समाजवाद का जन्म - पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद व्यवस्था ने आधुनिकता को तेज धारा दी वहीं यूरोप में एक जवाबी संस्कृति समाजवाद का जन्म हुआ । यह व्यवस्था मुख्यत: गरीबों के हितों की रक्षा के लिऐ अस्तित्व में आई ।
4. उदारवादी विचारधारा की विजय - उदारवादी अपने मूल में प्रजातान्त्रिक है । इसकी जड़े ज्ञानोदय में है । यह राजाशाही का विरोधी करती है तथा सामन्तवाद की दुश्मन है । इस उदारवादी विचारधारा ने आधुनिकता के विस्तार के विस्तार में बहुत बड़ा योगदान दिया ।

3.7 आधुनिकीकरण का शिक्षा पर प्रभाव

1. आधुनिकीकरण और शिक्षा के उद्देश्य (Modernisation and Aims of Education): शिक्षा के उद्देश्यों को समय के अनुरूप होना चाहिए । आधुनिकता निम्नलिखित उद्देश्यों

पर बल देती है - (i) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, (ii) छात्रों को रचनात्मक बनाना, (iii) उनमें जिज्ञासा उत्पन्न करना, (iv) छात्रों को विचारक बनाना, (v) प्रजातान्त्रिक नागरिकता का विकास, (vi) नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का ज्ञान देना, (vii) उत्पादकता में वृद्धि हेतु कुशल व्यक्तियों को उत्पन्न करना, (viii) सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति के लिए सहायता करना, (ix) नेतृत्व की भावना का विकास, (x) आधुनिकता की प्रक्रिया को बढ़ाना, (xi) प्रतिस्पर्धी बुद्धिजीवियों का विकास,) xii(अध्यापन को प्रेरित करना, (xiii) व्यक्ति को हर प्रकार के परिवर्तन को स्वीकारने में मदद करना ।

2. आधुनिकीकरण तथा पाठ्यक्रम (Modernisation and Curriculum): पाठ्यक्रम आधुनिक होना चाहिए और समाज द्वारा निर्धारित शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होना चाहिए । पाठ्यक्रम का स्तर संपूर्ण होना चाहिए - (i) पाठ्यक्रम विज्ञान-आधारित होना चाहिए, (ii) इसमें उत्पादन संबंधी निपुणताएं भी सम्मिलित होनी चाहिए, (iii) विषयों का विभिन्नीकरण तथा विशिष्टीकरण होना चाहिए,) iv (हस्तकार्य पर बल देना आवश्यक है । प्राईमरी स्तर पर हाथ का काम, उच्च प्राईमरी स्तर पर शिल्प, सैकण्डरी स्तर पर कृषि संबंधी, वाणिज्य अथवा औद्योगिक व्यवस्था, (v) समाज सेवा कार्यक्रम, स्वास्थ्य शिक्षा तथा पाठ्य सहायक क्रियाओं का गठन होना चाहिए, (vi) विज्ञान क्लब तथा संग्रहालय का पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिए, (vii) आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र बनाने के लिए जनसंख्या शिक्षा, स्त्री शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, समाज शिक्षा आदि को भी महत्व देना होगा ।

   अध्ययन के विषय (Subjects of Study): आधुनिकीकरण के संदर्भ में निम्नलिखित विषय पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने चाहिए: विज्ञान एवं तकनीकी, गणित, कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, कार्य अनुभव, शारीरिक शिक्षा, कलाएं, सामाजिक अध्ययन, स्वास्थ्य शिक्षा आदि ।

3. आधुनिकीकरण तथा शिक्षण विधियां) Modernisation and Methods of Teaching :(वैज्ञानिक दृष्टिकोण होने के कारण यह प्रोजेक्ट विधि, अनुसन्धान विधि, हयूरीस्टिक विधि, भाषण युक्त प्रदर्शन विधि आदि के समर्थन में है । यह शिक्षण तकनीक में Hardwares के प्रयोग पर बल देता है । टी.वी., रेडियो, कम्प्यूटर, वीडियो आदि का शिक्षण उद्देश्य में प्रयोग किया जाना चाहिए ।

4. आधुनिकता एवं अध्यापक (Modern and Teacher): आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में अध्यापक का महत्वपूर्ण स्थान है । केवल एक आधुनिक शिक्षक ही आधुनिकता लाने में सहायक हो सकता है । शिक्षक को पृष्ठभूमि में रहकर छात्रों को अपने व्यक्तिगत प्रयासों से सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए, तभी नवीन शिक्षा प्राप्ति के लिए शिक्षण मशीन, नियोजित शिक्षण, कम्प्यूटर के प्रयोग पर बल दिया गया है - (i) शिक्षकों को कुशल एव योग्य होना चाहिए । यह छोटी मशीनों को जन्म देने वाली प्रधान मशीन है, (ii) उन्हें देश के आधुनिकीकरण की आवश्यकता पर बल देना चाहिए

ताकि वह अन्तर्राष्ट्रीय रूप से प्रतिस्पर्धी हो सके, (iii) उन्हें सभी अन्धविश्वासों का त्याग कर छात्रों में सकारात्मक, निर्माणात्मक तथा यथार्थवादी दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए । उन्हें आधुनिक शिक्षण तकनीक के प्रयोग को प्रेरित करना चाहिए ।

5. आधुनिकीकरण एवं अनुशासन (Modernisation and Discipline): आधुनिकता स्वतंत्र अनुशासन में विश्वास करती है । विद्यार्थी स्वतंत्रता का एक सीमा में लाभ उठाते है । उनमें स्व-अनुशासन की भावना होती है । जिसमें उनका प्रजातान्त्रिक सामाजिक प्रणाली और प्रजातान्त्रिक नेता के प्रति आदर भाव भी शामिल है ।

3.8 आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करने में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा प्रभावशाली आधुनिकता प्राप्ति करने में मुख्य सहायक तत्व हैं, परन्तु आज नवीन तथा पूर्ण शिक्षा की आवश्यकता है । केवल उचित प्रकार की शिक्षा ही इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकती है । इसके लिए निम्नलिखित कुछ सुझाव एवं उपाय प्रस्तुत किये गये हैं -

1. शिक्षा को लोगों के दृष्टिकोण में सुधार कर उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तित करना चाहिए ।
2. यह राष्ट्रीय दृष्टिकोण तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास कर सकती है । इससे प्रत्येक व्यक्ति को विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले नवीनतम विकास का ज्ञान होगा जिससे व्यक्ति अपना वैयक्तिक बौद्धिक विकास कर सकेगा ।
3. शिक्षा को एक बेहतर जीवन के लिए प्रजातन्त्र व उसके मूल्यों का ज्ञान प्रदान करना होगा ।
4. आर्थिक उन्नति आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा ही संभव है । तकनीकी विकास लोगों को बेहतर व्यवसाय स्थापित करने के लिए बेहतर तकनीक बनने के लिए सहायक हो सकता है । यह आर्थिक सुधार लाकर व्यक्ति को एक उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में मदद देती है ।
5. शिक्षा व्यक्तियों में तर्कपूर्ण चिन्तन को प्रेरित करती है । व्यक्ति अन्ध-विश्वासों का त्याग कर तर्कपूर्ण एवं बुद्धिमतापूर्ण विचार करने लगता है ।
6. शिक्षा व्यक्ति को धर्म-निरपेक्षता का ज्ञान देती है । व्यक्ति केवल अपने धर्म तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि विस्तृत दृष्टिकोण अपनाता है और विश्व के सभी धर्मों का आदर करने लगता है ।
7. शिक्षा जीवन के परम्परागत मूल्यों की आधुनिक मूल्यों के साथ तुलना का स्पष्ट वर्णन करती है । परिणामस्वरूप व्यक्ति अनुकूल तथा प्रतिकूल में भेद करना सीख जाता है जो उसे भविष्य में सहायता देता है।
8. शिक्षा लोगों में संचार-कौशलों तथा भाईचारे की भावना का विकास करके राष्ट्रों में एकता पैदा करती है ।
9. शिक्षा के द्वारा हम कार्य एवं उत्पादन संबंधी सामान्य तथा विशिष्ट कौशल प्राप्त कर सकते है ।

10. शिक्षा बौद्धिक प्रणालियों के संरक्षण, सम्पन्नता तथा सुधार में सहायक है ।
11. शिक्षा परिवर्तन के साधन के रूप में स्वयं शिक्षा के आधुनिकीकरण से संबंधित है ।

3.9 मूल्यांकन प्रश्न

1. आधुनिकीकरण का अर्थ समझाते हुए परिभाषायें लिखिये?
2. आधुनिकीकरण के विभिन्न तत्वों का विस्तार से विश्लेषण कीजिए?
3. भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में विभिन्न बाधाऐं कौन सी है?
4. आधुनिकीकरण का शिक्षा पर प्रभाव का विश्लेषण कीजिए?
5. शिक्षा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को कैसे तीव्र करती है?

3.10 संदर्भ ग्रंथ

1. ओड, एल.के (1990) "शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि" राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
2. रुहेला, सत्यपाल (1972) "शिक्षा का समाजशास्त्र मूल्य संप्रत्यय और सिद्धान्त" उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी लखनऊ
3. पाण्डेय, रामशकल (1999) "शिक्षा दर्शन" विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।
4. सिंह, एन.पी. (2002) "शिक्षा के दार्शनिक आधार" आर.लाल बुक डिपो, मेरठ ।

इकाई - 4

भारत में शिक्षा तथा आर्थिक विकास

इकाई की संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 आर्थिक विकास के बाधक तत्व

4.3 शिक्षा तथा आर्थिक विकास

4.4 शिक्षा: निवेश के रूप में
मानव शक्ति नियोजन और शिक्षा

4.5 भारतीय सन्दर्भ में शिक्षा और आर्थिक विकास

4.6 शिक्षा के प्रतिफल

4.6.1 शिक्षा प्रतिफलों के प्रकार

4.6.2 शिक्षा प्रतिफल का मापन

4.6.3 मापन की कठिनाईयाँ

4.7 सारांश

4.8 मूल्यांकन प्रश्न

4.9 सन्दर्भ ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी -

- शिक्षा और आर्थिक विकास के सम्बन्ध को जानेंगे ।
- आर्थिक विकास के बाधक तत्वों को जानेंगे ।
- भारत के सन्दर्भ में आर्थिक विकास शिक्षा के द्वारा किस प्रकार किया जा सकता है, जानेंगे ।
- शिक्षा के प्रतिफल के प्रकारों को जान सकेंगे ।
- शिक्षा के प्रतिफलों का मापन और आने वाली कठिनाईयों को जानेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

जिस प्रकार शिक्षा राजनैतिक चिन्तन. विज्ञान, धर्म आदि का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार आर्थिक चिन्तन तथा आर्थिक व्यवस्थाओं का भी शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है । यदि अर्थ व्यवस्था इस प्रकार की है कि उसमें शिक्षा पर विनियोजन करने के लिये पर्याप्त पूंजी उपलब्ध होती है तब समाज का आर्थिक विकास होगा । यदि देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है तो वह शिक्षा पर उतना ही अधिक व्यय कर सकता है और इसके परिणामस्वरूप देश का आर्थिक

विकास होता है, जिससे आर्थिक सम्पन्नता में और अधिक वृद्धि होती है । इस प्रकार आर्थिक सम्पन्नता तथा शैक्षणिक सुविधाओं में घनिष्ठ संबंध है । यदि समाज का व्यक्ति शिक्षित है तो वह देश अधिक आर्थिक विकास करेगा । आर्थिक विकास से जीवन स्तर उच्च होता है और जीवन स्तर की उच्चता के अनुपात में शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार होता है । इसी के साथ शैक्षिक सुविधाऐं जितनी विस्तृत तथा श्रेष्ठ होती है उसी के अनुपात में जीवन स्तर और उच्च होता जाता है ।

शिक्षा एवं आर्थिक विकास सदैव एक ज्वलंत तथा विवादास्पद विषय रहा है । शिक्षा के विकास के लिए आर्थिक समृद्धि तथा विकास को आवश्यक तत्व माना गया है वहीं दूसरी ओर शिक्षा को आर्थिक विकास के एक कारक के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई । इस प्रकार शिक्षा तथा आर्थिक विकास की पारस्परिक निर्भरता की अवधारणा अस्तित्व में आई ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व में अनेक देश साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त हुए, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक संस्थाओं का गठन हुआ और विश्व स्तर पर अशिक्षा, गरीबी एवं राजनैतिक दासता के विरूद्ध संघर्ष प्रारम्भ हुआ । निर्धनता की समाप्ति एवं आर्थिक विकास की गति तीव्र करना अर्थशास्त्र की केन्द्रीय समस्या बन गया । इन्ही प्रयासों के अंतर्गत यह पाया गया कि आर्थिक विकास हेतु केवल भौतिक पूंजी निर्माण ही आवश्यक नहीं है वरन् मानवीय पूंजी निर्माण भी आवश्यक है ।

मानवीय पूंजी निर्माण में शिक्षा एवं प्रशिक्षण को एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया गया । इसी दिशा में शिक्षा की उन्नति तथा विकास के प्रयासों में तेजी आई ।

शिक्षा तथा आर्थिक विकास परस्पर अन्तर्सम्बंधित विषय है तथा इस दोनों विषयों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता हैं तथा एक के बिना दूसरे की कल्पना नामुमकिन है ।

4.2 शिक्षा तथा आर्थिक विकास

आर्थिक विकास में तकनीक का निम्न स्तर का होना बाधा उत्पन्न करता है । अधिकतर देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग निरक्षर है परन्तु विकसित देशों में जनसंख्या उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुए है । एक अन्य बास्क तत्व निम्न बचत स्तर का होना है घरेलू बचतों का कुल राष्ट्रीय उत्पादन अनुपात अफ्रिकी देशों में 5-23 प्रतिशत है । जबकि एशियाई देशों में यह अनुपात 23-32 प्रतिशत है । आर्थिक विकास में जनसंख्या वृद्धि दर भी आर्थिक विकास को प्रभावित करती है । संसार की आधी से अधिक जनसंख्या एशिया में निवास करती है जिससे आर्थिक असंतुलन आ गया है । जनसंख्या और बेरोजगारी परस्पर जुडी हुई है जिसका समाधान शिक्षा के द्वारा ही संभव है।

आर्थिक व्यवस्था का उत्पादन के स्रोतों के दृष्टिकोण से विभाजन निम्नलिखित है -

1. कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था और शिक्षा - कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में पाठ्यक्रम में अधिक विविधता नहीं पाई जाती, गुणात्मक दृष्टि से शैक्षिक स्तर पर निम्न होता है तथा शैक्षिक सुविधाएं भी अल्प होती है । साधारणतया कृषि संबंधी कार्य बालक परिवार के सदस्यों के कार्यों के अनुकरण द्वारा सीख लेता था और उसकी पढ़ाई कर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था । वर्तमान में वैज्ञानिक विधि से खेती के लिए केवल साक्षर होना ही पर्याप्त नहीं है वरन् कृषि विज्ञान का उच्च ज्ञान भी अपेक्षित है । कृषि के

क्षेत्रों में वैज्ञानिक खोजों के परिणामस्वरूप कृषक अधिक सम्पन्न होता जा रहा है । उसे नवीनतम जानकारी रखनी पड़ती है ।

2. वाणिज्य प्रधान अर्थव्यवस्था और शिक्षा - वाणिज्य प्रधान अर्थव्यवस्था में शिक्षा विशेषरूप से औपचारिक शिक्षा का अत्यधिक महत्व है । जिन समाजों में अर्थव्यवस्था में वाणिज्य की प्रधानता होती है वहां व्यापारी वर्ग का विशेष महत्व होता है इस वर्ग में पुस्तकीय शिक्षा की आवश्यकता अधिक होती है उसे व्यापार चलाने के लिए बहीखाते लिखना, हिसाब करना, लेनदेन संबंधी कानून की जानकारी, अनेक परिपत्र भरना आदि के लिए उच्च स्तर की शिक्षा की आवश्यकता होती है ।
3. उद्योगप्रधान अर्थव्यवस्था और शिक्षा - इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में भारी उद्योगों पर बल दिया जाता है । आधुनिक उद्योगों में विज्ञान और नवीन तकनीक का प्रयोग किया जाता है । जिससे प्रबन्ध और वाणिज्य बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । उद्योग प्रधान अर्थव्यवस्था में शिक्षा की अनिवार्यता महत्ता सर्वाधिक है ।

उद्योग प्रधान अर्थव्यवस्था में अवकाश की मात्रा बढ़ जाती है जिसके कई कारण है जैसे स्वचालित मशीनों का प्रयोग अधिक होने से श्रमशक्ति घट जाती है । दूसरे और मशीनों पर अधिक समय तक कार्य करने पर श्रमिकों के स्वास्थय पर बुरा प्रभाव पड़ता है उनकी कार्यकुशलता कम हो जाती है इरा अवकाश के समय का उपयोग करने के लिए सतत शिक्षा की आवश्यकता होती है । अवकाश के अतिरिक्त श्रमिकों की आय भी बढ़ जाती है जिससे वे अधिक शिक्षा प्राप्ति की ओर प्रवृत होते है । इसके अतिरिक्त एक निश्चित आयु तक के बालकों को उद्योगों में नहीं लगाया जाता, अत: उनके लिए शिक्षा की संभावनाएं बढ़ जाती है ।

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास से आशय राष्ट्रीय उत्पादन में निरन्तर वृद्धि, वहां के लोगों की सुख-सुविधाओं में वृद्धि, रहन-सहन के स्तर में सुधार, आदतों में परिवर्तन-एवं भौतिक सुविधाओं के उच्च उपभोग के स्तर से है । आर्थिक विकास के कारण चूंकि शिक्षा के वित्तीय साधनों में वृद्धि होती है इसलिए यह कहा जा सकता है कि शिक्षा पर आर्थिक विकास का प्रभाव पड़ता है ।

जिस समाज, राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी उस राष्ट्र या समाज की शिक्षा का स्तर भी उच्च तथा सुदृढ़ होगा क्योंकि आर्थिक रूप से सशक्त समाज व शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना प्रमुखता से करता है तथा शिक्षा हेतु आवश्यक संसाधन भी उपलब्ध कराता है । वहीं दूसरी ओर जिस समाज की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं होती उस समाज में शिक्षा को प्राथमिक आवश्यकताओं में स्थान प्राप्त नहीं होता है तो फिर शिक्षा हेतु आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता तो दूर की बात है । जिस प्रकार समाज के शैक्षिक उन्नयन हेतु आर्थिक स्थिति/विकास उत्तरदायी कारक है ठीक उसी समय समाज या राष्ट्र के आर्थिक विकास में प्राचीनकाल से शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है ।

आर्थिक विकास का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन वृद्धि से है । शिक्षा चूंकि विकास के लिए जरूरी घटक है अतएव शिक्षा में वृद्धि द्वारा ही यह विकास संभव है । शिक्षा, उत्पादन के महत्वपूर्ण घटक मानव संसाधन के विकास में सहायक है । किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास के साथ-साथ स्वत: ही समाज में फैली निर्धनता, अशिक्षा तथा उस पर आधारित पुराने

रीति-रिवाज तथा अंधविश्वास दूर होते है । सामाजिक कटुता, विषमता तथा द्वेश को दूर कर शिक्षा सामाजिकता का भी विकास करती है ।

4.3 शिक्षा: निवेश के रूप में

विनियोग तथा उपभोग अर्थशास्त्र की प्रमुख अवधारणाएं है वे वस्तुऐं तथा सेवाऐं जिनका लाभ उपभोक्ता तत्काल ही उठा सकता है उपभोग कहलाती है तथा जिनका उपयोग दीर्घकालीन उत्पादन में किया जा सके, वे विनियोग कहलाती है । शिक्षा का उपयोग इस दृष्टि से कहा जा सकता है क्योंकि उसके द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है, शिक्षा अपने आप में अच्छी समझी जाती है इस पर खर्च किया जाता है साथ ही शिक्षा को विनियोग इस दृष्टि से कहा जा सकता है क्योंकि शिक्षा द्वारा व्यक्तियों में ऐसे गुण व क्षमताएं आ जाती है जो स्वयं अपने लिए तो धन कमाते ही हैं, साथ-साथ देश की उत्पादन प्रक्रिया में भी सहायता करते है ।

शरीर की रक्षा के लिए आर्थिक संसाधनों की नितांत एवं अनिवार्य आवश्यकता है । इन संसाधनों की पर्याप्त प्राप्ति ही आर्थिक विकास होता है । अर्थशास्त्र में निवेश या विनियोग का अर्थ ऐसे कार्यों में पूंजी लगाना है जो पुन: उत्पादन तथा आय वृद्धि में सहायक हो । इस संदर्भ में शिक्षा को विनियोग के रूप में देखा जाता है क्योंकि शिक्षा पर पूंजी के विनियोग के फलस्वरूप उत्पादन एवं आय में वृद्धि होती है ।

शिक्षा का एक उद्देश्य व्यक्ति में ऐसी क्षमता का विकास करना है कि व्यक्ति जीविकोपार्जन में समर्थ हो सके ताकि वह स्वावलम्बी रूप में जीवन व्यतीत करते हुए राष्ट्र के आर्थिक विकास में सक्रिय सहभागी बन सके ।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में शिक्षा अधिग्रहण से व्यक्ति को स्वयं पर विनियोग करने का अवसर मिलता हैं शिक्षा मानव के लिए एक तरह का विनियोग है । शिक्षा पर व्यय को पहले गौण स्थान प्राप्त था अब इन्हीं शैक्षिक क्रियाओं को आर्थिक साध्यों की प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन माना जाने लगा है । वास्तव में शिक्षा पर व्यय करके मानवीय योग्यता, बुद्धिमत्ता तथा उत्पादकता को विकसित किया जा सकता हैं जो आर्थिक विकास का मूल आधार है ।

उत्पादन के अनेक साधन होते है जिसमें पूंजी महत्वपूर्ण है । पूंजी तीन प्रकार की होती है - भौतिक पूंजी जैसे मशीन । दूसरे प्रकार की पूंजी मानवीय पूंजी होती है जैसे शिक्षा प्राप्त मनुष्य । तीसरे प्रकार की पूंजी वित्तीय पूंजी है जो कि भौतिक एवं मानवीय पूंजी की मुद्रा संबंधी रूप होता है । देश का उत्पादन बढ़ाने के लिए मानवीय पूंजी को उन्नत होना अति आवश्यक है इसके लिए व्यक्ति को अधिक से अधिक तथा विभिन्न प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिये । शिक्षा प्रणाली की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके द्वारा कितनी उन्नत मानव पूंजी का निर्माण हुआ अर्थात् पुरूषों व स्त्रीयों की व्यावसायिक निपुणता, उसकी योग्यता, बौद्धिक, उसका चरित्र तथा सांस्कृतिक स्तर आदि ।

शिक्षा में विनियोग शिक्षा पर लगाई जाने वाली लागत । अर्थात् भौतिक विनियोग समाज में आर्थिक विकास में सहायक होता है । इसी सहसम्बन्ध के आधार पर शिक्षा का प्रकार, स्वरूप, मात्रा तथा दिशा निर्धारित की जाती है । अधिकांश देशों में उच्च स्तरीय शिक्षा से आर्थिक विकास में वृद्धि है लेकिन कम विकसित देशों में जहां कुशल श्रमिकों तथा मध्यम

श्रेणी के कर्मचारियों की अधिक आवश्यकता है, वहां उच्च शिक्षा द्वारा शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी बढ़ गई है ।

स्ट्रीमेलिन के अनुसार शिक्षा के पूँजी लाभ का निर्धारण एक समाज के विद्यालयी शिक्षा पर व्यय की तुलना उसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ करने पर की जा सकती है । उन्होंने रूस का उदाहरण देते हुए कहा कि सन् 1924 में की गई गणना के अनुसार जो धन प्रस्तावित प्राथमिक शिक्षा में वृद्धि बालकों की संख्या में वृद्धि जो विद्यालयों में 4-8 मिलियन 10 वर्ष में की जानी थी, के लिए चाहिए था उनका अनुमान 1624 मिलियन रूबेल था । राष्ट्रीय आय में वृद्धि जो उस मजदूर वर्ग जिसका इन वर्षों में शिक्षण किया गया था वह इस काल के अन्त में 2000 मिलियन रूबेल के बराबर था । जिससे शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय से कहीं अधिक उत्पादन प्रदर्शित किया गया था ।

4.4 मानव शक्ति नियोजन व शिक्षा

आर्थिक विकास का उत्पादन के मानवीय साधनों से घनिष्ठ संबंध है देश की शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिससे देश की उत्पादन आवश्यकता के अनुसार योग्य एवं प्रशिक्षित कार्यकर्ता उपलब्ध हो सके । भविष्य में देश के आर्थिक विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कितनी मानव शक्ति की आवश्यकता होगी शैक्षिक निर्णय इसी तथ्य के अनुरूप होने चाहिये । दीर्घकालीन मानव शक्ति संबंधी पूर्वानुमान तथा नियोजन इसलिए आवश्यक है । मानव शक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार शैक्षिक नियोजन किया जाता है मानव शक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार शैक्षिक नियोजन के लिए निम्नलिखित निर्णय किये जाते है -

1. अर्थव्यवस्था के विभिन्न व्यवसायों के लिए काफी लंबे समय के लिए अपेक्षित मानवशक्ति का पूर्वानुमान लगाना ।
2. विभिन्न व्यवसायों के लिए विभिन्न स्तर और विभिन्न प्रकार की शिक्षा का प्रावधान करना ।
3. प्रस्तावित व्यावसायिक शिक्षा के लिए शिक्षा पद्धति में अप्रेक्षित परिवर्तन करना ।

शिक्षित व्यक्ति जब किसी व्यवसाय में लगाये जाने योग्य होते हैं तभी इसकी उपयोगिता होती है। इसके लिए विश्वविद्यालयों द्वारा अपने पाठ्यक्रमों में इस प्रकार का परिर्वतन करना चाहिये जिससे विद्यार्थी बाजार में अपेक्षित कौशल को सीख सकें तथा देश के आर्थिक विकास में अपना सहयोग दे सकें । कौशल के प्रशिक्षण के लिए अलग विभाग स्थापित कर विश्वविद्यालय अर्थव्यवस्था के लिए मानव शक्ति प्रदान कर सकते हैं तथा रोजगार के नये-नये अवसर उत्पन्न कर सकते हैं ।

4.5 भारतीय संदर्भ में शिक्षा तथा आर्थिक विकास

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के आंकलन के अनुसार वर्ष 2010-11 में भारत के सकल घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर 9.4% है अर्थात् विश्व की सर्वाधिक तेजी से विकसित हो रही अर्थव्यवस्थाओं में भारत दूसरे नम्बर पर है । औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हो रही है, शेयर सूचकांक 20000 के अंक को पार कर गया तथा संचार के क्षेत्र में 3जी स्पैक्ट्रम की नीलामी से सरकार को 67719 करोड़ रूपये तथा ब्राडबैण्ड वायरलैस एक्सेस हेतु स्पैक्ट्रम की नीलामी से

38543 करोड़ रूपये की धनराशि प्राप्त हुई है । औद्योगिक तथा सेवा क्षेत्रकों में निवेश तथा उत्पादन की दर में निरन्तर वृद्धि हो रही है ।

उपर्युक्त तथ्य भारत के आर्थिक विकास का प्रगतिशील स्वरूप को स्पष्ट करते हैं । इस आर्थिक प्रगति में शिक्षा का स्थान सर्वोपरि है । भारत में विज्ञान-तकनीक आधारित शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा का स्तर तथा इसकी गुणवत्ता श्रेष्ठ होने के कारण कई कुशल वैज्ञानिक, तकनीशियन, शिक्षाविद् बुद्धिजीवी, व्यवसायी भारत का नाम सम्पूर्ण विश्व में रोशन कर रहे हैं ।

14 जुलाई 2010 को प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया के हवाले से आया दूसरा समाचार उपर्युक्त तथ्यों की चमक को फीका कर देता है । संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) के सहयोग से ऑक्सफोर्ड पॉवर्टी तथा मानव विकास पहल (Oxford povetry and Human Development initiative) द्वारा विकसित किए गए बहुआयामी निर्धनता सूचकांक (A Multidimensional poverty Index MPI) 2007 में भारत के 57.4% लोग निर्धनता की मार से त्रस्त थे । वर्तमान में भारत में उत्तर प्रदेश बिहार, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, झारखण्ड, उड़ीसा, राजस्थान तथा पश्चिमी बंगाल में 42.1 करोड़ लोग बहुआयामी निर्धनता की मार झेल रहे हैं । यह संख्या अफ्रीका महाद्वीप के 28 निर्धनतम देशों में रह रहे लगभग 41 करोड़ निर्धनों से भी अधिक है ।

विचलित करने वाले तथ्यों में - वैश्विक भूख सूचकांक (Global Hunger Index) में 81 देशों की सूची में भारत 62वें स्थान पर है । मानव विकास सूचकांक (2009) में भारत विश्व के 182 देशों में 134वें स्थान पर हैं लिंगमूलक विकास सूचकांक में 153 देशों की सूची में भारत 114वें स्थान पर है ।

यह भारतीय अर्थव्यवस्था/आर्थिक विकास का दूसरा किन्तु वास्तविक स्वरूप है । इन विकट परिस्थितियों के मूल में बेरोजगारी, अशिक्षा, कुपोषण अपना जाल फैलाए है । शिक्षा का अधिकार, भले ही एक संवैधानिक एवं विधिक अधिकार क्यों न हो, लेकिन गुणात्मक शिक्षा निर्धनों की पहुंच से बहुत दूर है । बेरोजगारी न स्वेल आर्थिक समस्या है अपितु यह सामाजिक समस्या भी है । बेरोजगारी वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति को काम करने की इच्छा रखने एवं अर्थोपार्जन करने हेतु प्रयत्न करने पर भी पूर्ण रोजगार प्राप्त ना हो । हमारे देश में बेरोजगारी के दो स्वरूप विद्यमान हैं -

1. शिक्षितों की बेरोजगारी
2. अशिक्षितों की बेरोजगारी

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी हमारे नवयुवक रोजगार के लिए सक्षम नहीं हो पाते क्योंकि उन्हें किताबी ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान नहीं मिलता । वहीं दूसरी ओर अशिक्षित बेरोजगारों में जुलाहे, बढ़ई, तेली, कुम्हार आदि पारम्परिक दस्तकारों को मशीनों ने बेरोजगार कर दिया है ।

शिक्षा का योगदान बेरोजगारी निराकरण में भी महत्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षा व्यक्ति में सोचने, समझने तथा नए दृष्टिकोण का विकास करती है । अब तक सरकार ने बेकारी की समस्या का जो भी हल निकाला है, वे शिक्षा के माध्यम से ही निकाले हैं ।

4.6 शिक्षा के प्रतिफल

प्रतिफल का आशय किसी उद्यम या क्षेत्र में विनियोग के फलस्वरूप मिलने वाले लाभों से होता है। इसे प्रत्यय, प्रतिफल, प्रत्यागम या लाभ ही कहा जा सकता है । शिक्षा के प्रतिफल का आशय शिक्षा पर विनियोग किये जाने वाली पूंजी अर्थात अदा से प्राप्त होने वाली प्रदा से है अर्थात कोई समाज शिक्षा पर जो विनियोग करता है उसका क्या लाभ उसे प्राप्त होता है? इसमें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सभी लाभ सम्मिलित है ।

शिक्षा के प्रतिफल की दो विशेषताएँ हैं । प्रथम यह कि शिक्षा से जो प्रतिफल प्राप्त होता है, वह अभौतिक होता है और इसकी संख्यात्मक माप या गणना संभव नहीं है । दूसरी यह कि शिक्षा का प्रतिफल दीर्घकालीन होता है अर्थात इसकी वापसी या लाभ लंबे समय के बाद प्राप्त होते हैं ।

4.6.1 शिक्षा प्रतिफलों के प्रकार

शिक्षा के प्रतिफल निम्न प्रकार से होते हैं :-

1. मोद्रिक एवं अमोद्रिक प्रतिफल
2. व्यक्तिगत एवं समष्टिगत प्रतिफल
3. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रतिफल

एक अशिक्षित व्यक्ति की तुलना में शिक्षित व्यक्ति अधिक कमा सकता है, शिक्षित व्यक्ति की आय में यह वृद्धि मोद्रिक प्रतिफल है । शिक्षा द्वारा व्यक्ति को जो आन्तरिक आनन्द सन्तुष्टि या सुख प्राप्त होता है, वह अमोद्रिक प्रतिफल है ।

व्यक्तिगत प्रतिफल से आशय ऐसे लाभों से हैं जो केवल एक व्यक्ति या उसके परिवार तक ही सीमित रहते हैं । उदाहरणार्थ शिक्षा द्वारा यदि किसी व्यक्ति की आय में वृद्धि होती है या उसकी सामाजिक परिस्थिति में परिवर्तन आता है तो वह व्यक्तिगत प्रतिफल होगा । इसके विपरित यदि शिक्षा पर विनियोग के फलस्वरूप सम्पूर्ण समाज या राष्ट्र को लाभ प्राप्त होता है तो यह सामाजिक प्रतिफल होगा । उदाहरणार्थ शिक्षा पर विनियोग के फलस्वरूप यदि उत्पादन तकनीक में सुधार होता है या वैज्ञानिक उन्नति होती है या सामाजिक दशाओं में सुधार होता है तो इसे सामाजिक प्रतिफल कहा जायेगा ।

प्रत्यक्ष प्रतिफल वे है जो व्यक्तिगत आय में वृद्धि, कृषि एवं उद्योगों में उत्पादन वृद्धि, राष्ट्रीय आय की वृद्धि के रूप में प्राप्त होते हैं प्रत्यक्ष प्रतिफल होंगे । इसके विपरीत यदि शिक्षा में वृद्धि के फलस्वरूप समाज में अपराधों की कमी होती है या शिक्षा के कारण जनसंख्या में कमी होती है तो यह अप्रत्यक्ष प्रतिफल का उदाहरण है ।

4.6.2 शिक्षा के प्रतिफल का मापन

शिक्षा के प्रतिफल की माप एक कठिन कार्य है । वैसे अर्थशास्त्रीयों ने दो प्रकार के माप बताये हैं:-

1. व्यक्तिगत आय में वृद्धि की माप:- सामान्य शिक्षा या विशिष्ट शिक्षा द्वारा व्यक्ति की आय में वृद्धि होती है । इस प्रविधि के अन्तर्गत एक ही पेशे या व्यवसाय में लगे शिक्षित व्यक्ति की जीवनकाल की सम्पूर्ण आय से किसी अशिक्षित व्यक्ति की जीवनकाल की औसत आय को घटाकर अन्तर ज्ञात किया जाता है । पहले व्यक्ति की आय दूसरे व्यक्ति की आय से जितनी अधिक होगी वह विशिष्ट शिक्षा पर निवेश का प्रतिफल है ।
2. कुल उत्पादन में वृद्धि की माप:- इस मापदण्ड के अनुसार शिक्षा में विनियोजन करने पर एक निश्चित समयावधि में कुल राष्ट्रीय उत्पादन में जितनी वृद्धि होती है उसका आंकलन कर लिया जाता है । अमेरिका में टी.डब्लू षूल्जे तथा भारत में प्रो. पंचमुखी ने इस विधि का प्रयोग किया है।

4.6.3 मापन की कठिनाइयां

उक्त दोनों मापन पूर्ण नहीं है । व्यक्तिगत मापन में केवल प्रत्यक्ष लाभों का ही माप संभव है । इस विधि में दूसरी कमी यह है कि अर्जन (कमाई) का अंतर शिक्षा के अतिरिक्त व्यक्तिगत क्षमताओं पर भी निर्भर होता है, जिनकी यह उपेक्षा करता है । कुल राष्ट्रीय मापन में भी यही कठिनाई है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर शिक्षा के प्रभाव को अलग करना कठिन होता है ।

4.7 सारांश

शिक्षा मनुष्य को अन्य सभी प्राणियों से अलग एक विशिष्ट पहचान देती है । मानव समाज राष्ट्र की इकाई होता है । कोई भी देश या समाज जितना शिक्षित होगा आर्थिक रूप से वह उतना ही विकसित होगा । इसी प्रकार जिस समाज अथवा देश के नागरिक जितने ही निरक्षर होगें वह समाज अथवा देश उतना ही आर्थिक रूप से अविकसित होगा । अशिक्षा से गरीबी बढ़ती है तथा गरीबी से अशिक्षा दोनों के मध्य गहरा सम्बन्ध है ।

इसी प्रकार आर्थिक विकास के कारण शिक्षा के वित्तीय साधनों में वृद्धि होती है, शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ती है, शैक्षिक साज-सज्जा में वृद्धि होती है । अत: स्पष्ट है कि शिक्षा पर आर्थिक विकास का प्रभाव पड़ता है ।

आज के वैज्ञानिक युग में कोई भी देश तभी उन्नति कर सकता है जब वह तकनीकी एवं औद्योगिक क्षेत्र में भी विकसित हो । इसके लिए समाज को अपने नागरिकों को आधुनिक तकनीक, आविष्कारों, जानकारियों आदि से परिचित करवाना होगा । उन्हें समय-समय पर प्रशिक्षण देना होगा । तभी देश तकनीक एवं औद्योगिक क्षेत्र में विकसित होगा ।

भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि आधारित है अत: भारत के आर्थिक विकास में कृषि का बड़ा योगदान है कृषि, के क्षेत्र में नित्य नई तकनीक का आविष्कार हो रहा है । यदि कृषकों को इसकी जानकारी नहीं होगी तो वे अधिक उत्पादन नहीं कर पाएंगे । अत: स्पष्ट है कि शिक्षा तथा आर्थिक विकास का गहरा अंतर्सम्बंध होता है ।

4.8 मूल्यांकन प्रश्न

1. शिक्षा और आर्थिक विकास में संबंध स्पष्ट कीजिए?

2. आर्थिक विकास में बाधक तत्वों की विवेचना कीजिए?
3. शिक्षा का किसी देश की आर्थिक प्रगति पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. शिक्षा के प्रतिफलों के प्रकार बताते हुए उनके मापन को समझाइये ।

4.9 संदर्भ ग्रंथ:-

1. Agrawal, A.N. (1986) Indian Economy problems of development and planning, Wiley Eastern Ltd., Delhi
2. Mathur, S.S. (1971) A sociological approach to Indian education. Vinod Pustak Mandli, Agra.
3. Strumelin, S. (1962) the economics of education in U.S.S.R., the International social science Journal, Vol. XIV, No.4.

इकाई -5

भारत में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण और शिक्षा

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 राष्ट्रीयता का अर्थ

5.3 भावात्मक एकता: अर्थ एवं आवश्यकता

5.4 राष्ट्रीय एकीकरण के आधार

5.5 राष्ट्रीय एकीकरण के विकास में शिक्षा की भूमिका

5.6 राष्ट्रीय एकीकरण: शिक्षण विधियां

5.7 मूल्यांकन प्रश्न

5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप..

- राष्ट्रीय एकता के लिये शिक्षा कार्यक्रमों को जान सकेंगे ।
- भावात्मक एकीकरण में शिक्षा की भूमिका को समझ सकेंगे ।
- राष्ट्रीय सद्भावना के विकास में शिक्षा की भूमिका की विवेचना कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

भारतवर्ष में अनेक भाषा भाषी, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, धर्म, मान्यताओं एवं विभिन्न संस्कृतियों वाले लोग रहते हैं । इन सबकी सुदृढ़ता के लिए आवश्यक है कि विभिन्न संस्कृतियों, वर्गों व जाति आदि के बीच में एकता बनी रहे । किन्तु कुछ वर्षों से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि धार्मिक सम्प्रदाय, विभिन्न भाषाएँ और जातियाँ आदि अपने- अपने मतों को लेकर राष्ट्रीय एकता के विखण्डन के लिए कटिबद्ध हो रही है । इससे राष्ट्र की एकता का भविष्य खतरे में पड़ गया है । अंग्रेजों की परतंत्रता से मुक्ति दिलाने में सम्पूर्ण भारत एकजुट होकर लग गया था और स्वतन्त्रता प्राप्त कर संसार के शिखर देशों में गिना जाने लगा था, किंतु आज स्थिति विषम हो चली है । राष्ट्रीय एकीकरण को स्थापित करने वाली इकाइयों ने अपने क्षुद्र स्वार्थों के वशीभूत होकर ऐसी समस्याएँ खड़ी कर दी है, जिससे राष्ट्रीय एकीकरण की स्थिति ड़ॉवॉडोल हो गई है । यदि भारत को एक राष्ट्र के रूप में जीवित रखना है तो राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में आने वाली समस्त बाधाओं को दूर करना होगा, तभी राष्ट्र व समाज की सुदृढ़ता बनी रह सकती है ।

5.2 राष्ट्रीयता का अर्थ

राष्ट्रवादियों का मत है - "व्यक्ति राष्ट्र के लिये है राष्ट्र व्यक्ति के लिये नहीं ।" इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र का अभिन्न अंग होता है । राष्ट्र से अलग होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं होता है । अत: प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र की दृढ़ता तथा अखण्डता को बनाये रखने में पूर्ण सहयोग प्रदान करें एवं राष्ट्र को शक्तिशाली बनाये । देश प्रेम की भावना तो प्राचीन काल से ही पाई जाती है परन्तु राष्ट्रीयता की भावना का जन्म केवल 18वीं सदी में फ्रांस की महान क्रान्ति के पश्चात् ही हुआ है । देश प्रेम का अर्थ उस स्थान से प्रेम रखना है जहां व्यक्ति जन्म लेता है । राष्ट्रीयता का अर्थ केवल राज्य के प्रति अपार भक्ति ही नहीं है अपितु इसका अभिप्राय राज्य तथा उसके धर्म, भाषा, इतिहास तथा संस्कृति में भी पूर्ण श्रद्धा रखना है । राष्ट्रीयता का सार राष्ट्र के प्रति अपार भक्ति, आज्ञा पालन तथा कर्त्तव्यपरायणता एवं सेवा है । बूबेकर के अनुसार - "राष्ट्रीयता शब्द की प्रसिद्धि पुनर्जागरण तथा विशेष रूप से फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् हुई है ।" यह साधारण रूप से देश प्रेम की अपेक्षा देश भक्ति के अधिक व्यापक क्षेत्र की ओर संकेत करती है ।

यदि नागरिक राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत है तो राष्ट्र उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहेगा अन्यथा उसे एक दिन रसातल की ओर जाना ही होगा । राष्ट्र को सबल तथा सफल बनाने के लिये नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना विकसित करना परम आवश्यक है । राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है । इसलिये प्रत्येक राष्ट्र अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये अपनी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुये अपने नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना के विकास हेतु शिक्षा को अपना मुख्य साधन बना लेता है ।

राष्ट्रीयता की शिक्षा के लाभ

राष्ट्रीयता की शिक्षा के निम्नलिखित लाभ हैं:-

1. राजनीतिक एकता

राष्ट्रीयता की शिक्षा से राष्ट्र में राजनीतिक एकता का विकास होता है । राजनीतिक एकता का अर्थ है - राष्ट्र में जातीयता, प्रांतीयता तथा सामाजिक वर्ग भेदों से ऊपर उठकर राष्ट्र के विभिन्न प्रान्तों, सामाजिक इकाइयों तथा जातियों में एकता का होना । राष्ट्रीय शिक्षा प्राप्त करके राष्ट्र के सभी नागरिक अपने सारे भेद-भावों को भूलकर राजनीतिक एकता के सूत्र में बंध जाते हैं जिससे राष्ट्र दृढ़ तथा सबल बन जाता है ।

2. संस्कृति का विकास

राष्ट्रीयता राष्ट्र की संस्कृति का संरक्षण, विकास तथा हस्तान्तरण करती है । यदि राष्ट्रीयता की शिक्षा की व्यवस्था उचित रूप से नहीं की गई तो राष्ट्र की संस्कृति विकसित नहीं होगी ।

3. सामाजिक उन्नति

राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति उसकी सामाजिक स्थिति पर भी बहुत कुछ आधारित होती है । राष्ट्रीयता की शिक्षा उक्त सभी दोषों को दूर करके नागरिकों में समानता का ऐसा स्वस्थ वातावरण निर्मित करती है जो राष्ट्र की निर्मल स्वच्छता की ओर ले जाता है ।

4. राष्ट्रीय भाषा का विकास

प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकों को किसी प्रमुख भाषा के द्वारा राष्ट्र की सम्पूर्ण विचारधारा तथा साहित्य की शिक्षा प्रदान करके समाज की विभिन्न इकाईयों, राज्यों तथा जातियों एवं प्रजातियों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास करता है । इससे राष्ट्रीय भाषा का विकास हो जाता है ।

5. स्वार्थ त्याग की भावना का विकास

राष्ट्रीयता की शिक्षा के द्वारा राष्ट्र के सभी नागरिकों में त्याग की भावना विकसित हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप उनकी सभी स्वार्थपूर्ण भावनायें समाप्त हो जाती है तथा वे अपने कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को पूर्ण निष्ठा के साथ निभाने का प्रयास करते रहते हैं । इससे राष्ट्र सुखी, उन्नतिशील तथा शक्तिशाली बन जाता

6. भ्रष्टाचार का अन्त

राष्ट्रीयता की शिक्षा के द्वारा राष्ट्र में भ्रष्टाचार का अन्त हो जाता है । ऐसी शिक्षा प्राप्त करके सभी नागरिक राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हो जाते हैं । परिणामस्वरूप वे निन्दनीय कार्यों को करते हुये करने लगते है ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीयता की शिक्षा नागरिकों में राष्ट्र के प्रति अपार भक्ति, आज्ञा पालन, आत्म त्याग, कर्त्तव्यपरायणता तथा अनुशासन आदि गुणों को विकसित करके सभी प्रकार के भेद-भावों को भुलाकर एकता के सूत्र में बांध देती है ।

राष्ट्रीय एकीकरण की निम्नलिखित परिभाषाऐ इस प्रकार है -

"राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सभी लोगों के दिलों में एकता की भावना, समान नागरिकता का अनुभव और राष्ट्र के प्रति निष्ठा और प्रेम की भावना को विकसित किया जाता है । "

जवाहर लाल नेहरू

"राष्ट्रीय एकीकरण को एक मनोवैज्ञानिक और शिक्षक प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया जा सकता है जिसमें एकता, दृढ़ता और सम्बद्धता की भावना का विकास सम्मिलित है जिसमें लोगों के हृदयों में सामान्य नागरिकता की धारणा तथा वफादारी की भावना सम्मिलित है ।"

धुर्ये

"राष्ट्रीय एकीकरण से तात्पर्य एसे मानसिक दृष्टिकोण का निर्माण करना है, जो सभी व्यक्तियों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे समूह की अपेक्षा अपने देश के प्रति निष्ठा रखे तथा दलीय स्वार्थों की अपेक्षा देश के कल्याण को सर्वोच्च महत्व दे ।"

भावात्मक एकता समिति

"यह भावात्मक एकता, भाई चारे और राष्ट्र प्रेम की वह दृढ़ भावना है जो एक देश के सभी निवासियों को अपनी व्यक्तिगत, क्षेत्रीय, धार्मिक और भाषाई विभिन्नताओं को भुलाने में सहायता देती है ।"

विनोबा भावे

इन परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय एकीकरण की स्थिति में समस्त इकाइयाँ अपने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, भाषाई, प्रान्तीय, क्षेत्रीय, साम्प्रदायिक एवं सांस्कृतिक मतभेदों को भुलाकर देश प्रेम की भावना से प्रेरित होकर सामूहिक कल्याण के लिए प्रयासरत रहती है । सारे देश की विश्व बंधुत्व की भावना में बांध दिया जाता है । राष्ट्रीय एकता सम्पूर्ण समाज में एकीकरण लाती है ।

5.3 राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा कार्यक्रम

भारत एक विशाल देश है । इस विशालता के कारण इस देश में हिन्दु, मुस्लिम, जैन, ईसाई, पारसी तथा सिख आदि विभिन्न धर्मों तथा जातियों एवं सम्प्रदायों के लोग रहते हैं ।

भारत में विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों तथा प्रजातियों एव भाषाओं के कारण आश्चर्यजनक विलक्षणता तथा विभिन्नता पाई जाती है ।

भारत में राष्ट्रीय एकता की विभिन्न समस्याऐं हैं जो निम्न प्रकार हैं :- जातिवाद (Casteism), साम्प्रदायिकता (Communalism), प्रान्तीयता, राजनीतिक दल (Political Parties), विभिन्न भाषाऐं, सामाजिक विभिन्नता (Social Differences), आर्थिक विभिन्नता (Economic Differences), नेतृत्व का अभाव (Lack of Leadership), अनुचित शिक्षा । इन बाधाओं को दूर करने के लिये व राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिये भारत सरकार ने दो समितियों का गठन किया - एक भावात्मक एकता समिति तथा दूसरी राष्ट्रीय एकता समिति । ऐसे ही राष्ट्रीय एकता समिति की अध्यक्षता श्रीमती गांधी ने की थी । भावात्मक एकता समिति का गठन सन् 1961 में डॉ. सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में हुई तथा राष्ट्रीय एकता समिति की स्थापना सन् 1967 में हुई । राष्ट्रीय एकता समिति की बैठक सन् 1968 में श्रीनगर में हुई जहां पर राष्ट्रीय एकता विकास हेतु मुख्य उद्देश्यों की घोषणा की गई । समिति ने राष्ट्रीय एकता के लिये सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार पर ही नहीं अपितु देश के प्रत्येक नागरिक पर माना ।

इसी संदर्भ में 15वीं राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की बैठक 10 सितम्बर, 2011 को नई दिल्ली में हुई, जिसमें प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा -

"परिषद् की बैठक ने राष्ट्रीय मुद्दों पर विचार करने का अवसर प्रदान किया है । सामानिकरण एकता, सामाजिक-आर्थिक व राजनैतिक न्याय व एकता में अनेकता हमारे संविधान के मुख्य आधार हैं । राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की प्रथम बैठक 1962 में दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुई । राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की अन्तिम बैठक अक्टूबर 2008 में हुई।

आतंकवाद एवं अलगाववाद भारत के सम्मुख दो मुख्य चुनौतियाँ हैं । कोई भी सभ्य समाज इस कृत्य को सहन नहीं कर सकता है । हमें हमारी सुरक्षा व शोध एजेन्सियों को ज्यादा प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता है ।

केन्द्र व राज्य सरकारों को इन समस्याओं से निपटने के लिए एकजुट होना होगा । अतीत में यह पाया गया है कि जब केन्द्र व राज्य सरकारों में हिंसात्मक गतिविधियाँ हुई है इसका खामियाजा पूरे भारत को उठाना पड़ा है ।

हमारे जनतन्त्र में वर्तमान वर्ष में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं ने पुरजोर गतिशील कार्य किया है । झारखण्ड व जम्मु-कश्मीर इसके उदाहरण कहे जा सकते है । यहाँ पर जनसमूह ने पंचायत चुनावों में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया है । राजनैतिक उन्नति के साथ ही साथ आर्थिक क्षेत्र के विकास में व्यक्ति विशेष के जीवन शैली के स्तर को उन्नत किया है ।

बेरोजगारी व लिंगानुपात के भेद जैसी समस्याओं को समाप्त करने के लिये शिक्षा व कौशल विकास अवसर मुख्य सहायता प्रदान करते हैं । हमें उच्च शिक्षा में भी बेहतर परिणाम प्राप्त हुये हैं । शिक्षा का उद्देश्य सभी बालकों में नैतिक, चारित्रिक सद्गुणों का विकास कर राष्ट्रीय एकता एवं भावात्मक एकता जैसे भावों ले उनमें विकसित करना होना चाहिये । विद्यालयी शिक्षा का पाठ्यक्रम भी राष्ट्रीय एकता, धार्मिक सहिष्णुता, भावात्मक एकता जैसे भावों व विचारों से ओत-प्रोत होना चाहिये जिससे विद्यार्थियों में देश के प्रति सभी धर्म सम्प्रदायों के प्रति आदर व सम्मान का भाव विकसित हो व धार्मिक सहिष्णुता के साथ-साथ भाईचारे की भावना का विकास हो । ऐसा प्रयास किया जानो चाहिये तभी हम वर्तमान समय में भारतीय जनतन्त्र के समक्ष उपस्थित चुनौतियों से स्वयं को व राष्ट्र को बचा पायेंगे ।"

राष्ट्रीय एकता के लिए सुझाव

राष्ट्रीय एकता समिति ने जहां एक ओर राष्ट्रीय एकता के लिये शैक्षिक कार्यक्रमों का सुझाव दिया वहीं दूसरी ओर शिक्षा के उद्देश्यों वे कार्यक्रमों को भी निर्धारित किया है ।

1. सभी विद्यार्थियों को देश के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान कराना ।
2. स्वतन्त्रता प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रमुख घटनाओं का ज्ञान ।
3. विभिन्न जातियों व सम्प्रदायों में राष्ट्रीय एकता को विकसित करने के लिये प्रयास करना ।

विभिन्न सुझाव निम्न प्रकार है -

1. स्कूल में पढाई जाने वाली पुस्तकों की जांच की जाये ।
2. पुस्तकों से अराष्ट्रीय भावना के तत्वों को निकाल देना चाहिये ।
3. सभी जातियों तथा धर्मों के लोग राष्ट्रीय तथा लोकप्रिय मेंलों व त्योहारों में भाग लें ।
4. साम्प्रदायिक एकता विकसित करने के लिये नाटकों, वाद-विवादों फिल्मों, समाचार पत्रों व रेडियो का प्रयोग किया जाये ।

राष्ट्रीय एकता के लिये विभिन्न स्तरों पर शिक्षा कार्यक्रम स्थापित किये गये :-

राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने के लिये विभिन्न कार्यक्रमों की अनुशंसा की गई है । जो निम्न प्रकार हैं:-

(1) प्राथमिक स्तर (Primary Stage)

प्राथमिक स्तर पर निम्न कार्यक्रम होने चाहिये:-

1. बालकों को राष्ट्रीय ध्वज, गान, चिन्ह, पक्षी व पुष्प का ज्ञान हो ।
2. स्वतन्त्रता दिवस व गणतन्त्र दिवस आदि राष्ट्रीय पर्व मनाये जायें ।

3. बाल-दिवस, शिक्षक दिवस तथा महापुरूषों के जन्म दिवस मनाये जायें ।
4. महान व्यक्तियों के जीवन से परिचित कराया जाये ।
5. सामाजिक जीवन का सरल परिचय दिया जाये ।
6. प्रत्येक क्षेत्र के मानव भूगोल का ज्ञान कराया जाये ।

(2) माध्यमिक स्तर (Secondary Stage)

माध्यमिक स्तर पर निम्न कार्यक्रम होने चाहिये :-

1. बालकों को भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास का ज्ञान कराया जाये ।
2. बालकों को भारत के आर्थिक विकास का ज्ञान कराया जाये ।
3. बालकों में राष्ट्रीय चेतना विकसित की जाये ।
4. राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में महापुरूषों के व्याख्यान कराये जायें ।
5. राष्ट्र भाषा का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाये ।

(3) विश्वविद्यालय स्तर (University Stage)

विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के निम्न कार्यक्रम होने चाहिये:-

1. विद्यार्थियों को ऐसे अवसर प्रदान किये जायें कि वे विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं, व संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन कर सके ।
2. युवा उत्सवों का आयोजन किया जाये तथा इनमें विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को भाग लेने हेतु प्रोत्साहित किया जाये ।
3. अध्ययन व विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाये ।

शिक्षा में संकुचित राष्ट्रीयता की भावना को त्यागकर राष्ट्रीयता के व्यापक दृष्टिकोण को अपनाना चाहिये । राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों को अपनी सामाजिक एवं सांस्कृति संस्तुति की प्रशंसा करना तथा उसकी कमियों को दूर करने के लिये तैयार रहना चाहिये । राष्ट्रीयता के व्यापक सिद्धान्त को अपनाकर नागरिकों में विश्वबंधुत्व व विश्व नागरिकता की भावना को प्रोत्साहित करना चाहिये ।

5.4 भावात्मक एकता:- अर्थ एवं आवश्यकता

भावात्मक एकता का अर्थ

भावात्मक एकता का अर्थ उस भावना के विकास से है जो राष्ट्र की विभिन्न जातियों, धर्मों तथा समूहों के लोगों के आपसी भेदभावों को मिटाकर सबको संवेगात्मक रूप से समन्वित करते हुये एकता के सूत्र में बांधती है । ऐसी भावात्मक चेतना के विकसित हो जाने से राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने पारस्परिक भेदभावों को भूलकर अपने निजी हितों की अपेक्षा राष्ट्र की आवश्यकताओं, आदर्शों एवं आकांक्षाओं को सर्वोपरि समझने लगता है।

भावात्मक एकता की आवश्यकता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत जातीयता, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता आदि अनेक विघटन भरी प्रवृतियों में लिप्त था । दक्षिण भारत में एक ऐसा वर्ग है जो उत्तरी भारत से पृथक होना चाहता है । हिन्दुओं और सिखों में भी मतभेद है । सभी अलग-अलग राज्यों की मांग करते हैं । यही नहीं सरकारी नौकरियों पर भी जातीयता प्रान्तीयता तथा साम्प्रदायिकता की

भावनाओं के आधार पर ही अपने-अपने लोगों की नियुक्तियां की जा रही हैं । अत: भारतीय जनतन्त्र इससे खतरे में पड़ गया है । ऐसी परिस्थिति में इस बात की आवश्यकता है कि देश के सभी निवासियों को इस प्रकार की राष्ट्र विरोधी प्रवृत्तियों से बचाकर उनमें ऐसी अभिवृत्तियों का विकस किया जाये जिससे वे पुन: एकता के सूत्र में बंध जायें । इस महान कार्य को पूरा करने के लिये प्रत्येक नागरिक के सम्बन्धों का विकास करना चाहिये ।

शिक्षा तथा भावात्मक एकता

राष्ट्र में परिवर्तन का माध्यम शिक्षा ही है । यदि भारत में भावात्मक एकता का विकास करना है तो हमें अपनी शिक्षा की व्यवस्था इसी उद्देश्य को सामने रखते हुये करनी चाहिये । दूसरे राज्यों में हमारी शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह भारतवासियों में ऐसी भावात्मक एकता का संचार करें जिससे वे अपनी जाति, वर्ग, धर्म तथा क्षेत्र के संकीर्ण आधारों पर उत्पन्न होने वाले भेदभावों को भुलाकर सम्पूर्ण भारत को अपना देश समझने लगे और समस्त भारतीयों को अपना भाई । ऐसी शिक्षा से राष्ट्रीय एकता की भावना अवश्य विकसित होगी जिसके परिणामस्वरूप संकीर्णता एवं भ्रष्टाचार का अन्त हो जायेगा और राष्ट्र दिन-प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहेगा । भारत में भावात्मक एकता स्थापित करने के लिये भावात्मक एकता समिति की स्थापना की गई ।

भावात्मक एकता समिति

भारत के केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने सन् 1961 में एक भावात्मक समिति स्थापित की जिसका उद्देश्य ऐसे सुझावों को देना था जिनसे सभी विघटनकारी प्रवृत्तियों का अन्त हो जाये । इस समिति के अध्यक्ष स्वर्गीय डी. सम्पूर्णानन्द ने देश की सभी विघटनकारी प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुये कहा है - देश में एकता है और यह एकीकृत रहेगा भी, चाहे इसके निवासियों में कितनी ही विभिन्नतायें क्यों न पाई जाये ।

भावात्मक एकता समिति के सुझाव

भावात्मक एकता समिति ने नागरिकों में भावात्मक एकता को विकसित करने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये:-

1) पाठ्यसहगामी क्रियाऐं (Co-curricular Activities): विभिन्न स्तरों पर उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त ऐसी सहगामी तथा सांस्कृतिक क्रियाओं को भी प्रोत्साहित किया जाये ।

2) पाठ्यक्रम की पुनर्रचना (Reconstruction of Curriculum): पाठ्यक्रम की पुनर्रचना की जाये । इस सम्बन्ध में राष्ट्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये:-
   (1) प्राथमिक स्तर पर राष्ट्रीय गीत तथा राष्ट्रीय गानों को प्रोत्साहन ।
   (2) माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन, भाषा तथा साहित्य, नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा को प्रोत्साहन ।
   (3) विश्वविद्यालय स्तर पर विभिन्न भाषाओं, साहित्यों, संस्कृतियों तथा कलाओं के अध्ययन पर बल ।

3) पाठ्यपुस्तक (Text Book)

वर्तमान पाठ्यपुस्तकों में संशोधन एवं सुधार किया जाये । उनमें से अराष्ट्रीय बातों को निकालकर केवल उन्ही तत्वों को सम्मिलित किया जाये जो भावात्मक एकता के विकास में सहायता प्रदान करे ।

4) भाषा (Language)

1. सम्पूर्ण राष्ट्र में अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं का प्रयोग किया जाये ।
2. जिन क्षेत्रों में हिन्दी नहीं बोली जाती है उनमें हिन्दी क्षेत्रीय लिपि के द्वारा सीखने की छूट दी जाये ।
3. क्षेत्रीय भाषा तथा हिन्दी शब्दकोष तैयार किये जायें तथा हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें क्षेत्रीय लिपि में लिखी जायें ।

भावात्मक एकता को विकसित करने के लिये शिक्षक का मुख्य स्थान है । इस दृष्टि से हमें ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता है जिनमें स्वयं की यह भावना हो चुकी हो ।

अन्तर सांस्कृतिक भावना का अर्थ ऐसे दृष्टिकोण के विकसित हो जाने से है जिसके अनुसार व्यक्ति अपनी निजी संस्कृति के संकीर्ण दृष्टिकोण से ऊपर उठकर अपने देश तथा विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के उन समान तत्वों की खोज कर डालता है जिनके द्वारा किसी देश की विभिन्न संस्कृतियों को एक राष्ट्रीय संस्कृति में भेजा जा सकता है । अन्तर सांस्कृतिक भावना विकसित हो जाने से व्यक्ति हर प्रकार के सांस्कृति भेदभावों तथा लडाई झगडों से ऊपर उठ जाता है जिससे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एकता बनी रहती है । भारतीय जनतन्त्र को सफल बनाने के लिये इस मनमुटाव का अन्त करना परम आवश्यक है जो केवल अन्तर-सांस्कृतिक भावना के विकास के द्वारा ही सम्भव है ।

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का अर्थ है विश्व नागरिकता । यह भावना इरा बात पर बल देती है कि संसार के प्रत्येक मानव में भाईचारे के सम्बन्ध हों तथा वसुधा एक कुटुम्ब के समान प्रतीत हो । इस दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना विश्व मैत्री तथा विश्व बन्धुत्व की भावना पर आधारित होते हुये मानव के कल्याण पर बल देती है ।

5.4 राष्ट्रीय एकीकरण के आधार

किसी भी राष्ट्र की एकता किसी एक तत्व से नहीं बन सकती । उसकी एकता के लिए अनेक तत्व उत्तरदायी होते है । बेरनर और लेन डेकर के एक लेख के अनुसार एकीकरण के चार प्रकार बताये गए हैं -

(i) सांस्कृतिक एकीकरण, (ii) आदर्शात्मक एकीकरण (iii) संरचनात्मक एकीकरण तथा (iv) प्रकार्यात्मक एकीकरण । जक्स. एक्स कोलमैन एवं कार्ल.जी. रोजबर्ग ने राष्ट्रीय एकीकरण के दो प्रकार बताये हैं: -

(i) राजनैतिक एकीकरण (ii) भू क्षेत्रीय एकीकरण इन दोनों वर्गीकरणों का आधार राजनैतिक सत्ता और प्रशासन और भौगोलिक इकाइयाँ है । राष्ट्रीय एकीकरण के आधार निम्नलिखित हैं -

1. **भौगोलिक एकता:-** कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और असम से लेकर गुजरात तक भारत एकराष्ट्र के रूप में फैला हुआ है । उत्तर में बद्रीनाथ, दक्षिण में रामेंश्वरम, पूर्व

में पुरी और पश्चिम में द्वारिका भारत के धार्मिक तीर्थ स्थान है । इन्हें समस्त भारतीय श्रद्धा से देखते हैं और ये सम्पूर्ण भारतीयों को एकता के सूत्र में बांधते हैं ।

2. **ऐतिहासिक एकता:-** इतिहास साक्षी है कि भारत की एकता अति प्राचीन है । अतिप्राचीन काल में भारत दविण निवास करते थे, बाद में आर्य यहाँ आए । कालान्तर में यही आर्य संस्कृति सम्पूर्ण भारत में फैल गई । भारत में अनेक धर्म, मत, सम्प्रदाय, जातियाँ व प्रजातियाँ आदि विद्यमान है, किन्तु इसके उपरान्त भी देश में एकता व अखण्डता की भावना विद्यमान है ।

3. **सामाजिक व सांस्कृतिक एकता:-** भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक मान्यताएं, आध्यात्मवाह आदि प्रत्येक क्षेत्र में भारत सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से है । सदियों से जो प्रथाएँ, रूढ़ियां व परम्पराएं आदि प्रचलित है । वे भारतीय संस्कृति की एकता की पहचान है । हमारी प्रजातांत्रिक नीति सभी में सहयोग, समन्वय व सौहार्द्ध की भावना को विकसित करती है । भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति व्यवस्था आश्रम व्यवस्था पुनर्जन्म, आध्यात्मवाद, कर्म, पुरुषार्थ एवं वर्ण व्यवस्था आदि काल से ही मान्य रही है जिसके कारण सहिष्णुता की भावना पाई जाती है ।

4. **धार्मिक एकता:-** भारतवर्ष में अनेक धर्मावलम्बी निवास करते हैं । जैन, बौद्ध, सिक्ख व हिन्दू आदि धर्मों की उत्पत्ति भारत में ही हुई है यद्यपि सभी धर्म अलग-अलग हैं, किन्तु सभी धर्मों में आध्यात्मवाद, नैतिकता, दया, सत्य, अंहिसा व ईमानदारी आदि के सिद्धान्त समान है । भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अपना संविधान बनाया उसमें राष्ट्र को धर्म निरपेक्ष घोषित किया है।

5. **राजनैतिक एकता:-** राष्ट्रीय एकीकरण तथा राजनैतिक एकता परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत जनता द्वारा ही सरकार का चुनाव किया जाता है तथा राष्ट्रीय एकीकरण को बनाए रखने का विशेष ध्यान रखा जाता है ।

6. **सामान्य एकता:-** कुछ विद्वानों का कहना है कि जनता का सामान्य आधिपत्व और सामान्य कष्ट भी राजनैतिक एकता का निर्माण करते है । सन् 1962 में चीन ने तथा सन् 1948, 1965, 1972-73 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया जो उस समय युद्ध के दौरान सम्पूर्ण भारत देश में एकता की लहर दौड़ गई थी ।

7. **जातीय एकता:-** हिन्दुओं में जाति व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज का स्तरीकरण विभिन्न खण्डों में विभाजित है जो जाति कहलाती है । इन जातियों की अपनी विशेषताएं, व्यवसाय आदि है, परन्तु जजमानी व्यवस्था के द्वारा सभी जातियाँ परस्पर एक-दूसरे से पीढ़ी दर पीढ़ी बंधी थी। सारा देश जाति व्यवस्था के द्वारा परस्पर सम्बन्धित निर्भर तथा संगठित था ।

8. **आर्थिक एकता:-** आज सारा देश पंचवर्षीय योजनाओं, विकास कार्यक्रमों तथा अनेक अन्य योजनाओं के द्वारा एकता में बंधा है । यही वृहद स्तर पर राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में आधार का कार्य करता है ।

9. **मानसिक एकता:-** जब किसी देश में नागरिक विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओ, धर्मों, प्रजातियों के होते हुए भी उस देश को अपना समझते हैं, अपनेको देश का अंग समझते हैं तो यही मानसिक एकता कहलाती है । भारत के नागरिक विभिन्न प्रान्तों, संस्कृतियों, जातियों प्रजातियों, भाषाई, समूहो, धर्मों के होते हुए भी अपने को भारत का नागरिक समझते हैं तथा भारत को अपना देश और राष्ट्र समझते हैं तो यह मानसिक विचार, भावना आदि राष्ट्रीय एकता में सहायक रहती है ।

5.5 राष्ट्रीय एकीकरण के विकास में शिक्षा की भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को विकसित करने के लिये जहां एक ओर अन्तर्राष्ट्रीय संघ अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर इससे भी आवश्यक यह है कि प्रत्येक राष्ट्र के नागरिक अन्य राष्ट्रों के नागरिकों की कठिनाइयों का अनुभव करें तथा उनकी प्रशंसनीय भावों का आदर करें ।

राष्ट्रीय एकीकरण को विकसित करने के सिद्धान्त

1. निर्भरता का सिद्धान्त
2. राष्ट्र प्रेम का उचित अर्थ
3. कार्यरूप में परिणित करने के सिद्धान्त
4. सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त
5. वैयक्तिक तथा सामाजिक चेतना पाठ्यक्रम

राष्ट्रीय एकीकरण के विकास हेतु प्रचलित पाठ्यक्रम में निम्नलिखित परिवर्तन करने चाहिये:-

1. पाठ्यक्रम में संसार के सभी राष्ट्रों में रहने वाले लोगों के धर्मों, आदर्शों, आचार-विचारों, रीतिरिवाजों, उद्योग धन्धों आदि तथ्यों को सम्मिलित किया जाना चाहिये ।
2. पाठ्यक्रम में उन सभी कार्यों एवं प्रयासों को सम्मिलित किया जाना चाहिये जो बालक में राष्ट्रीयता की भावना का विकास कर सके । जैसे: छोटे स्तर की कक्षाओं में मूल्य परक व नैतिक शिक्षा विषय को स्थान देना ।
3. पाठ्यक्रम में संसार के विभिन्न राष्ट्रों के साहित्य, संगीत तथा कलाकृतियों एवं चित्रकला आदि को उपयुक्त स्थान मिलना चाहिये ।

5.5 राष्ट्रीय एकीकरण: शिक्षण विधियाँ

पाठ्यक्रम को सरल बनाने में शिक्षक का गहरा हाथ होता है । वह प्रत्येक विषय में आवश्यक तथ्यों की खोज करके उन्हे बालकों के सम्मुख इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि सभी बालक प्रत्येक सत्य को पूरी तरह से समझ सकें । इस दृष्टि से बालकों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को विकसित करने के लिये शिक्षक को प्रत्येक विषय पढाते समय प्रचलित शिक्षण पद्धतियों में परिवर्तन करके एक विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाना चाहिये ।

शिक्षक

विद्यार्थियों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को विकसित करने के लिये शिक्षक महत्वपूर्ण स्थान रखता है । ध्यान देने की बात है कि पाठ्यक्रम का सफल तथा असफल होना शिक्षक के व्यक्तित्व, आदर्श, विश्वास, श्रद्धा, कार्यनिष्ठा दृढ़ता, पटुता तथा निजी उत्साह एवं विशाल

दृष्टिकोण पर निर्भर करता है । अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना से ओत प्रोत, शिक्षक केवल पाठ-विषयों के प्रस्तुत करने तक ही सीमित नहीं रह सकता अपितु वह अपने विभिन्न कार्यों जैसे अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना, त्यौहारों, जयन्तियों, मेंलों, सप्ताहों आदि क्रियाओं के द्वारा भी अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता रहेगा ।

विद्यालय

स्कूल की व्यवस्था सहयोग के आधार पर होनी चाहिये तथा बालकों को व्यक्तिगत कार्य के स्थान पर सामूहिक कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये । बालकों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना विकसित करने के लिये स्कूल की पाठ्यपुस्तकें इस प्रकार की होनी चाहिये जिनके पढ़ने से उनको अन्य राष्ट्र के निवासियों के रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा तथा जीवन सम्बन्धी अन्य सभी बातों का ज्ञान हो जाये ।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि शिक्षा में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण को बनाये रखने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के साथ-साथ मूल्यों व आदर्शो की भी नितान्त आवश्यकता है ।

5.6 राष्ट्रीय एकीकरण:- शिक्षण विधियां

राष्ट्रीय एकीकरण व भावनात्मक एकता विकसित करने के लिये प्रयुक्त शिक्षण विधियाँ -

1. समस्या समाधान विधि:- समस्या विधि से आशय तर्क द्वारा किसी समस्या का मानसिक स्तर पर हल ज्ञात करने की प्रक्रिया है । समस्या समाधान विधि के द्वारा देश के समक्ष आ रही चुनौतियों व कठिनाईयों के प्रति बालकों को सजग कर उनमें राष्ट्रीय एकता व भावात्मक एकता के भाव विकसित करना । जैसे:- नुक्कड़ नाटक, लघु फिल्म
2. वाद-विवाद विधि: वाद-विवाद विधि से आशय विद्यार्थियों को तर्क करने की औपचारिक कुशलता अजिर्त कराने से है जिसमें वे अपने मानसिक स्तर के अनुरूप किसी भी विषय पर चर्चा और परिचर्चा के माध्यम से अपने विचारों को प्रस्तुत कर सकते हैं ।
3. पात्र अभिनय विधि: शिक्षण की इस पद्धति को आधुनिक पद्धति की श्रेणी में रखा जाता है । इस पद्धति के प्रयोग से विद्यार्थियों की सृजनात्मक शक्तियों को विकसित किया जाता है इसमें राष्ट्रीय एकता व भावात्मक एकता से सम्बन्धित पात्रों की जीवनी व घटनाओं को अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है जिससे उन पात्रों के भावों व विचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव छात्रों पर दिखाई देता है ।
4. प्रश्नोत्तर विधि: यह विधि मानसिक सन्तुष्टि हेतु चर्चा परिचर्चा पर आधारित प्रश्नोत्तर विधि होती है । इस मुख्य भाव विद्यार्थियों में किसी भी विषय के प्रति रूचि एवं जिज्ञासा विकसित करना होता है ।
5. प्रदर्शन विधि: प्रदर्शन विधि से आशय मौखिक व प्रायोगिक दोनों प्रकार से वस्तु व सूचनाओं का आदान-प्रदान किये जाने से है । यह शिक्षण की सबसे अधिक प्रभावी विधि है । इसके माध्यम से राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता से जुड़े पहलुओं पर डॉक्यूमेंन्टरी फिल्म आदि का निर्माण कर इनका प्रदर्शन किये जाने से है ।

6. कहानी कथन विधि: ये शिक्षण की अध्यापक केन्द्रित विधियों में से एक महत्वपूर्ण विधि हैं । छोटी कक्षाओं में पात्र अभिनय विधि से पूर्व की अवस्था कहानी कथन कही जा सकती है । इस विधि के द्वारा शिक्षक व शिक्षार्थियों के बीच भावात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाना सरल होता है ।
7. क्षेत्र भ्रमण विधि : शिक्षण की इस विधि में चिन्तन स्तर को विकसित कर किसी क्षेत्र विशेष का भ्रमण जो कि समस्या से जुडा हुआ है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन कराने से हैं । अत: यह विधि प्रत्यक्षीकरण पर बल देती है । नवाचारी शिक्षण पद्धतियों में इस विधि को सबसे अधिक प्रभावी माना जाता है ।
8. मस्तिष्क विप्लवन: इस विधि के अन्तर्गत समस्याओं के प्रति स्वतन्त्र चिन्तन करने व मौलिक विचार प्रस्तुत करने की क्षमता का विकास किया जाता है जिसमें राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं पर विद्यार्थियों को मानस मंथन करके सभी समस्याओं पर अपने मौलिक विचारों को प्रस्तुत करना होता है । यह भी प्रभावी शिक्षण विधियों की श्रेणी में रखी जाती है ।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता विकसित करने के लिये शिक्षक द्वारा इन सभी विधियों का उपयोग समय-समय पर बालकों की मानसिक स्थिति, पाठ्यक्रम की मांग, बालकों की रूचि, अभिवृत्ति व सम-सामयिक समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुये किया जाता है ।

5.7 मूल्यांकन प्रश्न

1. राष्ट्रीयता किसे कहते हैं?
2. राष्ट्रीयता व शिक्षा के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिये?
3. राष्ट्रीय एकता के मार्ग में क्या-क्या बाधाऐं हैं?
4. राष्ट्रीय एकता कार्यक्रमों की चर्चा कीजिये?
5. भावात्मक एकता की प्राप्ति में शिक्षा किस प्रकार सहायता कर सकती है?
6. अन्तर सांस्कृतिक एकता का क्या अर्थ है?
7. राष्ट्रीय एकीकरण को स्थापित करने में शिक्षा की क्या भूमिका है?

5.8 संदर्भ ग्रंथ

1. अग्निहोत्री, डॉ. रविन्द्र - भारतीय शिक्षा: दशा और दिशा, केदारनाथ रामनाथ एण्ड कम्पनी, 1973 मेरठ
2. अग्रवाल, जे.सी. - स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विकास, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली 1968
3. ओड, डॉ. एल.के. (सं.) - शिल्प के नूतन आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 1977
4. अग्निहोत्री, डॉ. रविन्द्र - भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याऐं, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 1974

5. गुप्ता, एस.पी. - भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याऐं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003
6. पारीक मथुरेश्वर एवं शर्मा रजनी - उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा, शिक्षा प्रकाशन, जयपुर 2004
7. सिंह जे.पी. - समाजशास्त्र अवधारणाऐं एवं सिद्धान्त प्रिन्टर्स हाउस इण्डिया, नई दिल्ली,1999
8. Verma M. - The philosophy of Indian education, Meenakshi Prakashan,Meerut, 1969
9. Brameld, Theodore - Philosophies of education in cultural perspective, The Dryden Press, Inc, New York, 1955
10. उपाध्याय, प्रतिभा - भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2003
11. रूहेला, सत्यपाल - शिक्षा का समाजशास्त्र मूल्य संप्रत्यय और सिद्धान्त, उत्तर प्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ 1972
12. चौबे अखिलेश एवं चौबे सरयू प्रसाद - शिक्षा के दार्शनिक, एतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ 2002
13. पाण्डेय, रामशुक्ल - शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1999

इकाई - 6

भारतीय राजनीति और शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एवं शिक्षा

6.3 भारतीय शिक्षा आयोग

6.4 राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ

6.5 शिक्षा पर राजनीतिक प्रभाव

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 मूल्यांकन प्रश्न

6.9 सन्दर्भ ग्रंथ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद मुख्यत: -

- आप भारतीय राजनीति के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- आप भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या कर सकेंगे ।
- आप भारत में गठित विभिन्न शिक्षा आयोगों का वर्णन कर सकेंगें ।
- आप उच्च शिक्षा आयोग के बारे में बता सकेंगे ।
- आप माध्यमिक शिक्षा आयोग का मूल्यांकन कर सकेंगें ।
- आप शिक्षा आयोग 1964-1966 की संस्तुतियों की व्याख्या कर सकेंगें ।
- आप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1969,1979 तथा 1896 की व्याख्या कर सकेंगें ।
- आप शिक्षा पर राजनीतिक प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगें ।
- आप विभिन्न शिक्षा नीतियों की तुलना कर सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

राजनीतिक व्यवस्था और शिक्षा का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है । शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार सदैव समाज के बौद्धिक संसाधनों पर आधारित रहते हैं । जीवन जीने के प्रकारों का शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । राज्य की स्थापना के पश्चात् जनता की शिक्षा के प्रति रूचि में भी वृद्धि हुई है । शिक्षा एक साधन है जो राजनैतिक व्यवस्था को बनाये रखने तथा आगे बढ़ाने में सहायक है । किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिये लिए वहाँ के नागरिकों को अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों का ज्ञान होना चाहिए, इनको सिखाने के लिए शिक्षा ही उत्तम साधन है । एडवर्ड जे .पावर (Edward J. Power) ने अपनी पुस्तक "इवेल्यूएशन ऑफ एजूकेशनल डॉक्ट्राइन" (Evaluation of

Educational Doctrine) में राजनीति और शिक्षा पर अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है-

"शिक्षा का कार्य राज्य की परम्पराओं को निरन्तरता देना है, विस्तृत अर्थों में राज्य स्वयं ही शिक्षा का साधन है ।"

भारतवर्ष लोकतान्त्रिक गणराज्य (Democratic Republic) है अर्थात् शिक्षा सम्बंधी नीतियों को निर्धारित करते समय व्यक्ति एवं समाज के कल्याण का विशेष ध्यान रखा जाता है। भारत में शिक्षा का दायित्व केन्द्र और राज्य दोनों के प्रशासन पर है । दोनों प्रशासनों की नीतियों में तारतम्य नहीं होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति का अभाव है । इसका हल तभी सम्भव है जब सरकार सम्पूर्ण राष्ट्र में एक समान स्पष्ट नीतियों का निर्धारण करे तथा उनके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करवाने के प्रयास किये जायें । शैक्षिक नियोजन देश की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति पर आधारित होता है और उसकी सफलता भी इस पर निर्भर करती है । शिक्षा को सामाजिक संवृद्धि का साधन मानकर ही शिक्षा सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण किया जाना चाहिये ।

6.2 भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और शिक्षा

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था प्रजातान्त्रिक व्यवस्था है जो उदारवाद एवं मानवतावादी विचारों से प्रभावित है । राजनीतिक व्यवस्था शिक्षा को दिशा प्रदान करने एवं शिक्षण प्रक्रिया के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है । प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में शिक्षित समाज, सामाजिक चेतन मस्तिष्क का निर्माण आदि को शिक्षा के उद्देश्यों से सम्बन्धित माना जाता है । सत्य का अन्वेषण एवं सत्य की अभिव्यक्ति निर्भीक रूप से करने का अधिकार भी प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में व्यक्ति को दिया जाता है । जॉन डीवी ने प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था जीने को जीवन का एक ढंग माना है तथा इसका अन्तिम लक्ष्य सामान्य जनता के हितों की प्राप्ति माना है । वेलेस ने अपनी पुस्तक "डेमोक्रेटिक एजूकेशन थ्योरी" (Democratic Education Theory) में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए कहा है-

"यह एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में समान अधिकार प्रदान किया जाता है और साथ ही यह अपेक्षा की जाती है कि सभी व्यक्ति इस प्रकार लिए गये निर्णय को मानने के लिए समर्पित होंगे ।"

प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा का यह दायित्व हो जाता है कि व्यक्तियों में उन मूल्यों के प्रति आस्था जागृत करे जो सार्वजनिक हितों और लक्ष्यों के प्रति न केवल सजग ही करे बल्कि समर्पित भी करे ताकि वे अपने अनुभवों को संगठित करके सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर सामूहिक प्रयास कर सकें । भारतीय शिक्षा आयोग 1964-1966 ने भी शिक्षा का उद्देश्य प्रजातन्त्र को मजबूत बनाना माना है ।

6.2.1 प्रजातान्त्रिक शिक्षा की योजना

जनता के मन में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के प्रति विश्वास उत्पन्न करना परम आवश्यक है । समस्त योजनाओं का निर्माण जनता की सम्मति से ही होता है । विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, चिन्तन की स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर जनता अपने स्पष्ट विचारों को योजना निर्माताओं के सामने रखती है । शिक्षा के प्रति तथा शिक्षा के उद्देश्यों के प्रति जनता का

विश्वास योजना निर्माण के लिए आवश्यक है । प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

(1) आत्म-विकास का उद्देश्य

(2) मानव सम्बन्धों की स्थापना का उद्देश्य

(3) आर्थिक पूर्णता का उद्देश्य

(4) नागरिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने का उद्देश्य

(1) **आत्म-विकास का उद्देश्य:** आत्म-विकास के उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित शक्तियों का विकास आवश्यक है-

- मस्तिष्क को शिक्षा के प्रति जिज्ञासु बनाया जाये अर्थात् प्रत्येक नागरिक शिक्षा प्राप्ति के लिए तैयार हो ।
- वाचन क्षमताओं का विकास करके नागरिकों को वैचारिक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किये जायें ।
- पढ़ने एवं लिखने की क्षमता उत्पन्न की जाये ताकि सभी नागरिक मातृभाषा को लिख-पढ़ सके।
- सामान्य अंकगणित का ज्ञान दिया जाये जिससे गणना करने, जोड़ने तथा घटाने का कार्य सरलता से कर सकें ।
- दृष्टि तथा श्रवण शक्तियों का विकास ।
- स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यक नियमों का ज्ञान प्रदान करना ।

(2) **मानव संसाधनों की स्थापना का उद्देश्य:** मानवीय सम्बन्धों की स्थापना करके उन्हें सौहार्द्रपूर्वक वातावरण बनाये रखने की क्षमता के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना होगा-

- मानवता के प्रति आदर की भावना का विकास करना ।
- सामूहिक रूप से कार्य करने की क्षमता उत्पन्न करना ।
- विनम्रतापूर्वक व्यवहार करना ।
- परिवार के सामाजिक महत्व को समझना ।
- परिवार में प्रजातान्त्रिक सम्बन्धों की स्थापना ।

(3) **आर्थिक पूर्णता का उद्देश्य:** नागरिकों को आर्थिक स्वावलम्बन के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना होगा-

- स्वयं की कार्यों में दक्षता प्राप्त करना ।
- विभिन्न आर्थिक क्रियाओं की जानकारी रखना ।
- आर्थिक व्यवस्था का सफलतापूर्वक संचालन करना ।
- व्यय का मानदण्ड निर्धारित करना ।
- क्रय-विक्रय की क्षमता प्राप्त करना ।

(4) **नागरिक उत्तरदायित्वों को निर्वाह करने का उद्देश्य:** प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में उत्तम नागरिकता वाले नागरिकों की आवश्यकता होती है । नागरिक उत्तरदायित्व की भावना को जाग्रत करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है-

- विविध परिस्थितियों में सामाजिक न्याय में विश्वास उत्पन्न करना ।
- असन्तोषजनक परिस्थितियों में सुधार करना ।
- सहिष्णुता एवं उदारता की भावना विकसित करना ।
- राष्ट्र की सम्पत्ति एवं साधनों की सुरक्षा करना ।
- विज्ञान को सामाजिक हितों के लिए प्रयोग करना ।
- प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के प्रति आस्था और विश्वास उत्पन्न करना ।
- नागरिकों के कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करना तथा उनका निर्वाह करना ।

6.2.2 प्रजातान्त्रिक शिक्षा का पाठ्यक्रम

प्रजातन्त्रिक व्यवस्था में शिक्षा का पाठ्यक्रम भी उपरोक्त वर्णित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर निर्मित किया जाता है । तथा इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि पाठ्यक्रम उपयोगी, लचीला तथा रोचक हो तथा पाठ्यक्रम की सम्पूर्णता का विशेष ध्यान रखा जाता है । पाठ्यक्रम की सम्पूर्णता का अर्थ है कि पाठ्यक्रम इस प्रकार का हो कि छात्रों सर्वांगीण का विकास, (All round development) कर सके । इसके लिए विभिन्न प्रकार की पाठ्य-सहगामी क्रियाओं (Co-curricular activities) का अध्यापन, खेल-कूद आदि का प्रावधान रखा जाता है । पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय व्यक्तिगत विभिन्नताओं (Individual difference) का भी ध्यान रखा जाता है कि सभी छात्र अपनी-अपनी शक्तियों एवं आवश्यकता के अनुसार सीख सकें।

"क्रिया द्वारा सीखना" (Learning by doing) सिद्धान्त का पालन करने के लिए छात्रों को क्रिया करके सीखने के उचित अवसर प्रदान किये जाते हैं । छात्रों में सामाजिक राष्ट्रीय भावना विकसित करने के लिए सामाजिक पर्वों तथा राष्ट्रीय पर्वों को मनाने के अवसर दिये जाते हैं ।

6.2.3 प्रजातान्त्रिक शिक्षा एवं शिक्षक

प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक का व्यक्तित्व अतिमहत्वपूर्ण होता है । परिश्रमी एवं चतुर शिक्षक, शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण महत्व होता है । परिश्रमी एवं चतुर शिक्षक शिक्षा व्यवस्था का संचालन अधिक सफलतापूर्वक कर सकते है । शिक्षक का व्यक्तित्व ही विद्यार्थियों पर गहरी छाप छोड़ता है, उसके सम्पर्क में आने वाले छात्रों में उत्तम नागरिकता के गुणों का विकास होता है । प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में छात्र का व्यवहार नियन्त्रित करने में वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण को अधिक महत्व दिया जाता है । शिक्षक का यह कर्त्तव्य माना जाता है कि वह इस प्रकार का वातावरण बनाये रखे कि विद्यार्थी स्वत: ही क्रियाएँ करके सीख सके । शिक्षा छात्रों में किसी भी प्रकार का वर्ग भेद, जाति भेद, रंग भेद, लिंग भेद आदि नहीं रखें तथा सभी विद्यार्थियों को समान अवसर पर तथा सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जायें ।

6.2.4 प्रजातान्त्रिक शिक्षण विधियाँ

ऐसी शिक्षण विधियाँ जिनमें विद्यार्थियों का प्रश्न-पूछने, तर्क करने, वाद-विवाद करने, स्वतन्त्रतापूर्वक विचार व्यक्त करने तथा समालोचना करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं, प्रजातांत्रिक शिक्षण विधियाँ कहलाती हैं । प्रजातांत्रिक शिक्षा व्यवस्था में प्रजातान्त्रिक शिक्षण विधियों का अनुसरण किया जाता है । इससे छात्र कक्षा में निष्क्रिय श्रोता नहीं होता है वरन्

शिक्षक का सहायक होता है । शिक्षक विद्यार्थी को उचित निर्देशन द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का अवरपर प्रदान करता है । योजना विधि खोज-विधि (Discovery method) प्रश्नोत्तर विधि (Question answer method) वाद-विवाद विधि (Discussion method) आदि प्रमुख प्रजातान्त्रिक शिक्षण विधियाँ हैं ।

6.2.5 प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था एवं अनुशासन

प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था में छात्रों को किसी कार्य के लिए बाध्य नहीं किया जाता है। विद्यालय को 'एक लघु समाज के रूप स्वीकार करके शिक्षक एवं छात्र मिलकर सहयोग से कार्य करते हैं । इससे सामाजिक अनुशासन को अधिक महत्व दिया जाता है । विद्यालय की समस्त क्रियाएँ, संघ, परिषदें, कक्षाएँ आदि प्रजातान्त्रिक ढंग से ही कार्य करती है । विद्यार्थी अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करने में दूसरे विद्यार्थियों को तंग नहीं करते हैं । वे अपनी त्रुटियों को स्वयं दूर करके अनुशासित रहने का प्रयत्न करते है । इस व्यवस्था में छात्रों में आत्मानुशासन का विकास होता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
2. प्रजातान्त्रिक शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं?
3. प्रजातान्त्रिक शिक्षा में अनुशासन कैसा होता है?

6.3 भारतीय शिक्षा आयोग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की आवश्यकतानुसार शिक्षा सम्बन्धी नीतियाँ बनाई गई, विभिन्न आयोगों एवं समितियों का गठन किया गया । भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर शिक्षा के विस्तार एवं विकास के लिए समय-समय पर आयोगों एवं समितियों का गठन किया गया तथा शिक्षा सम्बन्धी नीतियाँ बनाई गई । समस्त शिक्षा शास्त्रियों, राजनेताओं आदि ने अंग्रेजों द्वारा लागू की गई शैक्षिक प्रणाली की आलोचना की तथा भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन पर बल दिया ताकि शिक्षा व्यवस्था तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार हो सके । शिक्षा के विभिन्न स्तरों (प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा स्तर) पर व्याप्त समस्याओं का समाधान एवं देश के लिए उपयोगी शिक्षा प्रणाली का विकास करने के लिए आयोगों एवं समितियों ने अपने सुझाव सरकार को दिये । स्वतन्त्रता के पश्चात् से पहले विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया ।

6.3.1 विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948-1949

भारत में उच्च शिक्षा का विकास अंग्रेजों के समय से तेजी से हुआ किन्तु गुणात्मक विकास नहीं हुआ । इसके फलस्वरूप उच्च शिक्षा का स्तर गिरने लगा । इस बात पर विचार किया जाने लगा कि उच्च शिक्षा राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिये और इसका पुर्नगठन किया जाना चाहिये । अन्तर्विश्वविद्यालय परिषद् (Inter University Board) तथा केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् (Central Advisory Board of Education) दोनों ने उच्च शिक्षा की स्थिति पर विचार करके यह प्रस्ताव पारित किया कि भारत सरकार विश्वविद्यालयी शिक्षा में सुधार लाने के लिए एक आयोग का गठन करे जो देश की वर्तमान तथा भविष्य की

आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा में सुधार के संबंध में अपने सुझाव दे सकें । इसी कारण 4 नवम्बर 1948 को डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया । इसमें निम्नलिखित सदस्य थे-

अध्यक्ष : डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन

सचिव : श्री निर्मल कुमार सिद्धान्त

सदस्य : 1. डॉ. ताराचन्द, 2. डॉ. जेम्स एफ, डॉ. डफ, 3. डॉ. जरकि हुसैन, 4. डॉ. आर्थर इ. मार्गन, 5. डॉ. ए. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर, 6. डॉ. मेंघनाद साहा, 7. डॉ. कर्मनारायण बहल, 8. डॉ. जान जे. टिगर्ट

आयोग का कार्यक्षेत्र: इस आयोग को निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करके संस्तुति देने का कार्य दिया गया था-

- भारत में विश्वविद्यालयी शिक्षा तथा अनुसंधान के उद्देश्य
- विश्वविद्यालयों के नियमों, नियन्त्रण, कार्य तथा क्षेत्र में आवश्यक तथा वांछनीय परिवर्तन
- विश्वविद्यालय की वित्त व्यवस्था
- शिक्षण तथा परीक्षा का स्तर उच्च बनाये रखना
- विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम
- विश्वविद्यालय में प्रवेश के मानक
- विश्वविद्यालयों में शिक्षण का माध्यम
- भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, भाषा दर्शन व ललित कलाओं में उच्च अध्ययन का प्रावधान
- क्षेत्रीय तथा अन्य आधारों पर विश्वविद्यालयों की आवश्यकता
- उच्च अनुसंधान
- विश्वविद्यालयों के धार्मिक शिक्षा
- अध्यापकों की योग्यता, सेवा शर्तों, वेतन तथा कार्यों की जानकारी
- छात्रानुशासन एवं छात्रावास
- अखिल भारतीय स्तर की संस्थाओं की समस्याएँ

उपरोक्त समस्त बिन्दुओं पर प्रश्नावली तथा साक्षात्कार के माध्यम से सूचना एकत्रित की गई तथा इनके विश्लेषण के बाद आयोग ने 15 अगस्त 1949 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया । इस आयोग के सुझाव तथा संस्तुतियाँ निम्नलिखित क्षेत्रों से सम्बन्धित थीं-

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के सुझाव एवं संस्तुतियाँ

(1) विश्वविद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य

(2) अध्यापक कल्याण

(3) उच्च शिक्षा का स्तर

(4) अध्ययन पाठ्यक्रम

(5) स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसंधान

(6) व्यावसायिक शिक्षा

(7) शिक्षा का माध्यम

(8) परीक्षा प्रणाली

(9) धार्मिक शिक्षा

(10) छात्र कल्याण

(11) ग्रामीण विश्वविद्यालय

(12) संविधान तथा नियन्त्रण

(13) शिक्षा की अर्थव्यवस्था

(14) नारी शिक्षा

6.3.2 माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार करने हेतु तथा माध्यमिक शिक्षा को प्रभावशाली बनाने के लिए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् (Central Adivsory Board on Education) ने सरकार से माध्यमिक शिक्षा के लिए आयोग गठित करने का आग्रह किया । इस सिफारिश को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने 23 सितम्बर 1952 को डॉ ए. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया। इसके सदस्य थे-

अध्यक्ष : डॉ. ए. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर

सचिव : डॉ. ए. एन. वसु

सदस्य : 1. जॉन क्रिस्टी, 2. डॉ. केनेथ रस्ट विलियम्स, 3. श्रीमती हंसा मेंहता, 4. श्री जे. ए. तारापोरवाला, 5. डॉ. के. एल. श्रीमाली, 6. श्री ए. टी. व्यास, 7. श्री के. जी. सैयेदन ।

भारत सरकार ने आयोग को माध्यमिक शिक्षा के सभी पक्षों की वर्तमान स्थिति की जांच करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का कार्य सौंपा था । निम्नलिखित बिन्दुओंके संदर्भ में सुझाव प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था-

- माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, संगठन तथा विषय वस्तु ।
- माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक, बेसिक तथा उच्च शिक्षा से सम्बन्ध ।
- विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों में परस्पर सम्बन्ध ।
- माध्यमिक विद्यालयों की अन्य समस्याएँ ।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने देश में माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन किया। इसके लिए प्रश्नावली तथा साक्षात्कार के माध्यम से सूचना एकत्रित की गई । 29 अगस्त, 1953 को आयोग ने 240 पृष्ठों का प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत किया । इसमें माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित क्षेत्र प्रस्तुत किये गये -

माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा दिए गए निम्नांकित क्षेत्र-

(1) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य

(2) माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन

(3) बहु-उद्देशीय विद्यालय

(4) कृषि शिक्षा

(5) तकनीकी शिक्षा

(6) आवासीय विद्यालय

(7) विकलांगों की शिक्षा

(8) सहशिक्षा

(9) त्रिभाषा सूत्र

(10) पाठ्यक्रम

(11) पाठ्य-पुस्तकें

(12) शिक्षण विधियाँ

(13) अनुशासन

(14) धार्मिक व नैतिक शिक्षा

(15) पाठ्यक्रम क्रियाएँ

(16) परामर्श एवं निर्देशन

(17) स्वास्थ्य शिक्षा

(18) अध्यापक

(19) परीक्षा प्रणाली

(20) संगठन तथा प्रशासन

(21) निरीक्षण

(22) छात्र संख्या

(23) अवधि

(24) वित्त-व्यवस्था

6.3.3 शिक्षा आयोग 1964-1966

शिक्षा के सभी स्तरों पर गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए 14 जुलाई 1964 को भारत सरकार ने डॉ. दौलतसिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग के गठन की घोषणा की । इस आयोग को कोठारी आयोग के नाम से भी जाना जाता है । आयोग के सदस्य निम्नलिखित है-

अध्यक्ष : डॉ. दौलत सिंह कोठारी

सचिव : श्री जे. पी. नायक

सह-सचिव : श्री जे. एफ. मैक्डूगल

सदस्य : 1. श्री ए. आर. दावोद, 2. श्री एल. एल. एल्विन, 3. श्री आर. ए. गोपाल स्वामी, 4. प्रो. सदातोशी इहारा, 5. डॉ. बी. एस. झा, 6. डॉ. पी. एन. कृपाल, 7. प्रो. एम. वी. माथुर, 8. डॉ. बी. पी. पाल, 9. कु. एस. पणिकर, 10. प्रो. रोजर रिवेले, 11. डॉ. के. जी. सैयेदेन, 12. डॉ. टी. सेन, 13. प्रो. एस. ए. शुमोवस्की, 14. श्री एम. जीन टामस

शिक्षा आयोग ने अपना कार्य पूरा करने के लिए देश के सभी राज्यों के विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में जाकर व्यक्तियों से साक्षात्कार करके सूचनाएँ एकत्रित की। इन सूचनाओं का विश्लेषण करके 67 पृष्ठों का प्रतिवेदन तैयार किया जिसमें शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर सघन प्रकाश डाला गया । शिक्षा को राष्ट्रीय उत्थान का साधन के रूप में

विकसित करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये । शिक्षा आयोग की महत्वपूर्ण संस्तुतियाँ एवं सुझाव 20 जून, 1986 को भारत सरकार को सौंप दिये गये । शिक्षा आयोग द्वारा दिए गए स्त्रोत निम्नलिखित है -

(1) शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्य
(2) शिक्षा की संरचना
(3) शिक्षकों का स्तर
(4) शिक्षक प्रशिक्षण
(5) नामांकन तथा जनशक्ति
(6) शैक्षिक समानता
(7) विद्यालयी शिक्षा का विस्तार
(8) विद्यालय पाठ्यक्रम
(9) विद्यालय शिक्षा प्रणाली
(10) विद्यालय निरीक्षण
(11) उच्च शिक्षा के उद्देश्य
(12) उच्च शिक्षा में प्रवेश एवं कार्यक्रम
(13) विश्वविद्यालयों की व्यवस्था
(14) कृषि शिक्षा
(15) व्यावसायिक, तकनीकी तथा इंजीनियरिंग शिक्षा
(16) विज्ञान शिक्षा तथा अनुसंधान
(17) प्रौढ़ शिक्षा
(18) शैक्षिक योजना तथा प्रशासन
(19) शैक्षिक अर्थव्यवस्था

स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. भारत में शिक्षा के सुधार हेतु कौन-कौन से आयोग गठित किये गये?
2. माध्यमिक शिक्षा आयोग की मुख्य संस्तुतियाँ क्या है?
3. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के सदस्य कौन-कौन थे?

6.4 राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ

भारत की राष्ट्रीय नीति सदैव विवादित ही रही है । स्वतन्त्रता संग्राम के समय राष्ट्र के नेताओं ने अनेक शिक्षा सिद्धान्तों तथा प्रतिमानों को प्रस्तुत किया था । राष्ट्रीय शिक्षा की भावना से ओत-प्रोत होने के बावज़ूद भी किसी सिद्धान्त को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली । स्वतन्त्रता के पश्चात शिक्षा को राष्ट्रीय प्रगति तथा विकास के साधन के रूप में स्वीकृत किया गया । सन् 1966 में गणित शिक्षा आयोग ने भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण की आवश्यकता पर जोर दिया । इससे सन् 1968 में भारत सरकार ने देश के आर्थिक सांस्कृतिक विकास समाजवादी समाज के निर्माण सभी स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 का निर्धारण किया तथा विधिवत घोषणा की । राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के मुख्य बिन्दु इस प्रकार है ।

6.4.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968

1. निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा (Free and Compulsory of Education)
2. शिक्षकों का स्तर, वेतन तथा योग्यता (Status Emoluments and qualification of Teachers)
3. भाषाओं का विकास (Development of Languages)
4. शिक्षा के अवसरों का समानीकरण (Equalization of Education Opportusities)
5. प्रतिभा की खोज (Identification of Telent)
6. कार्यानुभव तथा राष्ट्रीय सेवा (Work Experience and National Service)
7. विज्ञान शिक्षा तथा अनुसंधान (Work Experience and research)
8. कृषि तथा उद्योगो के लिए शिक्षा (Science Education for Agriculture and Industry)
9. पुस्तकों का उत्पादन (Production of Books)
10. परीक्षाएँ (Examinations)
11. माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)
12. विश्वविद्यालयी शिक्षा (University Education)
13. अंश कालीन शिक्षा तथा पत्राचार पाठयक्रम (Part time Education and Carrespondencecourse)
14. साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार (Extension of Literacy and adult Education)
15. खेल-कूद (Games and Sports)
16. अल्पसंख्यकों की शिक्षा (Education of minorities)
17. शैक्षिक संरचना (10+2+3 Educational structure)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 का महत्वपूर्ण कार्य देश में 10+2+3 शैक्षिक संरचना को लागू करना था । इस नीति में दी गई शिक्षा व्यवस्था में अनेक कमियाँ पाई जिनमें सुधार की आवश्यकता का अनुभव तत्कालीन सरकार ने किया । इसके फलस्वरूप सन् 1979 में नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति को तैयार किया ।

6.4.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979

1. **प्रस्तावना (Introduction):** इसमें शिक्षा के उद्देश्यों पाठयक्रम तथा शिक्षा व्यवस्था के बारे में बताया गया ।
2. **सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा (Universal primary Education):** संविधान में उल्लेखित सिद्धान्त के अनुसार 14 वर्ष तक के सभी बालकों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा दी जानी चाहियें ।

सार्वभौमीकरण के मुख्य बिन्दु इस प्रकार है-

- प्रारम्भिक शिक्षा सभी के लिए होनी चाहिये ।
- प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्यव्यक्तित्व का विकास तथा चारित्रिक विकास पाठयक्रम में सृजनात्मक एवं आनन्ददायक क्रियायें होनी चाहिये ।
- प्रारम्भिक शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध करवाई जायें ।
- निर्धन छात्रों को मध्यान्ह भोजन, निःशुल्क पाठय पुस्तक, पाठय सामग्री, यूनीर्फाम आदि प्रोत्साहन के रूप में दिये जाने चाहियें ।
- विद्यालय को सामुदायिक विकास केन्द्र की भांति कार्य करना चाहिये ।
- समान विद्यालय व्यवस्था तथा पार्श्व विद्यालय योजना को अपनाया जाये ।

3. प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education)

- प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता एवं सभी वर्गों तक पहुंचने का सुनिश्चित करना ।
- प्रौढ़ शिक्षा के अभिकरणों को चुनकर उनका सहयोग लेना ।
- ग्रामीण क्षेत्रों एवं नारी प्रशिक्षण पर विशेष बल देना ।
- साक्षरोत्तर कार्यक्रमों का संचालन करना ।

4. माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)

- माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना ।
- व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना ।
- व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का विकास करना ।
- विद्यालय तथा समुदाय की अन्त: क्रिया में वृद्धि करना ।

5. उच्च शिक्षा (Higher Education)

- उच्च शिक्षा की सुविधाएँ बढ़ाने हेतु पत्राचार कार्यक्रमों की अनुमति प्रदान की जाये ।
- पूर्वस्नातक शिक्षा की अवधि 3 वर्ष हो । इसके पश्चात पाठ्यक्रमों शिक्षा एवं अनुसंधान होगा । अनुसंधान के लिए राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की स्थापना की जाये ।
- उच्च शिक्षा संस्थानों एवं समुदाय के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों का विकास ।

6. **शिक्षा की संरचना (Structure of Education) :** शिक्षा की संरचना में मुख्य रूप से प्रारम्भिक, माध्यमिक एवं पूर्व स्नातक शिक्षा स्तर होगें । प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा स्तर को मिलाकर 12 वर्ष की विद्यालय शिक्षा होगी । पूर्व स्नातक स्तर की शिक्षा 3 वर्ष की होगी ।

7. **तकनीकी शिक्षा (Technical Education):** सामाजिक आर्थिक विकास के लिए तकनीकी शिक्षा का आयोजन किया जाना चाहिये । तकनीकी शिक्षा से व्यावसायिक कौशल भी प्रदान किये जाने चाहिये ।

8. कृषि चिकित्सा, एवं शारीरिक शिक्षा (Agricultural, Medical Physical Education)

- कृषि शिक्षा की सुविधा बढ़ाने के लिए कृषि विश्वविद्यालय तथा कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापित किये जाने चाहिये ।

- चिकित्सा सेवा व्यवस्था में देशी चिकित्सा प्रणालियों के साथ-साथ आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों को भी अपनाया जाये ।
- शारीरिक शिक्षा में खेलकूद, योगाभ्यास आदि की शिक्षा का व्यावहारिक ज्ञान शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रदान किया जाना चाहिये ।

9. **शिक्षा का माध्यम (Medium of Education):** प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा प्रदान की जाये । विद्यालयों में अंग्रेजी अथवा कोई एक विदेशी भाषा के अध्यापन की सुविधा प्रदान की जाये ।

   माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र (Three Language Formula) लागू किया जायेगा। हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी व अंग्रेजी के साथ एक आधुनिक भारतीय भाषा होगी । अहिन्दी भाषी राज्यों में एक क्षेत्रीय भाषा एक हिन्दी भाषा तथा एक अंग्रेजी भाषा होगी ।

10. **परीक्षा सुधार (Examination Reforms):** सार्वजनिक परीक्षाओं को वस्तुनिष्ट तथा विश्वसनीय बनाया जायेगा । रटने की प्रवृत्ति दूर करके व्यापक मूल्यांकन पर बल दिया जायेगा।

6.4.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 को कुल बारह खण्डों में बांटा गया है । ये इस प्रकार है-

खण्ड-1: प्रस्तावना (Introduction): तकनीकी एवं आर्थिक विकास का लाभ सभी वर्गों तक पहुंचाने के एक मात्र साधन शिक्षा है । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर जनवरी 1985 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण करने की घोषणा की गई ।

खण्ड-2: शिक्षा का सार तथा भूमिका (Essence and role of Education): भारत देश में शिक्षा सभी के लिए हैं, शिक्षा ही जनता के सर्वांगीण विकास का आधार है । यह राष्ट्रीय एकता एवं आत्मा की स्वतन्त्रता में वृद्धि करती है । देश की आर्थिक दशा को विकसित करने का साधन भी शिक्षा है ।

खण्ड-3: शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था (National System of Education): शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था का अर्थ है, सम्पूर्ण राष्ट्र में एक निश्चित स्तर तक, सभी विद्यार्थियों की जाति लिंग आदि के भेद भाव के बिना एक समान शिक्षा सरंचना का होना । 1986 की शिक्षा नीति में 10+2+3 शिक्षा संरचना को सम्पूर्ण राष्ट्र द्वारा स्वीकृत माना गया था । इसमें राष्ट्रीय पाठयक्रम होगा । उच्च शिक्षा में अन्तर्क्षेत्रीय गतिशीलता का प्रयास किया जायेगा । प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण, प्रौढ़ शिक्षा, वैज्ञानिक तथा तकनीकि अनुसंधान के कार्यक्रमों को सहायता प्रदान की जायेगी । शिक्षा का उत्तरादित्व राज्य का होगा किन्तु शिक्षा के सभी स्तरों पर गुणवत्ता बढ़ाने के लिए केन्द्र सरकार का उत्तरदायित्व अधिक होगा ।

खण्ड-4 : समानता के लिए शिक्षा (Education for Equality): सभी को शिक्षा के अवसरों की समानता प्रदान की जायेगी । महिलाओं की दशा में परिवर्तन के लिए शिक्षा की सहायता ली जायेगी । अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का विकास करके उनकी अन्य जातियों के समान लाना होगा । इसके लिए छात्रवृत्ति योजना उनके क्षेत्रों में विद्यालय एंव शिक्षक की व्यवस्था आदि उपाय किये जायेगें । शारीरिक विकलांग छात्रों के लिए विशेष शिक्षा व्यवस्था दिये जायेगें।

दूरस्थ शिक्षा के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा का व्यापक कार्यक्रम लागू किया जायेगा ।

खण्ड-5 : विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुनर्गठन (Re-organisation of Education at different levels): पूर्वबाल्यकाल परिचर्या एवं शिक्षा (Early childhood care and Education(पूर्व बाल्यकाल परिचर्या एवं शिक्षा को प्राथमिकता दी जायेगी तथा इसको एकीकृत बाल विकास सेवा (Integrated Child Development service) कार्यक्रम से जोड़ा जायेगा।

प्राथमिक शिक्षा (Primary Education)

प्राथमिक शिक्षा में सार्वभौमिकीकरण तथा गुणवत्ता में सुधार पर बल दिया जायेगा । प्राथमिक विद्यालयों को आवश्यक सुविधाएं दी जायेगी ।

माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)

माध्यमिक शिक्षा की पहुंच को बढाया जायेगा । विशिष्ट योग्यता या अभिवृत्ति वाले बालकों के लिए गतिनिर्धारक विद्यालय या नवोदय विद्यालय खोले जायेगें ।

व्यावसायीकरण (Vocationalisation)

व्यावसायिक पाठयक्रमों की स्थापना का कार्य सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्रों पर होगा । व्यावसायिक शिक्षा का पुनर्गठन भी किया जायेगा ।

उच्च शिक्षा (Higher Education)

उच्च शिक्षा के पाठयक्रमों को पुन: रचित किया जायेगा । उच्च शिक्षा की गुणवत्ता एवं अनुसन्धान को बढावा दिया जायेगा । खुला विश्वविद्यालय एवं दूरस्थ शिक्षा (Open University and Distance Education) उच्च शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने के लिए तथा शिक्षा को प्रजा तान्त्रिक करने के साधन के स्व में खुला विश्वविद्यालय प्रणाली को आरम्भ एवं सुदृढ़ किया जायेगा ।

उपाधि विलगता (Isolation of degrees)

रोजगार को उपाधि से अलग करने की योजना प्रारम्भ होगी । राष्ट्रीय परीक्षण सेवा की स्थापना की जायेगी ।

ग्रामीण विश्वविद्यालय (Rural University)

ग्रामीण विश्वविद्यालय का नया प्रारूप विकसित किया जायेगा । गाँधी जी की बेसिक शिक्षा संस्थाओं को सहायता दी जायेगी ।

खण्ड-6: तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा (Technical and Management Education) : तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा का पुनर्गठन किया जायेगा । कम्प्यूटर का ज्ञान एवं उपयोग तकनीकी शिक्षा का आवश्यक भाग होगा ।

खण्ड-7 : शिक्षा प्रणाली का क्रियान्वयन (Execution of Education System) : शिक्षा का प्रबन्ध सर्वोच्च बद्धिकता, नवाचारों व सृजनशीलता के वातावरण में किया जाना चाहिये । सभी शिक्षकों को पढाना चाहिये तथा सभी विद्यार्थियों को रूचि के साथ पढ़ना चाहिये ।

खण्ड-8 : शिक्षा के पाठयक्रम तथा प्रक्रिया का अभिनवीकरण (Orienting the curricnlun and process of Education) : शिक्षा के पाठयक्रम तथा प्रक्रियाओं में सांस्कृतिक

कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जायेगा । शिक्षा द्वारा सार्वभौमिक तथा सनातन मूल्यों को बढ़ावा दिया जायेगा।

खण्ड-9 : शिक्षक (Teacher) : शिक्षकों को रचनात्मक तथा सृजनात्मक दिशा में प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया जाना चाहिये । शिक्षकों के चयन की विधियां श्रेष्ठ वस्तुनिष्ठता तथा आवश्यकता के अनुरूप होनी चाहिये । शिक्षकों का मूल्यांकन एकली, सहभागी, समंक विधि द्वारा किया जाना चाहिये ।

खण्ड-10 : शिक्षा का प्रबन्ध (Management of Education) : शिक्षा के प्रबन्ध में दीर्घकालीन योजना बनाने विकेन्द्रीकरण शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्तता महिलाओ की सहभागिता आदि का ध्यान रखा जायेगा ।

खण्ड-11 : संसाधन तथा समीक्षा (Resources and Review) : संसाधनो में वृद्धि के लिए दान, उपघर, शुल्क आदि की सहायता ली जायेगी । शिक्षा को राष्ट्रीय विकास तथा संघर्ष के लिए निवेश का महत्वपूर्ण क्षेत्र माना जायेगा ।

खण्ड-12 : शिक्षा का भावी स्वरूप (Future of Education) : भारत में शिक्षा का भविष्य में स्वरूप काफी जटिल होगा । शिक्षा प्रणाली के सबसे ऊपरी स्तर में लोग विश्व में श्रेष्ठतम होगें ।

भारतीय समाज को संविधान के निर्देशित तत्वों के संदर्भ में उन्नतशील बनाने में शिक्षा की भूमिका

इस संदर्भ में हमें भारत-राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों की चर्चा करना आवश्यक बन जाता है । इन लक्ष्यों का विवरण हमें निम्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत देना उचित प्रतीत होगा ।

1 प्रजातंत्र, 2 राष्ट्रीय एकता, 3 आर्थिक आत्म निर्भरता, 4 आधुनिकीकरण, धर्म निर्पेक्षता तथा समाजवादी समाज

इसमें स्पष्ट होगा कि जैसे समाज की रचना करने का लक्ष्य संविधान निर्माण कर्ताओं ने निर्धारित किया था, आज भी वहीं महत्ता रखता है । संविधान में दिए गए प्रमुख प्रावधानों को समझना तथा उन पर अमल करना प्रत्येक प्रावधानों को समझना तथा उन पर अमल करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य बन जाता है । तत्कथित प्रावधानों की पृष्ठ-भूमि में शैक्षिक तथा समाजिक समस्याओं का हल किया जाना आज भी आपेक्षित है ।

हमारे भारतीय संविधान ने न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा मातृत्व भाव, इन चार आदर्शो को अपनाया है ताकि सामाजिक असमानताएं, आर्थिक विषमताएं तथा राजनैतिक विशेष अधिकारों को समाप्त किया जा सके । चूंकि ये प्रावधान शिक्षा की दृष्टि से सर्वथा महत्वपूर्ण हैं, इनका विस्तारपूर्वक विवरण देना आवश्यक बन जाता है ।

उपयुक्ता शिक्षा उपलब्ध कराए बिना इन आदर्शो को प्राप्त करना कदापि भी संभव नहीं है । स्वतंत्रता प्राप्ति के समय धार्मिक कट्टरता, जाति व्यवस्था के कुप्रभाव आदि चरम सीमा पर थे, जिनके परिणामस्वरूप समाजिक जीवन पूर्णतया भिन्न-भिन्न अवस्था के कारण राष्ट्र में अत्याधिक कमजोर बन चुका था । इस दयनीय परिस्थिति में छुटकारा पाने के लिये ही हमारे संविधानीय प्रस्तावना में न्याय, समानता, स्वतंत्रता तथा भातृत्व भाव के यथार्योय स्थान दिया गया । ये भारतीय सामाजिक जीवन के मूल्य मार्ग दर्शक सिद्धान्त व्यवहारसूत्र तथा राष्ट्रीय

जीवन की कसौटी बन गए जिनके आधार पर भविष्य को कानून व्यथा, निर्धारित करना निश्चित किया गया । यह सब कुछ शिक्षा के सहयोग में ही सम्पन्न किया जाना संभव हो सकता था ।

संविधान में उल्लेखित आदर्शों को व्यवहार रूप में उतारने के लिये जनता का शिक्षित होना अनिवार्य है ताकि वे उन्हें समझे तथा अपने जीवनक्रम को उसके अनुसार आयोजित कर सकें । इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि इन आदर्शों को साकार करने के लिये सरकार भी व्यापक अग्रसर जनता को उपलब्ध करायें इसका अभिप्राय है कि सभी को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधायें प्राप्त होनी चाहिए व प्रत्येक को उत्कर्ष, विकास तथा प्रगति के लिए समान अवसपर मिलने चाहिए । अस्तु संविधान, प्रशासकों को दो प्रकार के कर्तव्य पालन करने के लिए आज्ञा देना है । जनता को शिक्षा इस प्रकार दी जाये कि वे संविधान में निर्देशित द्वारा वे उन्हें अपने जीवन में उतार सके । नागरिकों को शैक्षिक सुविधा प्रदान करें तथा सभी वर्गों को सामाजिक उत्थान के लिए समान अवसर प्रदान किये जायँ ।

उक्त चार मौलिक अधिकारों के संदर्भ में शिक्षा में निहित क्या कुछ है इस पर प्रकाश डालना सार्थक होगा ।

1 न्याय - इसका यह अभिप्राय नहीं है कि केवल उनको ही न्याय मिले जो न्यायालय में जाकर उसके लिये पुकार करे परन्तु व्यापक में उपलब्ध हो । सविधा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में न्याय को आश्वासित करता है । इसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय का उल्लेख आवश्यक बन जाता है ।

1 सामाजिक न्याय - सामाजिक न्याय प्रत्येक व्यक्ति के लिये समाज में सही स्थान के लिए आश्वासित करता है, भले ही भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के संदर्भ में कोई परम्पराएं अथवा परिभाषायें संविधान लागू होने से पूर्व हो, जिन्हें संविधान ने अब समाप्त कर सब को एक जैसा दर्जा प्रदान किया है । इनका अभिप्राय यह है कि राज्य नागरिकों में धर्म, जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभावों को मान्यता नहीं देगा । व इन आधारों पर उन पर कोई अयोग्यता अथवा बंधन नहीं लादेगा । जहां तक सार्वजनिक स्थानों के उपयोगों का प्रश्न है इसके अतिरिक्त किसी को भी उसकी इच्छा के विरूद्ध काम करने के लिए (बेगार वास्ते) बाध्य नहीं किया जायेगा । हां विशिष्ट परिस्थितियों में उनसे, बिना भेदभाव, अनिवार्य रूप से युद्ध अथवा सार्वजनिक हित में, सेवाएं ली जा सकती है । इन आधारों पर किसी भी नगारिक को राज्य के अंतर्गत सेवा बाबत अयोग्य घोषित नहीं किया जायेगा ।

इस संदर्भ में हमारी संस्थाओं में शिक्षा दिए जाने हेतु देश के प्रत्येक नागरिक के बच्चों के लिए उन्मुख, प्रवेश की व्यवस्था होगी अर्थात् ऐसी कोई भी संस्था को राज्य की ओर से अनुदान नहीं मिलेगा जो इन आधार पर शिक्षा देती हो । हमारी संस्थाओं में भिन्न-भिन्न वर्गों के बालकों में इन आधार पर भेदभाव बरतने नहीं दिया जाएगा ।

इसी प्रकार से, चूंकि प्रत्येक नागरिक को राज्य की सेवाओं में रोजगार करने का समान अधिकार है, शिक्षा भेदभाव पूर्ण रूप से नहीं दी जायेगी । ताकि विशिष्ट वर्गों के बच्चों को, अनुवांशिक व्यवसाय करने के लिए उन्हीं बातों की शिक्षा दी जायेगी जो उन्हें उस कार्य को

करने के लिए सुसज्जित शिक्षा मिलनी चाहिए तथा सभी को किसी भी व्यवसाय को अपनाने, जिसके लिये उपयुक्त है, के समान शिक्षा दी जानी चाहिए और इसके पश्चात् उन्हें योग्यताओं, क्षमताओं आदि अन्य और कोई आधार पर विशिष्ट शिक्षा अथवा प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जायेगा । सारांश में यह कहना तर्कसंगत होगा कि सभी वर्गों के व्यक्तियों को आत्म विकास तथा ज्ञान वर्द्धन हेतु अवसर उपलब्ध कराए जाएंगे । शिक्षा सस्ती होगी ताकि धनी तथा गरीबों को आत्म विकास के लिए वांछनीय अवसर मिलेंगे । सभी पात्र व्यक्तियों को, भले ही धनी/गरीब हों, को सभी स्तरीय शिक्षा प्राप्त करना सुलभ होगा, साधन का अभाव इस बारे में बाधा नहीं बनने दिया जायेगा ।

संविधान के आधार पर अस्पृश्यकता निवारण ने पिछड़े हुये वर्गों को समाजिक असानता से मुक्ति दिलाने का सफल भगीरथ प्रयत्न किया है ताकि वे भी सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर, अन्य वर्गों की भांति प्रगति को प्राप्त कर सके जिसे साकार करने के लिए, अस्पृश्यता को उखाड़ फेंकने के लिए कानून में व्यवस्था की गई है तथा उनके लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं । शिक्षा प्रगति की दिशा में ऐसी ही वांछनीय व्यवस्था उनके पक्ष में की गई है तथा शिक्षा संस्थाओं को सामाजिक आधार पर वर्ग-विहिन वातावरण बनाने का प्रयास किया गया है । दूसरी बात यह है कि इन आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लोगों को विशेष हक दिए गए हैं । इसके अलावा उनके व्यक्तित्व के संतुलित विकास के लिए विशेष ध्यान दिया जा कर उन्हें वह मार्ग दर्शन मिल रहा है जिसका उनके परिवारों में अभाव है ताकि वे दूसरों के समकक्ष बन सकें । यह संतोष का विषय है कि सामाजिक न्याय को व्यवहारिक रूप देने की दिशा में शासकीय, अर्ध शासकीय संस्थाओं द्वारा बहुत कुछ कदम उठाए जा रहे हैं, यद्यपि तभी भी बहुत कुछ करना शेष है ।

2 आर्थिक न्याय - इसके अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को अपनी इच्छानुसार व्यवसाय का चुनना, जायदाद खरीदना व उसका उपभोग करना शामिल होता है । इसका अर्थ है कि उक्त क्षेत्र में उसे प्रशिक्षित प्राप्त करने की संधी मिलनी चाहिए । शिक्षा की दृष्टि से इसका मतलब है कि राज्य अमुक व्यवसायों के लिये ही छात्रों को तैयारी के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा । राज्य का कार्य

विभिन्न व्यवसायों तथा व्यापारों के लिए प्रशिक्षण देने तक की सीमा तक रहेगा और जिन व्यवसाय को लोग चुनना चाहेंगे उनके लिए वे स्वतंत्र होंगे, परन्तु सामाजिक कल्याण के प्रश्न को आवश्यक रूप से ध्यान में रखा जाएगा अर्थात् इन व्यवसायों के प्रशिक्षण में प्रवेश केवल योग्यता के आधार पर ही दिया जायेगा ।

3 राजनैतिक न्याय - चूंकि संविधान के अंतर्गत बालिग मताधिक 18 वर्ष की आयु से मान्य किया जा चुका है, इसका महत्व शिक्षा की व्यवस्था की दृष्टि से वास्तव में बहुत अधिक हो गया है । इस संदर्भ में संविधान ने साक्षरता, धर्म, लिंग आदि के बारे में कोई योग्यताओं का उल्लेख नहीं किया आदि के प्रत्येक सयाना व्यक्ति भले ही वह अनपढ़ कमजोर वर्ग का सदस्व हो, न्यूनतम आयु को प्राप्त करते ही मतदाता बनने का पात्र हो जाता है । इसने प्रजातंत्र की दृष्टि से एक नवीन युग का अभिर्भाव किया है । विधान सभाओं तथा संसद में चुने हुए उपयुक्त प्रतिनिधियों को भेजने के लिए

यह आवश्यक हो गया है कि इस अधिकार का सही उपयोग करने के हेतु उन्हें वांछनीय प्रशिक्षत तथा शिक्षा देना, एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व बन गया है । देश की शिक्षा पद्धति से यह अपेक्षा की जाती है कि शासन चलाने हेतु उपयुक्त प्रतिनिधियों को चुनने की शिक्षा दे । शिक्षा यह कार्य कहां तक सम्पन्न करती है, उसपर उसकी सफलता/असफलता निर्भर रहेगी ।

अक्सर ऐसा, और ठीक ही कहा जाता है कि अशिक्षित व्यक्ति अपने प्रतिनिधियों को योग्यता के आधार पर नहीं चुन सकने के कारण प्रजातंत्र एक मजाक बन जाता है क्योंकि उन लोगों में गुण व अवगुणों में अंतर करने की क्षमता नहीं होती । ऐसी परिस्थिति में जो भी उसकी भावनाओं को उभारता है, वह चुना जाता है और ऐसा व्यक्ति देश के हित में, स्वार्थ परायणता के कारण, योजना बनाने तथा उन्नति की ओर अग्रसर नहीं बढ़ता है । हमारे संविधान ने सभी को प्रगति प्राप्त करने की दृष्टि से वयस्क मताधिकार उपलब्ध कराया है । अरस्तु उनका शिक्षित होना अत्यावश्यक है ताकि वे प्रजातंत्र के हित में योग्य व्यक्ति को अपने प्रतिनिधि के रूप में चुनने में समर्थ हों । यदि आज भी आम जनता, स्वार्थी व ठग राजनीतिज्ञों के चुंगल में अज्ञानता, अविचार तथा संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण मुक्त नहीं हो पाई है तो इसका उतारदायित्व प्रचलित शिक्षा प्रणाली पर सर्वथा है, अस्तु पर्याप्त उपलब्ध न होने में शिक्षा पद्धति तथा अन्य पर्याप्त संसाधन उपलब्ध न होने में शिक्षा पद्धति तथा अन्य सामाजिक एजेन्सीयां पूरी तरह दोष के भागी हैं ।

2. स्वतंत्रता - हमारे संविधान ने प्रत्येक नागरिक को भाषण की स्वतंत्रता, देश के किसी भी भाग में रहने, संघ बनाना, जायदाद तथा व्यवसाय करने की स्वतंत्रता का प्रावधान किया है केवल कानून के आधार पर ही किसी को दण्ड दिया जा सकता है, अन्यथा नहीं । प्रत्येक को अपने विचार, तथा संस्कृति की सुरक्षा का अधिकार है । राज्य पर आधारित शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी तथा इस आधार पर प्रवेश हेतु भेदभाव नहीं बरता जाएगा । कभी-कभी भाषण की स्वतंत्रता पर गलत फहमियों को फैलाने तथा लोगों की भावना को स्वार्थ प्रेरित होकर अपने देश की एकता को ठेस पहुंचाने की दृष्टि से उसके दुरूपयोग को रोकना होगा । अर्थात् इस अधिकार का सही उपयोग करने के लिए लोगों को शिक्षित करना होगा । ताकि राष्ट्रहित व सामाजिक कल्याण की रक्षा हो सके । इसी प्रकार में धर्म पालन स्वतंत्रता बाबत भी उपयुक्त शिक्षा जाना आवश्यक है । अन्यथा साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारा जा सकता है जिससे देश की अखंडता खतरे में पड़ सकती है ।
3. समानता - इसके अन्तर्गत कानून की निगाह में सभी नागरिक समान हैं व हर एक को कानून की सुरक्षा प्राप्त है व साथ ही साथ समान अवसर का अधिकार भी प्राप्त है । इसके लिए यह समान अवसर हो जाता है कि शिक्षा प्राप्ति के सम्बन्ध में सभी को समान अवसर प्राप्त हो । समाज की सामाजिक व्यवस्था को साकार करने के लिए, शिक्षा के सही ढांचे का निर्माण करना आवश्यक हो जाता है ।

4. भातृत्व भाव - हमारे संविधान ने व्यक्ति के दर्जे को अत्यधिक महत्व दिया है परन्तु उसे अन्य व्यक्ति के दर्जे तथा राष्ट्रीय एकता का अहित नहीं करने दिया जाएगा और उस पर प्रतिबंध लगाए जाएंगे । संविधान ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया कि दस वर्ष की अवधि अर्थात् सन् 1960 तक 14 वर्ष की आयु की सभी बच्चों को सार्वभौमिक, अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी परन्तु ऐसा न हो पाया । देवनागरी लिपि जाने वाली हिन्दी को देश की सरकारी भाषा स्वीकारा गया । परन्तु संविधान लागू होने के समय से 15 वर्ष तक अंग्रेजी का इस दृष्टि से उपयोग को मान्यता दी गई परन्तु इसका वर्चस्व अनिश्चित काल के लिए यथावत बना रहा और वाद विवाद चलता रहा । इसका कुप्रभाव हमारी शिक्षा के विकास पर पड़ रहा है । शिक्षा का माध्यम, अंग्रेजी का स्थान, प्रादेशिक भाषा संबंधी समरचाओं को शीघ्रातिशीघ्र सुलझाने की आवश्यकता है । आज भी शिक्षा शास्त्रियों पर राजनैतिक का निसंण पूर्ववत हैं ।

समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि नागरिक समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाए । इरा दिशा में शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्चपूर्ण है ताकि आम जनता यह ठीक तरह समझ सके तथा व्यवहार में लाए कि अधिकारों का राष्ट्र के हित में किस प्रकार उपयोग किया जाना चाहिए । आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा समाज की व्यवस्था, संविधान में दिए गए प्रावधानों के अनुरूप करें ताकि राज्य वास्तव में सार्वभौमिक, प्रजातांत्रिक, गणतंत्रात्मक व कल्याणकारी बने । सन् 1976 में संविधान के 42 वें संशोधन के अनुसार शिक्षा विषय को संयुक्त सभी में लाया गया जब कि इसके पूर्व वह राज्य सूची में था । अब छात्रों को एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने के लिए गतिशीलता उपलब्ध होगी तथा सांस्कृतिक पृथकीकरण समाप्त होगा व समूचे देश की एकता के निर्माण में बल प्राप्ति होगी व व्यक्ति के मौलिक अधिकारों तथा समाज को समाजिक व्यवस्था में समन्वय का कार्य, शिक्षा एक बड़ी सीमा तक सम्पन्न कर सकती है । इस संदर्भ में अत्याधिक संख्या जनता की अत्याधिक प्रगति के लिए, शिक्षा के क्षेत्र में उपयुक्त योजना आवश्यक है ।

संविधान में राज्य निर्देशित तत्व परिच्छेद ने 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए निशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान देकर शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट किया है । संविधान की धारा 46 के अन्तर्गत यह स्पष्ट उल्लेख है कि राज्य, विशेष सावधानियों के साथ समाज के कमजोर वर्ग तथा प्रमुख रूप से अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों के शैक्षिक तथा आर्थिक कल्याण की प्रगति प्राप्त करेगा तथा उनकी समाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से रक्षा करेगा ।

भविष्य तथा वर्तमान के लिए शिक्षा एक अद्‌वितीय लागत का स्वरूप धारण कर चुकी है जो कि सन् 1986 की शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का लक्ष्य बन चुका है ताकि संविधान द्‌वारा प्रतिपादित धर्म निरपेक्षता समाजवाद, प्रजातंत्र के लक्ष्यों को सम्पन्न किया जा सके । अस्तु, संविधान में वे सभी सिद्धान्त शामिल हैं जिन पर राष्ट्रीय प्रणाली की कल्पना की गई है । इसके तत्वाधान में कॉमन स्कूल प्रणाली की दिशा में प्रभावशाली उपाय किये जाने स्पष्ट संकेत है तथा राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में 10+2+3 ढांचे को देश के सभी भागों के लिए अपनाया गया है । जिसके लिए राष्ट्रीय आधार पर पाठ्यक्रम स्वरूप/ निर्धारित किया गया है । अवसरों

की समानता उपलब्ध कराने की दिशा में केवल शिक्षा तक पहुंच अपितु उसकी सफलता से संबंधित शर्तों को भी पूरा कराने के प्रयास किये जा रहे हैं तथा समानता के प्रति चेतना को सह-संबंधी पाठ्यक्रम द्वारा पैदा किया जायेगा व शिक्षा की प्रत्येक अवस्था पर स्तरीय न्यूनतम अधिगम प्रत्येक के लिए आश्वासित होगा । यू.जी.सी. तथा अन्य संस्थाओं को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के हित में, अपनी भूमिका निभाने के लिए सशक्त किया जाये ।

6.5 शिक्षा में राजनीतिक प्रभाव

भारत में प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था है देश की वर्तमान राजनीति में स्वार्थ सिद्ध करना ही मुख्य ध्येय बन गया है । जिससे शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति व्याप्त तो चुकी है जिसके चलते निम्नलिखित तथ्य सामने आ रहे है ।

1. शिक्षकों का स्थानान्तरण (Transfer of teachers): वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में सरकारी नेता शिक्षकों का समय-समय पर स्थानान्तरण करते रहते है ताकि उनके स्वार्थ सिद्ध सके ।
2. विद्यालयों की स्थापना (Establishment of schools): नवीन विद्यालयों की स्थापना कहां-कहां पर होगी इस बात को स्थानीय नेता ही निर्धारित करते है । किसी स्थान पर राजनीति के कारण अधिक से अधिक संख्या में विद्यालय स्थापित कर दिये जाते है । तथा किसी स्थान पर एक भी विद्यालय स्थापित नहीं किया जाता है ओर वहां के विद्यार्थी शिक्षा से वंचित रह जाते है।
3. विद्यालय व्यवस्था में हस्तक्षेप (Interference in school): आपसी राजनीति की वजह से स्थानीय नेता विद्यालय की व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हैं । प्रधानाध्यापक कोई भी कार्य स्वतन्त्र रूप से नहीं कर पाते है । उन्हें प्रत्येक कार्य के लिए राजनीति के प्रभाव को सहना पड़ता है । ऐसे कार्य जो विद्यार्थी हित में नहीं होते है किन्तु दबाववश करने पड़ते हैं ।

6.6 सारांश

भारतवर्ष लोकतान्त्रिक गणराज्य है । भारत में शिक्षा का दायित्व केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनों पर हैं । अत: शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है । राजनीतिक व्यवस्था तथा शिक्षा का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है । भारतीय राजनीतिक व्यवस्था प्रजातान्त्रिक व्यवस्था है जो उदारवाद एवं मानवतावादी विचारों से प्रभावित है । प्रजातान्त्रिक शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्य, पाठयक्रम शिक्षक विधियों एवं पाठयक्रम भी जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप होते है । भारतीय शिक्षा व्यवस्था के सुधार हेतु विभिन्न आयोगों का गठन किया गया । उच्च शिक्षा में गुणवत्ता के लिए विश्वविद्यालय आयोग 1948-1949 का गठन किया गया । माध्यमिक शिक्षा की स्थिति में सुधार लाने के लिए माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-1953 का गठन किया गया शिक्षा के सभी स्तरों पर गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए शिक्षा आयोग या कोठरी आयोग 1964-1966 की स्थापना की गई । भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियां भी स्वतन्त्रता के पश्चात परिवर्तित की गई । सबसे पहले 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की

घोषणा की गई । इसके बाद सन् 1979 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई । ये दोनो राष्ट्रीय शिक्षा नीतियां शिक्षा की प्रगति में अधिक योगदान नहीं दे पाई तथा सन 1986 में नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की विभिन्न सरकारों ने अलग-अलग-शिक्षा नीतियो की घोषणा की किन्तु दुर्भाग्यवश शिक्षा में आशातीत परिवर्तन नहीं हो पाये है इसका कारण शिक्षा में व्याप्त राजनीति है । सभी नेता अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयास करते हैं । शिक्षा का उद्देश्य मानव की सामथर्य को विकसित करना है । फिर भी सभी युवाओं को प्र्याप्त रोजगार प्राप्त नहीं हो रहे है ।

6.7 शब्दावली

प्रजातन्त्र (Democracy)	:	जनता का जनता द्वारा जनता के लिए शासन प्रजातन्त्र कहलाता है ।
शिक्षा आयोग (Education Commission)	:	शिक्षा की दशा में सुधार के लिए महान शिक्षाविरो की सदस्यता वाले समूह ।
शिक्षानीति (Education Policy)	:	सरकार द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता सुधार के लिए बनाई गई नीतियां ।
गति निर्धारक विद्यालय (Pacesetting Schools)	:	विशिष्ट क्षमता वाले छात्रों के लिए विशेष प्रकार के विद्यालय ।

6.8 मूल्यांकन प्रश्न

1. भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विस्तृत वर्णन कीजिये ।
2. प्रजातान्त्रिक शिक्षा के उद्देश्य क्या है?
3. भारतीय शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप क्या है?
4. अनुशासन के सम्बन्ध में प्रजातान्त्रिक शिक्षा प्रणाली की क्या विचार धारा है?
5. विभिन्न भारतीय शिक्षा आयोग कौन-कौन से है?
6. राधा कृष्णन आयोग की संस्तुतियां क्या है?
7. माध्यमिक शिक्षा आयोग का विस्तृत वर्णन कीजिये ।
8. कोठारी आयोग की मुख्य सिफारिशें क्या थी?
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 तथा राष्ट्रीय शिक्षानीति 1979 का तुलनात्मक विवरण दीजिये ।
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का सविस्तार वर्णन कीजिये ।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. पाण्डेय रामशकल तथा अन्य: भारतीय शिक्षा की समस्याएं विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

2. मलैया, विद्यावती भारतीय शिक्षा की समस्याएं एवं प्रवृतियां, मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया दिल्ली ।
3. मुखर्जी, ए.एन, एजूकेशन इन इण्डिया, टूडे एंड टुमारो, आचार्य बुक डिपो, बड़ौदा
4. चोब सरयू प्रसाद सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद ।
5. ओड, एल.के. शिक्षा के नूतत आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर ।

इकाई - 7

शिक्षा और शैक्षिक प्रबन्धन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 शिक्षा का अर्थ

7.3 शिक्षा प्रक्रिया के अंग

7.4 प्रबन्धन का अर्थ व क्षेत्र

7.5 शैक्षिक प्रबन्ध

7.6 शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ व क्षेत्र

7.7 शैक्षिक प्रबन्ध के उपागम

7.8 शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन

7.9 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व शैलियाँ व निर्णयन

7.10 शैक्षिक प्रबन्धन में समन्वय

7.11 शैक्षिक प्रबन्धन में सम्प्रेषण

7.12 शैक्षिक प्रबन्धन व समय प्रबन्धन

7.13 शैक्षिक प्रबन्धन के संवैधानिक प्रावधान

7.14 शिक्षा में वित्तीय प्रबन्धन

7.15 मोनिटरिंग व निरीक्षण

7.16 सारांश

7.17 मूल्यांकन प्रश्न

7.18 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप -

- शिक्षा के अर्थ व सम्प्रत्यय से अवगत हो सकेंगे
- शिक्षा प्रबन्धन की अवधारणा, परिभाषा व सिद्धान्त को समझ सकेंगे ।
- शैक्षिक प्रबन्धन के उपागम व सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन को समझ सकेंगे ।
- शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व, शैलियों, निर्णयन व समन्वय को समझ सकेंगे ।
- शैक्षिक प्रबन्धन में सम्प्रेषण व समय प्रबन्धन को समझ सकेंगे ।
- शैक्षिक प्रबन्धन के सवैंधानिक प्रावधान व वित्तीय प्रबन्धन को समझ सकेंगे ।
- शैक्षिक निरीक्षण व मोनिटरिंग को समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

शिक्षा वह सुनियोजित प्रक्रिया है जो मनुष्य में मनुष्यत्व के भावों का बीजारोपण करती है । बालक जब जन्म लेता है तो वह असहाय व असामाजिक होता है । वह न बोलना जानता है और न चलना फिरना । उसे अपने पराये का बोध भी नहीं होता है परन्तु जैसे-जैसे वह बडा होता है उस पर शिक्षा के औपचारिक व अनौपचारिक साधनों का प्रभाव पड़ता है । शिक्षा माता के समान पालन पोषण करती है पिता के समान उचित मार्गदर्शन द्वारा अपने कार्यों में लगाती है ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज में रहते हुये उसे सामाजिक व्यवस्था व वातावरण के साथ समन्वय व सन्तुलन स्थापित करना पड़ता है । समन्वय व सन्तुलन स्थापित करते हुये उसके मार्ग में अनेकों समस्याऐ, बाधाऐं व जटिलताऐं आती हैं जिनका समाधान ढूंढ़ने के लिये व्यक्ति के द्वारा जो प्रयास या व्यवस्थायें की जाती है उसे प्रबन्धन कहते हैं । प्रबन्धन की प्रक्रिया को अपनाते हुये मनुष्य द्वारा वस्तुओं व साधनों का नियोजन किया जाता है । भूमण्डलीकरण के इस युग में सूचनाऐं प्राप्त करने के अनेकों साधन काम में लाये जाते हैं जिनके आधार पर वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रयास करता है किन्तु प्रयास करते समय उसके मस्तिष्क में एक नियोजन की प्रक्रिया चलती है जो उसे गुणवत्ता को दृष्टिगत रखते हुये उद्देश्य प्राप्ति की ओर प्रेरित करती है । अच्छे प्रबन्धन में गुणवत्ता को दृष्टिगत रखते हुये सही साधनों का उपयोग करना व सन्तुष्टि प्राप्त करना मुख्य ध्येय होता है ।

7.2 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द "शिक्षा" धातु के आ प्रत्यय लगाने से हुई है जिसका अर्थ है सीखने व सिखाने की प्रक्रिया । शिक्षा के लिये प्राचीन युग में विद्या" शब्द का प्रयोग भी किया जाता था । विद्या शब्द "विद्" धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है "जानना" । विद्या का तात्पर्य है - ज्ञान ।

अंग्रेजी भाषा में शिक्षा शब्द के लिये "एजूकेशन" शब्द का प्रयोग किया जाता है । "एजूकेशन" शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा से हुई है । लेटिन के एजूकेटम (Educatum) शब्द का अर्थ है शिक्षण कार्य करना । कुछ विद्वानों की मान्यता है कि एजूकेशन शब्द की व्युत्पत्ति "एड्सीयर"(Educere) से हुई है जिसका अर्थ है विकसित करना या पथ प्रदर्शित करना । E.Duco शब्द से हुई है जिसमें E शब्द से तात्पर्य अन्दर से तथा Duco से तात्पर्य विकसित करना या आगे बढ़ाना है ।

यजुर्वेद :- "विद्यायमृतभष्नुते" अर्थात् विद्या से अमरत्व की प्राप्ति होती है ।

गीता :- "सा विद्या या विमुक्तये " अर्थात् वही विद्या है जो बन्धन से मुक्त करावे ।

महात्मा गाँधी :- "शिक्षा रो मेरा तात्पर्य है व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा का विकास ।

"(By Education I mean, an all round drawing out of the best in child and man. - Body, mind and spirit)"

प्लेटो :- "शिक्षा उसे कहते हैं जो सद्गुणों का विकास करती है ।"

रूसो :- "शिक्षा जीवन है और उसका उद्देश्य व्यक्तित्व उत्कर्ष करना है ।"

रॉस :- "शिक्षा बालक के स्वाभाविक तथा प्राकृतिक गुणों का विकास करती है ।"

परिणामत: शिक्षा गत्यात्मक विकासोम्मुखी एवं बालक, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होनी चाहिये अर्थात् शिक्षा की गत्यात्मकता का अर्थ है कि शिक्षा प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति की क्षमताओं एवं गुणों की अभिव्यक्ति के अवसर देकर उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. भारतीय मत के अनुसार शिक्षा के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिये ।
2. पाश्चात्य मत के अनुसार शिक्षा के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिये ।

7.3 शिक्षा प्रक्रिया के अंग

एड्मस शिक्षा को द्विमुखी प्रक्रिया (Biplolor Proce) मानते हैं जिसमें शिक्षक व बालक दो पक्ष हैं वहीं जॉन डीवी ने शिक्षा की त्रिध्रुवी प्रक्रिया को महत्व दिया है । शिक्षा का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है । शिक्षा ही वह साधन है जो मानव को प्राणी जगत के अन्य जीवों से पृथक करती है । शिक्षा द्वारा ही बालक का सर्वांगीण विकास होता है । टीपी. नन के अनुसार :- "शिक्षा व्यक्ति का ऐसा पूर्ण विकास है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी पूरी क्षमता से मानव जीवन के लिये अपनी मौलिक भूमिका प्रदान करते हैं । "

7.4 प्रबन्धन का अर्थ व क्षेत्र

प्रबन्ध से आशय पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये स्पष्ट उद्देश्यों का निर्माण कर निर्णय लेने व मानवीय क्रियाओं पर नियन्त्रण स्थापित करने की प्रक्रिया से है । प्रबन्ध औपचारिक रूप से संगठित समूह से कार्य करवाने व उसके साथ कार्य करने की कला है । प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का प्रभावी नियोजन व समन्वय किया जता है ।

1. **हेनरी फेयोल के अनुसार :-** "प्रबन्धन करने का अर्थ पूर्वानुमान एवं योजना बनाना, संगठित करना, निर्देशन देना, समन्वय करना एवं नियन्त्रण करना है ।"

2. **लूथर गुलिक तथा उर्विक के अनुसार:-** प्रबन्ध को पोस्टकोर्ब (Postcorb) के रूप में स्वीकार किया है, जिसका अर्थ योजना, संगठन करना, स्टाफ, नियुक्ति, निर्देशन, समन्वय करना, रिपोर्ट करना एवं वित्तीय प्रबन्ध करना है ।"

3. **एफ. डब्ल्यू टेलर के अनुसार :-** "प्रबन्ध यह जानने की कला है कि क्या करना है एवं उसके करने का सर्वोत्तम तरीका क्या है ।"

प्रबन्ध प्रक्रिया से तात्पर्य पूर्व निर्धारित विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये मानव बल व साधनों का समुचित आयोजन, संगठन. समन्वयन, निर्देशन, नियन्त्रण करने से हैं ।

प्रबन्ध की विशेषताऐं

निष्कर्षात्मक रूप में उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रबन्धन की व्याख्या का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि प्रबन्धन में निम्नलिखित विशेषताऐं प्रमुख रूप से उभर कर सामने आती हैं :-

1. प्रबन्ध से कार्य में सफलता

प्रबन्ध की सहायता से यह जानना सरल हो जाता है कि कहां से कार्य प्रारम्भ किया जाये, कौन से संसाधन जुटाये जायें, उनका सर्वोत्तम उपयोग कैसे हो तथा कार्यों को सफलता कैसे मिले ।

2. प्रबन्ध सोद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया

प्रबन्धन एक सोद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है । इसका उद्देश्य सरल, सुगम तथा प्रभावी रूप से किसी कार्य के पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करना है ।

3. समन्वित प्रक्रिया

संसाधनों का इस प्रकार समन्वय स्थापित करना जिससे अधिकतम परिणाम प्राप्त हो सकें । प्रबन्धकर्ता अपने ज्ञान, अनुभव, शिक्षा तथा दर्शन का प्रयोग कर कार्य सम्पादन कराते हैं ।

4. प्रबन्धन बहु आयामी प्रक्रिया

प्रबन्धन का कोई एक क्षेत्र नहीं होता है । प्रबन्धन में ही मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, विज्ञान तथा ऐसे ही अन्य विषयों के सिद्धान्तों का प्रयोग करना पड़ता है ।

5. **प्रबन्धन मापनीय है**

प्रबन्धन को उत्पाद तथा परिणामों के संदर्भ में मापा जा सकता है । कोई प्रबन्धन कितना सफल है तथा किसी प्रबन्धन के क्या परिणाम है ।

6. प्रबन्धन अदृश्य शक्ति है

प्रबन्धन भी उनमें से एक साधन है किन्तु यह एक ऐसा साधन है जिसे हम देख नहीं पाते हैं ।

प्रबन्धन का क्षेत्र

प्रबन्धन एक ऐसा विषय है जिसके किसी एक क्षेत्र का मापन नहीं किया जा सकता है अर्थात प्रबन्ध का क्षेत्र वृहद या विस्तृत होता है जिसमें प्रबन्धन शिक्षा, व्यापार, चिकित्सा, मनोविज्ञान जैसे प्रत्येक क्षेत्र को समाहित किया जाता है । शिक्षा के क्षेत्र में प्रबन्धन में निम्न बातों को सम्मिलित किया जाता है :-

1. संसाधनों का प्रबन्धन:-

शिक्षा जगत में विभिन्न स्तर के कर्मचारियों, प्रधानाध्यापक, अध्यापक, लिपिक, चपरासी आदि की व्यवस्था करनी होती है । संसाधनों की व्यवस्था के साथ ही साथ उनके अनुकूल कार्य-विभाजन तथा कार्य विवरण का कार्य भी प्रबन्धन के क्षेत्र में आता है ।

2. कार्य विवरण तथा निष्पादन :-

शैक्षिक प्रबन्धन के क्षेत्र में मानवीय संसाधनों के मध्य उनकी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार कार्य विवरण का दायित्व भी आता है । प्रबन्धन को ऐसी परिस्थितियों का भी

निर्माण करना होता है जिससे कर्मचारीगण अपने कार्यों का सफलतापूर्वक सम्पादन कर सकें ।

3. शिक्षण अधिगम का प्रबन्धन :-

शिक्षण अधिगम के प्रबन्धन का कार्य प्रमुख रूप से अध्यापक का होता है । शिक्षण अधिगम के प्रबन्धन के लिये वह योजना बनाता है, व्यवस्था करता है, अग्रेशित करता है तथा नियन्त्रण करता है ।

4. मूल्यांकन करना: -

प्रबन्धन मूल्यांकन के परिणामों के आधार पर अपने कार्य, सफलताओं तथा असफलताओं की समीक्षा करता है तथा भविष्य के लिये कार्य-योजना बनाता है ।

7.5 शैक्षिक प्रबन्ध

समाज में रहते हुये मानव को अनेक कार्यों को सम्पादित करना होता है । इन अनेक कार्यों को करने में मानव को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । वस्तुयें जुटाना, समस्या के हल ढूंढ़ने एवं समायोजन करने की इस प्रक्रिया को एक सटीक एवं संक्षिप्त शब्द में प्रबन्धन (Management) कहा जा सकता है ।

शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशासन में मुख्य रूप से तीन शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं - प्रबन्धन, प्रशासन एवं संगठन । प्राय: लोग प्रशासन, प्रबन्धन एवं संगठन को समानार्थक मानते हैं ।

'प्रबन्ध' शब्द अपने आप में एक व्यापक शब्द है । इसे व्यवसाय, उद्योग तथा शिक्षा इत्यादि में काम लिया जा सकता है । मानव जीवन सम्पूर्ण रूप से प्रबन्ध से सम्बन्धित है । मानव को दैनिक जीवन में अनेक कार्य सम्पन्न करने होते हैं । इन अनेक कार्यों को क्रमबद्ध एवं नियोजित तरीके से निश्चित समय एवं निश्चित परिस्थितियों में सम्पन्न करना होता है । प्रबन्ध शब्द को अलग-अलग समय में अलग-अलग संदर्भो एवं अर्थों में प्रयुक्त किया जाता रहा है । विकासशील देशों में आज भी प्रबन्ध को वाणिज्यिक एवं वित्तीय संदर्भो एवं क्षेत्रों मेंही प्रयुक्त किया जाता है।

7.6 शैक्षिक प्रबन्ध का अर्थ व क्षेत्र

शिक्षा के क्षेत्र में जब से तकनीकी का प्रवेश हुआ है तब से शिक्षा तथा शिक्षण के क्षेत्र में प्रबन्धन का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है । फलत: प्रबन्धन में अब शिक्षण से सम्बन्धित कार्यों तथा क्रियाओं को भी सम्मिलित किया जाने लगा है ।

स्कॉट के अनुसार :- विवादों को न्यूनतम करना (To minimize the conflict) ही प्रबन्धन का अन्तिम उद्देश्य है । प्रबन्धन के द्वारा नियोजन का कार्य किया जाता है ।

"प्रबन्धन" में केवल अधिकारत्व ही शामिल नहीं है अपितु इसमें वैज्ञानिक चिन्तन, व्यवस्थापन, दिशा-निर्देशन तथा नियन्त्रण आदि भी शामिल होते हैं ।

जे.बी.सीयर्स के अनुसार :- "शैक्षिक प्रबन्ध एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध ऐसी व्यवस्था करने से है जिसमें सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम सफलतापूर्वक व्यवहारिक रूप में सम्पन्न हो सके ।

("Education management is the process which concerns with making arrangement so that the purpose of the entire educational programme may be achieved practically)

जेडी.मुने के अनुसार :- "सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रत्येक मानवीय संस्था को ही शैक्षिक प्रबन्ध कहा जा सकता है ।

("Educational management is in the form of every human association for the attainment of common purpose")

शैक्षिक प्रबन्ध के कार्य (Functions of Educational Management)

- Planning नियोजन
- Organising संगठन
- Directing निर्देशन
- Controlling नियंत्रक
- Staffing नियुक्ति करता

शैक्षिक प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य प्रतिपादित किये जाते हैं :-

1. नियोजन

निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु पूर्व में ही योजना का निर्धारण आवश्यक है । इसके अन्तर्गत पूर्व में मानसिक चिन्तन किया जाता है । तत्पश्चात् कार्यक्रम बनाया जाता है, तदनुसार कार्य को व्यवस्थित तरीके से सम्पन्न किया जाता है । शैक्षिक प्रबन्धन की आधुनिक अवधारणा के अनुसार नियोजन एक सहभागिता की प्रक्रिया है जिसमें भिन्न-भिन्न स्तरों के कार्यकर्ता सम्मिलित होते हैं ।

2. संगठन

प्रबन्धक द्वारा संस्था में ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाता है कि व्यक्तियों में पारस्परिक सम्बन्धों का विकास हो सके और वे संस्था के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मिल-जुलकर कार्य किया जा सके ।

3. निर्देशन

निर्देशन प्रबन्धन का वह कार्य है जो निरन्तर सम्पन्न किया जाता है । निर्देशन उच्चाधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारी या कर्मचारी का किया जाता है । निर्देशन में मुख्य रूप से तीन क्रियाऐं सम्मिलित होती हैं

1) आदेश या निर्देश देना ।
2) अधीनस्थ कर्मचारियों को काम के सही तरीके बताना ।
3) कार्य का मूल्यांकन करना ।

4. नियुक्ति करना

प्रबन्धन अपने निर्धारित उद्देश्यानुसार योग्य, कुशल एवं अनुभवी कार्यकर्ताओं का चयन करता है । कार्यकर्ताओं की नियुक्ति सद्भावना और ईमानदारी से की जानी चाहिये ताकि सही कार्य के लिये सही व्यक्ति नियुक्त किया जा सके ।

5. समन्वय

समन्वय के माध्यम से संस्था में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के हित तथा लक्ष्य संस्था के हितों एवं लक्ष्यों में एकरूप हो जाते हैं । एक उपक्रम में बहुत से व्यक्ति कार्य करते हैं । इनकी प्राप्ति तभी हो सकती है जबकि वे सभी मिलकर एक साथ प्रयत्न करें ।

6. नियन्त्रण

नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्यकर्ताओं के उत्तरदायित्वों, मापदण्ड के अनुसार कार्य की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है । यदि निर्धारित मापदण्ड के अनुसार कार्य नहीं हो पाया है तो उसकी सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकती है ।

7. अभिप्रेरणा

अभिप्रेरित करने वाले तत्व हैं - उचित पारिश्रमिक, पदोन्नति एवं विकास के अवसर, रोजगार की सुरक्षा, उचित व्यवहार, कार्य करने की उपयुक्त दशायें, कार्य की सराहना, सम्मान, कार्यकताओं को उचित सुविधाऐं उपलब्ध करवाना, प्रेरणाऐं इत्यादि ।

8. एकीकरण

कार्यकर्ताओं को संस्था की इन नीतियों, उद्देश्यों तथा योजनाओं से परिचित करवाना, कार्यकर्ताओं कई समस्याओं एवं सुझावों पर विचार करना, स्वेच्छा से कार्य करने की भावना जाग्रत करना, कार्य करने के लिये सहयोगपूर्ण, मैत्रीपूर्ण तथा अच्छे वातावरण का निर्माण करना तथा कार्यकर्ताओं को स्वयं के विकास के लिये प्रोत्साहन देना आदि कार्य एकीकरण के अन्तर्गत आते हैं।

9. सम्प्रेषण

सम्प्रेषण का अर्थ है - दो अथवा दो अधिक व्यक्तियों के मध्य तथ्यों, विचारों, अनुमानों या संवेगों के परस्पर आदान-प्रदान से है । प्रबन्धकीय कार्य की कुशलता कुशल सम्प्रेषण पर निर्भर करती है । सम्प्रेषण प्रबन्ध को क्रियात्मक करने का एक साधन है, संचार के माध्यम से ही एक प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को अपनी योजनायें समझाता तथा बताता है तथा उस सम्बन्ध में हुई समस्याओं का हल बताता है ।

10. निर्णय लेना

प्रत्येक उपक्रम चाहे उसका आकार छोटा हो या बडा, सभी में प्रबन्ध को निर्णय लेने होते हैं । इसके अन्तर्गत अनेक विकल्पों के मध्य से किसी एक सही विकल्प का चयन किया जाता है ।

11. नवाचार

नवाचार प्रबन्धन का वह महत्वपूर्ण कार्य है जो केवल नवीन एवं सुधरे हुये उत्पादों या नई तकनीक के प्रयोग तक सीमित नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत नवीन कार्य पद्धतियाँ भी सम्मिलित हैं ।

12. मूल्यांकन

प्रबन्ध द्वारा निर्धारित किये गये उद्देश्यों की पूर्ति की मात्रा का आंकलन करने के लिये, कार्य की विविधता जांचने के लिये, कार्य की दिशा एवं गति के निर्धारण के लिये मूल्यांकन आवश्यक है ।

शैक्षिक प्रबन्ध के सिद्धान्त

शैक्षिक प्रबन्ध के आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में एक कुशल प्रबन्धक को प्रशिक्षण की अनिवार्यत: आवश्यकता होती है ।

1) कार्य का विभाजन

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धक सर्वप्रथम यह पता लगाता है कि कौनसा व्यक्ति किस कार्य में योग्य एवं दक्ष है । तत्पश्चात् उसे प्रबन्धक कार्य का आवंटन करता है ।

2) आदेश की एकता

आदेश की एकता से तात्पर्य है किसी कार्य विशेष को करने के लिये किसी एक समय में एक ही अधिकारी द्वारा आदेश प्रदान किया जाये । जब कार्यकर्ता किसी एक ही अधिकारी के नेतृत्व में कार्य करते हैं तो उसे आदेश की एकता कहते हैं ।

3) समय का ज्ञान

प्रबन्धक को कार्य की प्रगति के लिये समय का ज्ञान होना आवश्यक है । प्रबन्धक को समय सीमा के ज्ञान के पश्चात् ही कार्य को कार्यकर्ताओं के मध्य आवंटित करना चाहिये ।

4) नियोजन का सिद्धान्त

किसी भी कार्य को सफल बनाने के लिये उसे योजनाबद्ध तरीके से करना अनिवार्य है । नियोजन करते समय उपलब्धियों उपलब्ध साधनों एवं भावी परिस्थितियों का पूरा ध्यान रखना चाहिये ।

5) निर्देशन की एकता

प्रबन्धन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक समूह का संगठन एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिये । इसके लिये कार्य योजना भी एक ही होनी चाहिये ।

6) पहल का सिद्धान्त

पहल के सिद्धान्त का अर्थ है कार्यकर्ताओं तथा अधिकारियों को किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने और उसकी क्रियान्विति करने की स्वतन्त्रता देना ।

7) केन्द्रीयकरण का सिद्धान्त

प्रबन्धक को प्रबन्ध के कुछ अधिकारों व शक्तियों को अपने ही हाथ में रखना चाहिये किन्तु यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि वह विद्यार्थियों को अधिनायकवादी ना लगे।

8) समन्वयन का सिद्धान्त

संस्था के विकास में सभी कार्यकर्ताओं एवं श्रमिकों व विद्यार्थियों में समन्वय अत्यन्त जरूरी है ।

शैक्षिक प्रबन्ध के मूल तत्व

शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हुये प्रबन्धकों को वही कार्य करने होते हैं जो अन्य व्यावसायिक संगठनों को करने होते हैं क्योंकि इसमें भी मानवीय सम्बन्ध और संस्था आदि का उल्लेख भी आवश्यक है -

1) निर्णय लेना

2) समस्या समाधान

3) मानवीय सम्बन्ध

4) संचार

7.7 शैक्षिक प्रबन्ध के उपागम

प्रबन्ध के सिद्धान्तों या उपागम की प्रकृति मूलत: अस्थायी, विकासशील, लचीली तथा अल्पकालिक है । प्रबन्ध के विभिन्न मत उपागमों को स्पष्ट किया है :-

1) वैज्ञानिक प्रबन्ध उपागम

प्रबन्ध का मुख्य लक्ष्य अधिकतम कार्य कुशलता तथा सम्पन्नता का स्तर प्राप्त करना होता है । अत: वैज्ञानिक विधियों, उपकरणों तथा सिद्धान्तों को अपनाना चाहिये जो लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रभावी योगदान कर सके ।

पीटर ड्रकर के अनुसार:- "वैज्ञानिक उपागम का अर्थ कार्य का संगठित अध्ययन, कार्य का सरलतम भागों में विश्लेषण तथा प्रत्येक भाग व्यक्तियों द्वारा निष्पादन करने हेतु व्यवस्थित सुधार करने से है ।"

विशेषताऐं:- प्रबन्ध प्रक्रिया एक विज्ञान है, प्रबन्ध में तथ्यों तथा सिद्धान्तों पर आधारित वैज्ञानिक विधियों तथा कार्य प्रक्रिया पर बल दिया जाता है ।

2) मानवीय सम्बन्ध उपागम

मानवीय सम्बन्ध उपागम का केन्द्रीय बिन्दु मानव व्यवहार है । मानवीय सम्बन्धों का प्रशासनिक कुशलता तथा संगठनात्मक गतिशीलता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । प्रत्येक कार्यकर्ता को उसके अच्छे कार्य के प्रति संतोष एवं संतुष्टि की अनुभूति कराई जानी आवश्यक है ।

विशेषताऐं:-

1 इस उपागम में प्रत्येक मनुष्य एक मशीन नहीं बल्कि सजीव, संवेदनशील तथा अपने विचारों से युक्त इकाई है जो समूह के नियमों से प्रभावित होता है ।

2 यह गतिशील दृष्टिकोण है जिसमें मानवीय तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है ।

3 यह उपागम मानव समूहों को सकारात्मक मानक है ।

4 यह उपागम व्यक्तियों की संतुष्टि पर अधिक बल देता है ।

3) व्यवहारवादी उपागम

मानव सम्बन्ध उपागम व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर बल देता है जबकि व्यवहारवादी उपागम मानव तथा संगठन दोनों की आवश्यकताओं पर बल देता है । व्यवहारवाद का प्रारम्भ 1930 में हुआ । व्यवहारवाद एक वैज्ञानिक पद्धति है क्योंकि इसमें अनुभव,

व्यवहार तथा मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणाओं, सामाजिक तथा मनोशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रयोग होता है ।

विषेशताऐं:-

1. इस उपागम में ली गई प्रविधि विश्वसनीय, प्रमाणिक तथा प्रभावी होती है ।
2. यह उपागम प्रबन्धकीय समस्याऐं हल करने में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाता है ।
3. यह उपागम मानता है कि मानव व्यवहार को वातावरण के प्रभावों से अलग करके विचार नहीं किया जा सकता है ।
4. इस उपागम में मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं मानव विज्ञान के तत्वों का संयोजन है ।

4) प्रणाली उपागम

यह एक ऐसा उपागम है जो समस्त क्रियाओं को अलग-अलग विचार न करके सम्पूर्णता में देखता है । प्रणाली दो प्रकार की हो सकती है:- (1) बन्द (2) मुक्त । बन्द प्रणाली में बाह्य पर्यावरण प्रणाली के साथ परस्पर क्रिया नहीं करता है, वहां मुक्त प्रणाली में बाह्य पर्यावरण सम्बन्धित प्रणाली से परस्पर प्रभावित होता है तथा प्रभावित भी करता है ।

विशेषताऐं:-

1. शैक्षिक प्रबन्धन समाज के द्वारा सृजित किये गये वातावरण में कार्य करता है इसलिये इसे सामाजिक तन्त्र कहा जाता है ।
2. प्रणाली उपागम के द्वारा विद्यालय प्रणाली का सहज अनुमान लगाया जा सकता है ।
3. प्रबन्धक एक गतिशील व अनुकूलनशील उपक्रम है ।
4. इसमें प्रशासक एक समग्र प्रणाली के साथ कार्य करता है ।
5. यह उपागम एक अन्तर विषयक (Interdisciplinary approach) है ।

5) आकस्मिकता उपागम

इस उपागम की परिस्थितिगत, संयोजिक व प्रासंगिक आदि नामों से पुकारा जाता है । यह उपागम प्रचलित परिस्थितियों के अनुरूप ही उचित विचार व विचारधाराओं के सम्मिश्रण को अपनाने पर बल देता है।

विशेषताऐ: -

1. यह उपागम प्रबन्ध कार्य को परिस्थितिजन्य अथवा संयोगिक मानती है ।
2. यह प्रबन्धकीय निर्णयों को परिस्थितियों के संदर्भ में समायोजित करने पर जोर देती है ।
3. इसके अनुसार प्रधानाध्यापक वही व्यवहार करे जो परिस्थिति की मांग के अनुकूल होते हैं ।
4. प्रत्येक परिस्थिति के लिये प्रबन्धकीय व्यवस्था तत्कालिक नहीं है ।

5. यह उपागम एक व्यावहारिक दृष्टिकोण रखता है । यह सिद्धान्त व व्यवहार की खाई को कम करता है ।

7.8 शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन को डेमिंग)Deming) जूरन)Juran) तथा क्रोसबी (Chrosby) ने परिष्कृत रूप प्रदान किया है किन्तु सारगर्भित रूप में इसे समझाने का श्रेय सेलर (लसवत) को दिया जाता है ।

सैलर (Saylor), हिल (Hill), टैलर (Taylor), यूडोफ (Yudef) और बुष-विषनेक (Bush Wishnac) आदि द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन में निम्न बातें समाहित है:-

1) समस्या समाधान
2) प्रयोजन की सुसंगतता
3) सामूहिक लक्ष्य
4) निरन्तर उन्नयन
5) प्रत्येक की सहभागिता
6) बहु कार्यात्मक दल
7) ग्राहक सन्तुष्टि

शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन

शिक्षा में गुणात्मकता का अर्थ है - शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मकता से तात्पर्य है विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा-दर्शन, जो निरन्तर प्रगति एवं विकास प्रदान कर सके, जीवन पर्यन्त श्रेष्ठ इंसान व सुयोग्य नागरिक बना सके ।

रस्किन के अनुसार - "गुणात्मकता आकस्मिक नहीं होती अपितु यह बुद्धिमतापूर्ण किये गये प्रयासों का परिणाम होती है ।"

1) सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन (TQM) का दर्शन तथा एक प्रणाली है जो अपने ग्राहकों की उत्पाद प्रदान करती है।
2) इस प्रणाली से नियोक्ता को उत्कृष्ट सेवायें प्राप्त होती है ।
3) सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन सतत उन्नति पर ध्यान केन्द्रित करती है ।
4) यह प्रणाली सीखने के वातावरण का विकास करती है ।

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के सिद्धान्त

1) सहक्रियात्मक सम्बन्ध
2) निरन्तर प्रगति व स्व-मूल्यांकन सम्बन्ध
3) गतिशील प्रक्रिया प्रणाली
4) नेतृत्व

सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन के उद्देश्य

1) प्रतिस्पर्धात्मक जागरूकता विकसित करना ।

2) परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को संषोधित करते हुये उत्कृष्ट बनाना ।

3) सम्प्रेषण दक्षता का विकास करना ।

4) बहुआयामी परिवर्तित क्षेत्रों पर ध्यान देना तथा उन पर कार्य करना ।

5) अप्रत्याशित स्थलों व स्थितियों में परिणाम ढूंढ़ना ।

7.9 शैक्षिक प्रबन्ध में नेतृत्व शैलियाँ व निर्णयन

नेतृत्व अंग्रेजी के शब्द "लीडरशिप" शब्द से लिया गया है जो नेतृत्व प्रदान करें । नेतृत्व का सम्बन्ध समूह के प्रभाव से है, अत: नेतृत्व तभी माना जा सकता है जब समूह उसे स्वीकार करता है । नेतृत्व प्रारम्भ से ही शैक्षिक प्रबन्ध के अध्ययन की प्रमुख आवश्यकता रहा है । शिक्षा के प्रबन्धन में भी दिन प्रतिदिन नई चुनौतियां बढ़ती जा रही है ।

शैक्षिक प्रबन्धन में नेतृत्व की प्रमुख विशेषताऐं

1) यथार्थवादी दृष्टिकोण

2) आचरण का आदर्श रूप

3) सामूहिक लक्ष्य

4) गतिशील प्रक्रिया

5) सम्बन्धों की क्रियाशीलता

नेतृत्व की शैलियाँ

1) अधिकारिक नेतृत्व

2) जनतन्त्रीय नेतृत्व

3) अहस्तक्षेपीय नेतृत्व

वास्तविक रूप सेर नेतृत्व दो प्रकार का होता है :-

1. अधिकारिक
2. जनतन्त्रीय

1) अधिकारिक नेतृत्व शैली

प्रशासन कार्य की स्वयं अगुवाई करता है, नीति निर्धारण का कार्य स्वयं करता है, कार्य की प्रणाली स्वयं निर्दिष्ट करता है, भविष्य को नियन्त्रित करता है, पुरस्कार व दण्ड का निर्णय करता है तथा सहायकों का मूल्यांकन करता है तब उसे अधिकारिक प्रकार की नेतृत्व शैली कहा जाता है।

2) जनतन्त्रीय नेतृत्व

यह सबसे प्रशंसित नेतृत्व माना गया है । जनतन्त्रीय नेतृत्व परिस्थितिजन्य होता है । परिस्थिति के बदलने के साथ-साथ नेतृत्व बदल जाता है ।

3) अहस्तक्षेपीय नेतृत्व

वस्तुत: यह कोई नेतृत्व नहीं होता है । इस प्रकार के नेतृत्व में नेता बिना किसी हस्तक्षेप के कार्य करवाने पर बल देता है ।

अनुकरणकर्ताओ के आधार पर नेतृत्वशैली

लिपहम ने इस प्रकार की तीन शैलियों का वर्णन किया है:-

1. आदर्शमूलक सैद्धान्तिक
2. वैयक्तिक
3. मध्यमार्गी व्यवहार

1) आदर्शमूलक शैली

इसके अन्तर्गत नेता की भूमिका की अपेक्षाओं पर ध्यान दिया जाता है, व्यक्ति की अपेक्षाओं पर नहीं ।

2) व्यक्तिमूलक शैली

इस शैली के अन्तर्गत व्यक्तिगत अपेक्षाओं पर ध्यान दिया जाता है । इस शैली में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वास्तविक भूमिका का ज्ञान होना आवश्यक है ।

3) मध्यमार्गी व्यवहार शैली

इस शैली के अनुसार जहां एक ओर व्यक्तिगत अपेक्षाओं पर ध्यान दिया जाता है वहीं संगठन की अपेक्षाओं का भी ध्यान रखा जाता है ।

निर्णयन: निर्णयन आधुनिक प्रबन्धन का आवश्यक अंग है । यह निर्णय की गुणवत्ता ही है जो किसी संगठन को निर्मित या नष्ट करती है । जब व्यक्ति के सामने कई विकल्प हों और वह किसी एक को अपने अनुसार चुनाव करें, उसे ही निर्णय कहते हैं ।

प्रबन्धक जो कुछ भी करता है वह निर्णयन के द्वारा ही करता है । हरबर्ट साइमन के अनुसार - प्रबन्ध एवं निर्णयन एक दूसरे के पर्यायवाची हैं । वस्तुत: प्रबन्ध का महत्वपूर्ण कार्य निर्णयन है जिसमें वैकल्पिक समाधानों में से सर्वश्रेष्ठ का चुनाव किया जाता है ।

निर्णयन की विशेषताऐं

- संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति ।
- वैयक्तिक व सामूहिक दोनों प्रकार ।
- सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन ।
- निर्णयन एक बौद्धिक प्रक्रिया व मानवीय प्रक्रिया है ।
- निर्णयन मूल्यांकन व विश्लेषण पर आधारित है ।
- निश्चयात्मक स्थिति को जन्म देता है ।
- मानदण्डों व आधारों पर आधारित ।
- वास्तविक स्थिति के स्वरूप

7.10 शैक्षिक प्रबन्धन में समन्वय

समन्वय प्रबन्ध का प्रमुख आधार है । बिना प्रबन्ध के समन्वय की प्रगति संदेहास्पद ही रहती है। अत: शैक्षिक प्रबन्ध के समन्वय के अभाव में व्यवस्थित प्रगति नहीं कर सकता । शैक्षिक प्रबन्ध से जुड़े सभी व्यक्ति अपने लक्ष्यों व उद्देश्यों की पूर्ति के लिये समन्वय का आधार लेते हैं ।

पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये तथा व्यक्तियों के प्रयासों में सामन्जस्य स्थापित करने के लिये समन्वय आवश्यक है ।

पीयरसन एवं प्लोकेन के अनुसार - "समन्वय उच्च प्रबन्ध का एक अविच्छिन्न कार्य है ताकि लक्ष्य प्राप्ति की जा सके ।"

(Co-ordination is the distinct task of top management to accomplish the desired result)

क्रून्ट्ज तथा डोनल के अनुसार - "समन्वय समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रबन्ध का सार है ।"

(Co-ordination is the essence of management for the accomplishment of group goal)

हेनरी फेयोल के अनुसार - "एक उपक्रम के कार्य संचालन को सुविधाजनक एवं सफल बनाने के लिये उसकी समस्त क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करना ही समन्वय है ।""

(Co-ordination is to harmonize all the activities of a concern in order to facilitate its working and success)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर समन्वय के अर्थ को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. समन्वय प्रबन्ध के उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक है ।
2. समन्वय उच्च प्रबन्ध का अविभाज्य अंग है ।
3. समन्वय लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है ।
4. यह गतिशील निरन्तर प्रक्रिया है ।
5. समन्वय एक सामूहिक प्रयास है ।

अच्छे समन्वय के लिये विविध स्तरों का भी निर्माण आवश्यक है । ये स्तर संगठन के विस्तार के साथ-साथ बढ़ते जाते हैं । समन्वयकर्ता सदैव संगठन में सदस्यों में स्फूर्ति व ऊर्जा पैदा करता रहता है ।

शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय के क्षेत्र

1. कार्मिक
2. वित्त
3. पाठ्यचर्या
4. जन सम्बन्ध
5. भौतिक सुविधाऐं
6. कानूनी संरचना
7. विद्यार्थी

1) कार्मिक

शैक्षिक क्रियाओं के समन्वयात्मक परिचालन के लिये उपयुक्त मानवशक्ति का मिलना एवं उसको कार्य में लगाना आवश्यक है । प्रबन्धन में कार्मिक वर्ग की मुख्य भूमिका है।

2) वित्त

वित्त प्रबन्धन का मुख्य क्षेत्र है जिसमें आय एवं व्यय की समस्याओं तथा उनका लेखा-जोखा शामिल है ।

3) पाठ्यचर्या

शैक्षिक प्रशासन का कार्य पाठ्यचर्या निर्माण एवं उनके दिन प्रतिदिन के विकास से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करना भी है ।

4) जनसम्बन्ध

शैक्षिक प्रशासन का कार्य प्रत्येक को उद्योग की सफलता में अपना योगदान देने के योग्य बनाना है इसलिये प्रभावशाली जनसम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक है ।

5) भौतिक सुविधायें

समस्त भौतिक सुविधाऐं जैसे विद्यालय, भवन तथा अन्य सामग्री प्रदान करने सम्बन्धी कार्य इसके अन्तर्गत आते हैं ।

6) कानूनी संरचना

इसका तात्पर्य उन कानूनों की पारित करने से है जिनके द्वारा शिक्षा के अभिकरणों तथा उनके प्रकारों का निर्धारण किया जा सके ।

7) विद्यार्थी

प्रबन्धन के अन्तर्गत विद्यार्थियों के उन्नयन एवं अनुशासन सम्बन्धी नियमों का निर्धारण किया जाता है ।

7.11 शैक्षिक प्रबन्धन में सम्प्रेषण

सम्प्रेषण दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों, सूचनाओं, भावनाओं आदि का विनिमय और उनकी समझ की प्रक्रिया है । सम्प्रेषण में व्यक्ति परस्पर सामान्य समझ स्थापित करने व उसके आदान-प्रदान करने का प्रयास करते हैं अर्थात सम्प्रेषण में अर्थ का हस्तान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की समझ के रूप में होता है ।

7.11.1 सम्प्रेषण प्रक्रिया:

सम्प्रेषण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति सूचना तथा अर्थ का विनिमय करते हैं । यह एक द्विमार्गी प्रक्रिया है ।

1) संवाद

सम्प्रेषण में प्रेषक के मस्तिष्क के विचार मुख्य हैं । प्रेषक के पास एक विचार होता है जिसे वह ग्राहक (Reciever) तक भेजना चाहता है ।

2) संकेतन

प्रेषक अपने विचार या भाव को संकेतों की सहायता से संदेश के रूप में तैयार करता है।

3) प्रेषण

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत संदेश ग्राही तक प्रेषित होता है । इस हेतु लिखित, मौखिक, सांकेतिक तथा दृश्य-श्रव्य माध्यमों को अपनाया जा सकता है ।

4) विसंकेतन

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत ग्राही स्रोत द्वारा सम्प्रेषित संदेश का अर्थ निकालकर ग्रहण करता है ।

5) प्राप्तकर्ता

ग्राहक वह समूह अथवा व्यक्ति संस्था है जिसके पास प्रेषित संदेश पहुंचता है ।

6) पृष्ठ-पोषण

पृष्ठ पोषण मौखिक लिखित या अशाब्दिक हो सकता है ।

7) शोर या बाधा

जो कुछ भी सम्प्रेषण प्रक्रिया को बाधित करता है, जिससे संदेश विरूपित या विमंदित (Destort or Slow) हो जाता है, शोर या बाधा कहलाता है ।

7.11.2 प्रभावी सम्प्रेषण के सिद्धान्त:

प्रबन्धक की सफलता उसके प्रभावी सम्प्रेषण पर निर्भर करती है । प्रभावी सम्प्रेषण के लिये निम्न सिद्धान्तों को ध्यान रखना चाहिये:-

1. स्पष्टता
2. उचित भाषा
3. ग्राही को जानना
4. माध्यम का उचित चयन
5. सम्प्रेषण की पूर्णता
6. उद्देश्यों के अनुरूप
7. प्रशिक्षण
8. पृष्ठ पोषण

7.11.3 सम्प्रेषण के प्रकार

सम्प्रेषण औपचारिक व अनौपचारिक भी हो सकता है व लिखित, मौखिक तथा अशाब्दिक रूप में भी हो सकता है । मोटे तौर पर हम सम्प्रेषण को निम्न भागों में बांट सकते हैं :-

1) **औपचारिक सम्प्रेषण:** सम्प्रेषण औपचारिक व अनौपचारिक दोनों हो सकता है परन्तु संस्थाओं में अधिकांशत: औपचारिक सम्प्रेषण ही होता है ।

औपचारिक सम्प्रेषण की विशेषताऐं

1. प्रभावी अनुशासन और नियन्त्रण
2. प्रभावी सूचनाओं की पहल
3. निश्चित संरचना पर आधारित
4. आदेश की एकता का पालन

2) **अनौपचारिक सम्प्रेषण:** जब प्रेषक और ग्राहक के मध्य अनौपचारिक सम्बन्ध होते हैं तब उनके मध्य संवादों के आदान-प्रदान को अनौपचारिक सम्प्रेषण कहते हैं । अनौपचारिक सम्प्रेषण के साथ मिलकर संस्था प्रधान व कार्मिक सूचना प्रणाली निर्मित करते हैं ।

अनौपचारिक सम्प्रेषण की विशेषताऐं

1. नवाचारों को प्रोत्साहन
2. सहयोग एवं मित्रवत् भावों का विकास
3. प्रतिक्रिया का ज्ञान

4. सम्प्रेषण का शीघ्र, सशक्त व उद्देश्यपूर्ण माध्यम

3) मौखिक सम्प्रेषण

यह सम्प्रेषण सर्वाधिक प्रचलित सम्प्रेषण है । इसमें सूचनादाता और प्राप्तकर्ता आमने-सामने होते हैं । मौखिक सम्प्रेषण में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, विचार विमर्श, सम्मेलन, सभाऐं, मीटिंग, रेडियो, टेलीफोन आदि ।

मौखिक सम्प्रेषण की विशेषताऐं

1. व्यक्तिगत सम्बन्ध की भावना का विकास
2. समय, श्रम एवं धन की बचत
3. लचीलेपन के अवसर
4. महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर जोर सम्भव

4) लिखित सम्प्रेषण

लिखित सम्प्रेषण का अर्थ है किसी संवाद को लिखित रूप में प्रेषित करना । लिखित सम्प्रेषण पत्र, पेम्पलेट, बुकलेट्स, निर्देश, अखबार, पोस्टर, फार्म, बुलेटिन, मेमोरेंडम आदि के रूप में हो सकता है ।

लिखित सम्प्रेषण की विशेषताऐं

1. भविष्य के लिये उपयोगी
2. सामूहिक सूचना में सहायक
3. विस्तृत एवं जटिल सूचनाओं के लिये उपयोगी
4. संदेश की अवहेलना करने वाले के प्रति कार्यवाही सम्भव

5) अशाब्दिक सम्प्रेषण

इस सम्प्रेषण में संवेगात्मक व्यवहार तथा भावात्मक अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने का प्रयत्न किया जाता है । यह शाब्दिक संकेतों (आह / वाह / ओह आदि) मुद्राओं और शारीरिक संचालन द्वारा व्यक्त किया जाता है ।

किसी संदेश की शाब्दिक विषयवस्तु से अधिक प्रभाव उसकी अशाब्दिक विषयवस्तु का पड़ता है ।

शैक्षिक सम्प्रेषण में कक्षा कक्ष सम्प्रेषण व स्टाफ सम्प्रेषण दोनों को व्यवस्थित करने का प्रयास किया जाता है । विद्यालय प्रबन्धन में इन दोनों स्तर पर सम्प्रेषण जितना ज्यादा प्रभावी होगा, शैक्षिक आयोजन करना उतना ही सुगम व सरल होगा ।

7.12 शैक्षिक प्रबन्धन व समय प्रबन्धन

प्रबन्धन मनुष्य की सभी क्रियाओं में अंतर्व्याप्त होता है, चाहे वे क्रियाऐं किसी भी संगठन से सम्बन्धित क्यों न हों । समय प्रबन्धन का प्रबन्धन के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्व है क्योंकि किसी भी कार्य का नियोजन उत्पादन, सन्तुष्टि एवं कल्याण उचित समय सारणी से ही यथा समय किया जा सकता है । समय प्रबन्धन को समय नियोजन भी कहा जाता है ।

डेविड एलन ने समय प्रबन्धन में कार्य प्रबन्धन को प्रमुखता प्रदान की है । अपने समय का सदुपयोग करने के लिये व्यक्ति जो भी क्रियाकलाप करता है, वह समय प्रबन्धन

कहलाता है । सारांशत: व्यक्ति किसी भी दिये गये समय में जो क्रियाऐं करता है, उन क्रियाओं को करने के लिये निर्णय लेता है और उसके लिये जो समय व्यतीत होता है, वही समय प्रबन्धन कहलाता है ।

समय प्रबन्धन एक संसाधन है जो धन, उत्पादन क्षमता, गुणात्मकता और नवाचार के समकक्ष होता है ।

समय प्रबन्ध के सिद्धान्त

1. निर्णय का सिद्धान्त
2. क्रियान्वयन का सिद्धान्त
3. पूर्णतावाद का सिद्धान्त
4. श्रेष्ठतम उपयोग का सिद्धान्त

समय प्रबन्धन की पद्धति

स्टीफन आर कॉवि (Stiphen R. Kavi) तथा उनके साथियों ने समय प्रबंधन को, सैंकड़ों विधियों में से चार श्रेणियों में विभाजित किया है

1) याद दिलाना

इस पद्धति के अन्तर्गत व्यक्ति को कार्य कब समाप्त करना है, इसे याद दिलाया जाये।

2) योजना की तैयारी

इस पद्धति में कार्यों की योजना बनाना तथा लक्ष्य प्राप्ति के परिप्रेक्ष्य में कौन-सा कार्य कब करना है ।

3) व्यक्तिगत योजना व प्राथमिकता नियन्त्रण

इस पद्धति में व्यक्तिगत रूप से कौन से कार्य करने हैं, प्राथमिकता के आधार पर कौनसे कार्य पहले करने है तथा उन पर नियन्त्रण भी कैसे रखना है ।

4) कार्य कुशलता एवं अतिरिक्त सक्रियता

इस पद्धति का उद्देश्य व्यक्ति को कार्यकुशल तथा सक्रिय बनाना होता है । समय का सदुपयोग ही समय प्रबन्धन है, जो एक डायरी या लॉग बुक बनाकर किया जा सकता है । एक अल्प समय प्रबन्धक अपने साथ-साथ दूसरों का समय भी नष्ट नहीं करता ।

7.13 शैक्षिक प्रबन्धन के संवैधानिक प्रावधान

हमारे संविधान निर्माताओं ने जहां केन्द्र को नेतृत्व का अधिकार दिया है, वहीं राज्यों का उनकी आवश्यकताओं के अनुसार पूर्ण स्वायत्तता भी दी । भारतीय संविधान में तीन सूचियां बनाई गई है जिनके अनुसार उनको कानून बनाने का अधिकार है । ये हैं - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची ।

संघ सूची:- संघ सूची में 96 विषयों पर संसद कानून बना सकती है जिसमें शिक्षा से सम्बन्धित 63,64,65,66 प्रविशिष्टिओं में शिक्षा से सम्बन्धित विषय है ।

राज्य सूची:- इस सूची में 66 विषयों पर राज्य सरकारों को कानून बनाने का अधिकार है । अनुसूची की 11वीं प्रविष्टि के आधार पर शिक्षा राज्य का विषय है ।

समवर्ती सूची:- समवर्ती सूची के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य दोनों के सम्मिलित अधिकार है : इसमें 47 विषय सम्मिलित हैं ।

7.14 शिक्षा में वित्तीय प्रबन्धन

वित्तीय प्रबन्धन, प्रबन्धन का महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र है जिसमें शिक्षा के वित्त सम्बन्धी सभी दायित्वों का निर्वाह शिक्षा के अन्य क्षेत्रों के सहयोग से किया जाता है । वित्तीय प्रबन्धन का सामान्य अर्थ वित्तीय आयोजन वित्त संकलन, सम्पत्ति प्रशासन तथा वित्त से सम्बन्धित विविध पक्षों पर निर्णय करने तथा वित्तीय नीति का निर्धारण करने से सम्बन्धित समस्त क्रियाओं की समुचित व्यवस्था करना है ।

वित्तीय प्रबन्धन की आवश्यकता

शिक्षा की सभी गतिविधियां वित्तीय प्रबन्धन से प्रभावित करती है -

- शिक्षा का विकास
- देश के आर्थिक विकास के लिये
- असमानताओं को दूर करने के लिये
- देश की विविधता बनाये रखने के लिये
- लक्ष्य प्राप्ति में सहायक
- शिक्षा की सफलता का आधार
- अनियमितताओं पर नियन्त्रण
- प्रबन्धन प्रक्रिया का प्रमुख अंग

7.15 मोनिटरिंग व निरीक्षण

शिक्षा व्यवस्था के प्रभावी एवं सफल संचालन हेतु निरीक्षण तथा मोनिटरिंग अत्यावश्यक है । इनका मुख्य उद्देश्य शैक्षिक क्रियाओं में सुधार करते हुये नियमों का पालन करवाते हुये कार्य को व्यवस्थित व सुचारू ढंग से सम्पन्न करना होता है । शैक्षिक निरीक्षण का तात्पर्य है कि प्रचलित व्यवस्था को ध्यानपूर्वक जांचना व उसमें अपेक्षित सुधार करना । शाब्दिक अर्थ के अनुसार विद्यालय कार्यों का निरीक्षण विद्यालयी निरीक्षण कहलाता है । विद्यालयी निरीक्षण का उद्देश्य अध्यापकों में उचित गुणों का विकास करना होता है व शिक्षकों व विद्यार्थियों की समस्याओं का निराकरण कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाना होता है ।

7.15.1 निरीक्षण के प्रकार

निरीक्षण को हम तीन प्रकारों में विभक्त कर सकते हैं

1. सुधारात्मक निरीक्षण

निरीक्षण की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत निरीक्षक निरीक्षण हेतु विद्यालय में आता है और वह विद्यालयी गतिविधियों, रिकॉर्ड व भौतिक व मानवीय संसाधनों का अवलोकन करके उनमें दोष ढूंढ़ने का प्रयास करता है जिसके आधार पर भविष्य में अपेक्षित सुधार किये जा सकें । प्रबन्ध के दृष्टिकोण से निरीक्षण का ये प्रकार उपयुक्त नहीं माना जाता है क्योंकि इसमें निरीक्षणकर्ता का दृष्टिकोण पूरी तरह से आलोचनात्मक होता है ।

2. निरोधात्मक निरीक्षण (Preventive Inspection)

निरीक्षण के इस प्रकार में निरीक्षणकर्ता अपने पर्याप्त अनुभवों व दूरदर्शिता के आधार पर आने वाली समस्याओं व उनके समाधान से संस्थाओं को पहले ही अवगत करा देता है ।

3. रचनात्मक निरीक्षण (Constructive Inspection)

निरीक्षण के इस प्रकार को प्रबन्ध की दृष्टि से उपयुक्ता माना जाता है जिसमें निरीक्षणकर्ता व शिक्षक दोनों मिलकर वास्तविक रूप से आने वाली समस्याओं के बारे में व उनके समाधान के बारे में विचार विमर्श करते हैं। शिक्षकों द्वारा की जाने वाली प्रत्येक सही क्रियाओं व नवाचारों को निरीक्षक सकारात्मक रूप से देखता है व अपने सुझाव प्रतिपुष्टि के रूप में देता है । अध्यापक द्वारा की गई प्रत्येक सही क्रिया को सकारात्मक पुर्नबल देता है जिससे उसमें कार्य के प्रति रूचि व आत्मविश्वास बढ़ता है ।

शैक्षिक निरीक्षण की विधियाँ:-

1. विद्यालय का निरीक्षण करना
2. अध्यापकों की बैठकें बुलाना
3. गुणात्मक सुधार हेतु विद्यालयों को नवाचारों से अवगत कराना ।
4. प्रदर्शन पाठों व गतिविधियों का आयोजन करवाना ।
5. विद्यालय का मूल्यांकन करवाना ।

शैक्षिक मोनिटरिंग का अर्थ :-

शैक्षिक मोनिटरिंग से आशय महज उन सूचनाओं के संकलन करने से है जो व्यक्ति को स्वयं को स्वयं की योजना के संदर्भ में उत्तर देने में सहायता करता है । इसके अन्तर्गत निरीक्षण सूचनाओं का संकलन करता है, सुनियोजित व संगठित करता है, सूचनाओं का संधारण करता है व संकलन कर उन पर विचार विमर्श भी करता है और जिसके आधार पर निम्न प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये वह प्रयास करता है :-

- क्या हम अपने उद्देश्यों के अनुरूप सही कार्य कर रहे हैं ?
- क्या हम उद्देश्यों के अनुरूप गुणवत्ता को भी प्रभावी ढंग से दृष्टिगत रख पा रहे हैं?
- क्या हम प्रगति के पथ पर वर्तमान व्यवस्थाओं को दृष्टिगत रखते हुये अग्रसर हो रहे हैं?

शैक्षिक मोनिटरिंग के घटक :-

शिक्षा तन्त्र को प्रभावी बनाने के लिये शैक्षिक मोनिटरिंग के घटक निम्न प्रकार हैं :-

1. शिक्षार्थियों के शैक्षिक निष्पादन के अन्तराष्ट्रीय/राष्ट्रीय मूल्यांकन में सहभागिता ।
2. शिक्षार्थियों के शैक्षिक निष्पादन के शैक्षिक प्रमापी के संदर्भ में राज्य स्तर पर व्यापक मूल्यांकन ।
3. शिक्षार्थियों के शैक्षिक निष्पादन के प्रमापों के संदर्भ में राष्ट्र स्तर के आधार पर प्रत्येक विद्यालय का तुलनात्मक मूल्यांकन ।
4. राष्ट्र स्तर व राज्य स्तर पर संयुक्त प्रतिवेदन तैयार करना ।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने हेतु शैक्षिक मोनिटरिंग व निरीक्षण व्यवस्था के चार मुख्य स्तम्भ हैं:-

अदा स्तर (Input Level) - मानव एवं भौतिक संसाधन, शिक्षा पर किया जाने वाला वित्तीय भार, शैक्षिक प्रावधान, संस्थान, पाठ्यक्रम, शैक्षिक भागीदारी

प्रक्रिया स्तर (Process Level) - विद्यालयी संस्कृति के अनुरूप अधिगम अभ्यास, अनुदेशन व अधिगम अवसर प्रदान करना, गुणात्मक दृढ़ता मूल्यांकन प्राप्त करना ।

प्रदा स्तर (Output Level) - विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक निष्पत्ति, रूचि, मूल्य, अभिवृत्ति, अभिरूचि, विद्यालयी गतिविधियां आदि के आधार पर विद्यालयी निष्पत्ति स्तर प्राप्त करना ।

मूल्यांकन स्तर (Evaluation Level) - जबावदेयता को बढ़ाना, उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना, समयानुसार मोनिटरिंग व निरीक्षण करना, राष्ट्र मूल्यांकन की भूमिका के अनुरूप मूल्यांकन करना ।

7.16 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत शैक्षिक प्रबन्ध का सम्प्रत्यय स्पष्ट किया गया है । शैक्षिक प्रबन्ध एक सोद्देश्य प्रक्रिया है । इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मानव द्वारा योजना निर्मित की जाती है एवं इस योजना को व्यवस्थित रूप से सम्पादित करने का प्रयास किया जाता है ।

शैक्षिक प्रबन्ध के मुख्य कार्य नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियुक्ति, समन्वय, नियन्त्रण, अभिप्रेरणा, एकीकरण, सम्प्रेषण, नवाचार, मूल्यांकन आदि ।

शिक्षा प्रबन्ध शिक्षा के व्यवस्थित संचालन एवं शिक्षा के लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति का महत्वपूर्ण आधार है ।

शैक्षिक प्रबन्ध में समन्वय एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है जो शिक्षा की प्रशासनिक समस्या के समाधान के विकल्प के रूप में तथा अन्य प्रबन्ध कार्यों के लिये प्रेरणा के रूप में शिक्षा प्रबन्ध को प्रभावित किये हुये हैं ।

अत: आज के युग में शिक्षा प्रबन्धन का कार्य मात्र ज्ञान या सूचनाओं का प्रबन्ध मात्र नहीं है वरन् उसे भावी उपयोगी नागरिक निर्माण के लिये तैयार करना है । शिक्षा प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अन्य लोगों के साथ मेल जोल का वातावरण निर्मित करते हुये शिक्षा संस्थान में निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न कार्यक्रमों का संगठन होता है ।

7.17 मूल्यांकन प्रश्न

1 शैक्षिक प्रबन्धन के अर्थ को स्पष्ट कीजिये ।
2 शैक्षिक प्रबन्धन के किन्ही दो सिद्धान्तों का नाम उल्लेख कीजिये ।
3 शिक्षा में सम्पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध को स्पष्ट कीजिये ।
4 शैक्षिक प्रबन्धन की किन्ही दो नेतृत्वशैलियों को स्पष्ट कीजिये ।
5 शैक्षिक प्रबन्धन में निर्णयन व समन्वय को स्पष्ट कीजिये ।
6 सम्प्रेषण शैक्षिक प्रबन्धन को किस प्रकार प्रभावित करता है ।
7 शैक्षिक प्रबन्धन के संवैधानिक प्रावधान व वित्तीय प्रबन्धन को स्पष्ट करें ।

7.18 संदर्भ ग्रन्थ

1 ओड लक्ष्मी लाल (2005) शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

2 जे.एस., राजपूत एवं ओमकार सिंह देवल (2001) विद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

3 सुखिया एस.पी. (2005) विद्यालयी प्रशासन एवं संगठन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

4 शर्मा जे.पी. 2002 शैक्षिक प्रबन्धन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

5 वर्मा जी.एस 2005 शैक्षिक प्रबन्ध, लॉयल बुक डिपो, मेरठ

इकाई - 8

शिक्षा और सूचना क्रान्ति

इकाई की संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 सूचना का अर्थ

8.3 शिक्षा में सूचना क्रान्ति के साधन

8.4 शिक्षा में सूचना क्रान्ति के नवाचार

8.5 मल्टीमीडिया का शिक्षा क्षेत्र में उपयोग

8.6 शिक्षा और सूचना क्रान्ति का भविष्य

8.7 शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की भूमिका

8.8 सारांश

8.9 मूल्यांकन प्रश्न

8.10 सन्दर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी -

- सूचना का समुचित अर्थ जान सकेगें ।
- शिक्षा में सूचना क्रान्ति के साधनों के बारे में जान सकेगें ।
- शिक्षा में सूचना क्रान्ति के नवाचारों को जान सकेगें ।
- शिक्षा में सूचना क्रान्ति के उपयोग की सम्भावनाओं का विश्लेषण कर सकेगें ।
- सूचना क्रान्ति के साधनों का यथासम्भव उपयोग कर सकेगें ।
- शिक्षा में सूचना क्रान्ति में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की भूमिका को जान सकेगें ।

8.1 प्रस्तावना

आज का युग सूचना और प्रौद्योगिकी व तकनीकी का युग है और शिक्षा जगत में भी इसका प्रयोग बढ़ता जा रहा है । इलेक्ट्रॉनिक मीडिया व मल्टीमीडिया के साधनों ने एक ओर जहाँ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया है । वहीं दूसरी ओर विश्व के सम्पूर्ण देशों के लिए वैश्विक शिक्षा की संकल्पना को साकार रूप देने में मदद की है वास्तव में आज भारतीय शिक्षा का प्रौद्योगिकी आधारित हो जाना वर्तमान समय की आवश्यकता बन गई है ।

परिवर्तन ही प्रकृति का शाश्वत नियम है । शिक्षा और समाज दोनों ही इस सार्वभौमिक नियम के प्रभाव से अछूते नहीं है । शिक्षा और समाज की अन्योन्याश्रितता सर्वविदित है । सामाजिक संदर्भो में शिक्षा दो प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करती है एक ओर जहां शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रभावशाली यन्त्र का कार्य करती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक

परिवर्तन करना इसके स्वभाव में समाहित है । नियमित एवं दुतगति से परिवर्तित सामाजिक परिवेश में शिक्षा का सामाजिक परिवर्तन की अनुगामिनी हो जाना वांछनीय हो जाता है । विद्यमानपरिवेश में सूचना प्रौद्योगिकी की महत्ता सहज ही अनुभूत होती है । प्राचीन काल में जो कल्पनाएं हुआ करती थी आज वे साकार रूप धारण कर चुकी है ।

सूचना तकनीकी विकास के लम्बे सफर के बाद आज हम इस मुकाम पर पहुंच गए है जहां सम्पूर्ण विश्व एक वैश्विक गांव में परिवर्तित हो गया है । दूरियां समीपता में परिवर्तित हो गयी है और आधुनिक संचार साधनों ने मानवीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान ले लिया है ।

वर्तमान में सूचना के अभाव में कोई भी कार्य संभव नहीं है । जीवन के विविध क्षेत्रों में सभी व्यक्तियों को सूचना एवं संचार साधनों की आवश्यकता महसूस होती है, उनके कार्य, निर्णय एवं नियोजन को सूचनाओं पर निर्भर रहना पड़ता है ।

8.2 सूचना का अर्थ

सूचना का सामान्य अर्थ किसी विषय, घटना या तथ्य की विषयवस्तु के बारे में जानकारी से है । सूचना यदि किसी तकनीकी विषय से जुड़ी हो तो उस समय उसका अर्थ उस विषय के तथ्यात्मक या गणितीय आंकड़ो से हो जाता है । सूचना एक ऐसा सम्प्रत्यय है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति आरम्भिक तौर पर समझता है । यह एक ऐसा रूपक है जिसे सरल भाषा में अभिव्यक्त किया जा सकता है ।

वर्स के अनुसार - सूचना वह है जो कि हमें बदलती है । और आंकड़े बन जाते है तथा उसमें अंतर्निहित तथ्य को मान्यता मिल जाती है । आकड़े सूचना में बदल जाते हैं जबकि उनमें अंतर्निहित तथ्य को बढावा देते है । मैं यह कैसे जान पाता हूँ कि मुझे सूचित किया गया है केवल इसलिए कि मैने अपनी स्थिति में परिवर्तन कर लिया है ।

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका की विज्ञान व भविष्य इयर बुक में सूचना को परिभाषित करते हुए लिखा गया है - सूचना तथ्य संपूर्ण भौतिक और मानसिक जगत में व्याप्त रहता है तथा इसकी विविधता इसकी एकात्मकता के सम्पूर्ण प्रयासों को विफल कर देती है ।

मारडिक और मनसन के अनुसार - सूचना एक चिहन या चिह्नों का समूह है जो कि व्यक्ति को सक्रिय बनाता है, यह आकड़ों से भिन्न है क्योंकि क्रिया के मूल उत्प्रेरक तत्व नहीं है वरन् यह तो चरित्रों या नमूनों के सूत्रधार मात्र होते है ।

डार्टन के अनुसार - सूचना को संप्रेषण से अलग करके नहीं देखा जा सकता यह दोनों एक सिक्के के दो पहलू है ।

ब्लोडिक और ब्लोडिक के अनुसार - सूचना के दो मुख्य आधार मानते है सम्प्रेक्षण और ज्ञान ।

8.3 शिक्षा में सूचना क्रान्ति के साधन

रेडियो

भारत में रेडियो का प्रसारण 1927 से प्रारंभ हुआ तथा 1957 में इसे आकाशवाणी नाम दे दिया गया । 80 के दशक में जब तक टेलीविजन का प्रसार गांवों तक नहीं हुआ था तब तक रेडियो एकमात्र जनसंचार माध्यम था ।

रेडियो के कार्यक्रम प्रसारणों के मध्य में कई बार अगले दिन आने वाले कार्यक्रमों की समय सूची बतायी जाती है । शिक्षा से जुड़े कई कार्यक्रम भी भारत सरकार के द्वारा बनाकर रेडियो पर प्रसारित किए जाते है इनमें तथ्यपरक, ज्ञानपरक वार्ताएँ, समसामयिक विषयों पर विशेषज्ञों से चर्चा आदि प्रसारित की जाती है जिनसे प्रत्येक उम्र के व्यक्ति को लाभ मिलता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि भारत के दूर-दराज के क्षेत्रों में प्रौढ़ शिक्षा व अनौपचारिक शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए रेडियो एक सशक्त माध्यम है ।

रेडियोविजन

इसका प्रयोग सर्वप्रथम गुजरात में 80 के दशक में प्रारंभ किया गया । इसमें रेडियो पर आने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों की सूची पहले से ही विद्यालयों को भेज दी जाती है तथा साथ ही उस कार्यक्रम के दौरान काम आने वाले उपकरणों, नक्शों, चित्र, चार्ट, मॉडल आदि सामग्री का प्रबंधन का भी निर्देश उस कार्यक्रम सूची के साथ भेजा जाता है ।

नियत दिन रेडियों को प्रसारित होने वाले कार्यक्रम के समय कक्षा में रखा जाता है । तथा साथ ही शिक्षक अपनी सभी शिक्षण सहायक सामग्री के साथ उपस्थित रहता है । सभी छात्रों को कार्यक्रम प्रारंभ होने से पहले ही व्यवस्थित बैठा दिया जाता है । जब कार्यक्रम प्रारंभ होता है और उद्घोषक बोलता है कि अब नक्शे में देखिए तो शिक्षक संकेतक से वह स्थान दिखाता है इस प्रकार अधिगम प्रक्रिया आगे बढ़ती है ।

टेपरिकॉर्डर

टेपरिकॉर्डर का प्रयोग शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षण को प्रभावी व रोचक बनाने में किया जाता है । शिक्षण प्रक्रिया में विशेषकर संगीत और भाषा शिक्षण का कार्य आसानी से किया जा सकता है । टेपरिकार्डर में रिकार्डिग एवं पुन: प्रसारित होने की क्षमता होती है जिससे यह किसी भी आवाज को संगीत को चाहे जब रिकार्ड कर पुन: उसे सुना सकता है । इसके अंदर चलने वाली कैसेट में सभी प्रकार के ध्वनि डाटा संग्रहित किए जाते है अत: किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम के ध्वनि प्रसारण को कैसेट के द्वारा रिकार्ड करके उन कैसेटों को विद्यालयों व शैक्षिक संगठनों के विद्यार्थियों के उपयोग हेतु भेजा जाता है । विद्यार्थी इसमें भाषा के शुद्ध उच्चारण का ज्ञान प्राप्त कर पुन: दोहराते है या संगीत के सुर-ताल का ज्ञान प्राप्त करते है । छात्रों में इस प्रकार ध्वनि और उच्चारण की गहरी समझ पैदा होती है ।

स्लाइड प्रोजेक्टर

स्लाइड्स का प्रयोग सामान्यत: विज्ञान शिक्षण में किया जाता है जहाँ पादप या जन्तु कोशिकाओं की लघु स्लाइड बनाकर उन्हें सूक्ष्मदर्शी पर देखा जाता है । इसी अवधारणा को आधार बनाकर स्लाइड प्रोजेक्टर का निर्माण किया गया है । स्लाइड एक कांच की पतली पट्टी होती है जिस पर सूक्ष्म चित्रांकन होता है । उसे विद्युत उपकरणों की सहायता से समतल स्थान पर प्रोजेक्ट किया जाता है तथा उसके साथ ही शिक्षक उन स्लाइड्स के सभी तथ्यों का बोलकर प्रस्तुतीकरण करता रहता है । इससे छात्रों को दृश्य द्रश्य दोनो माध्यमों का लाभ एक साथ मिलता है तथा अधिगम की प्रक्रिया अधिक सुरूचिपूर्ण तथा बोधगम्य होती है ।

ओवरहेड प्रोजेक्टर

यह एक लगभग पूर्ण स्वचालित प्रयुक्ति है जिसे भी विद्युत की सहायता से ही चलाया जाता है । यह स्लाइड प्रोजेक्टर से इस प्रकार भिन्न है कि इसमें स्लाइड प्रोजेक्टर की तरह कांच की स्लाइड का प्रयोग न करके ट्रांसपेरेंसीज का उपयोग किया जाता है ।

ओवरहेड प्रोजेक्टर में शिक्षक का संपूर्ण ध्यान छात्रों पर रहता है क्योंकि उसे ओवरहेड प्रोजेक्टर से प्रोजेक्ट हुए चित्र, नक्शे या लिखित सामग्री को मात्र समझाना होता है । बार-बार श्यामपट्ट की ओर मुँह करके कुछ भी लिखना नहीं होता । अत: वह संपूर्ण समय कक्षा की ओर ही देखता रहता है ।

स्लाइड प्रोजेक्टर से दूसरा अंतर यह है कि इसमें शिक्षक अपने हाथ से बनायी हुई सामग्री को बड़ा करके एक साथ दिखा सकता है, जबकि स्लाइड प्रोजेक्टर में स्लाइड्स अंकन सूक्ष्म होता है । अत: हाथ से बनायी सामग्री दिखाना संभव नहीं होता । शिक्षा के क्षेत्र में ओवरहैड प्रोजेक्टर अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहा है ।

फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर

फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर भी स्लाइड प्रोजेक्टर की भांति कार्य करता है । लेकिन स्लाइड प्रोजेक्टर के माध्यम से किसी एक प्रकरण को समझाना होता है तो बहुत सारी ग्लास स्लाइड्स तैयार करना होता है तथा साथ ही इन्हें अत्यधिक सावधानी के साथ रखना होता है ताकि ये टूटे नहीं । इस कारण ये बहुत अधिक दुष्कर कार्य हो जाता है ।

जबकि फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर के लिए किसी संबंधित प्रकरण से ली गयी सम्पूर्ण सामग्री को एक 35 mm चौड़ी तथा अप्रज्वलनशील करीबन 1 meter तक के एक टुकड़े पर बनाया जाता है । इसमें प्रकरण की गति के अनुसार ही सामग्री को एक ही बार में पहले व्यवस्थित किया जाता है फिर उसे स्थायी रूप दे दिया जाता है । यह भी पारदर्शी होती है तथा फोटोग्राफी से या हाथ से तैयार की जाती है । इसको आगे बढाने के साथ-साथ शिक्षक उस संबंधित सामग्री की व्याख्या भी करता जाता है छात्रों में भी उत्सुकता के साथ अधिगम होता है।

दूरदर्शन

रेडियो के अलावा टेलीविजन भी पिछले 30-40 वर्षों से हमारे देश में शिक्षा प्रणाली के विकास में काम आ रहा है । प्रथम बार 1961 में दिल्ली की स्कूलों के लिए टेलीविजन का प्रयोग किया गया था । बाद में बंबई तथा मद्रास में भी शिक्षा में टेलीविजन का प्रयोग हुआ ।

शैक्षिक दूरदर्शन

सर्वप्रथम अमेरिका के हॉर्वर्ड विश्व विद्यालय के हेराल्ड हब नाम के व्यक्ति ने दूरदर्शन को शिक्षा के लिए उपयोगी आधुनिक उपकरण बताने के लिए शैक्षिक उपकरण के रूप में इसका प्रयोग किया । तत्पश्चात संपूर्ण विश्व में दूरदर्शन का प्रयोग शैक्षिक निहितार्थों के लिए किया जाने लगा।

भारत में दूरदर्शन का आविर्भाव 15 अगस्त 1959 में नयी दिल्ली के एक व्यापार मेंले द्वारा हुआ इसके ठीक एक माह बाद 15 सितम्बर 1959 को भारत में दूरदर्शन सेवा का औपचारिक उद्घाटन हो गया ।

1 अप्रैल 1976 को टेलीविजन को ऑल इण्डिया रेडियो से अलग कर दिया गया और इसका नाम दूरदर्शन कर दिया गया जो कि सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के अन्तर्गत आता है । दूरदर्शन दृश्य श्रव्य साधन है जिससे शैक्षिक कार्यक्रम या प्रेरणास्पद कहानी तथा रूचिकर वार्ताएँ तथा अन्य रिपोर्ट आदि को जब प्रस्तुत किया जाता है तो छात्र या कोई भी व्यक्ति उसे रूचि लेकर देखता है इस प्रकार अधिगम प्रभावी होता है । 26 जनवरी 1966 से किसानों के लिए "कृषि दर्शन" प्रारंभ किया गया जो आज भी अनवरत चल रहा है ।

CCTV के माध्यम से संस्था प्रधान कक्षा में चल रही प्रत्येक अध्यापक छात्र गतिविधि पर ध्यान रख सकता है ।

उच्च शिक्षा टेलीविजन प्रोजेक्ट

15 अगस्त 1984 को देशव्यापक कक्षा के नाम से उच्च शिक्षा के संबंध में प्रारम्भ किया गया । इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार है । यह कार्यक्रम अध्यापकों, स्नातकों व शिक्षित जनता की शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करती है तथा साथ ही उन्हें नवीन ज्ञान से भी परिचित करवाता है ।

सन् 1975-76 में ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों के अधिकतम बच्चों को टेलीविजन कार्यक्रम से जोड़ा गया जिसमें अमरीकी सेटेलाइट मं1इ ATS-6 की सहायता ली गई थी । इससे राजस्थान, मध्य प्रदेश. आध प्रदेश, बिहार, कनार्टक, उड़ीसा के 20 जिलों के 2330 गांवो के बच्चों को लाभ हुआ । प्रतिदिन 20 मिनट का शैक्षिक कार्यक्रम प्रसारित किया जाता था । 1975 में दशहरे के अवकाश में बारह दिनों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को विज्ञान में प्रशिक्षित करने के लिए सेटेलाइट का प्रयोग किया गया । इस प्रशिक्षण से 24 हजार से भी अधिक शिक्षक लाभान्वित हुए । 1975 के ग्रीष्म अवकाश में इसी प्रकार का प्रशिक्षण, अन्य शिक्षकों को भी दिया गया । इसके प्रारंभ होने के बाद जयपुर, रायपुर और मुजफ़्फ़रपुर में स्थित ग्राउण्ड ट्रांसमीटरों की सहायता से कुछ विद्यालयों के लिए कार्यक्रम प्रसारित होते रहते है ।

उपग्रह संप्रेषण

इसे सैटेलाइट अनुदेशनात्मक टेलीविजन प्रयोग (SITE) कहा जाता है । इसका प्रारंभ 1 अगस्त 1975 को 1 वर्ष के लिए किया गया था । इसमें 3 प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रम प्रसारित किए गए :-

1. प्राथमिक तथा पूर्व प्राथमिक स्तर के बालकों के लिए
2. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए
3. आम जनता के लिए - कृषि, स्वास्थय आदि विषय

भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह (INSAT)

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों तक अनुदेशनात्मक टेलीविजन को और अधिक उपयोगी बनाने के लिए 30 अगस्त 1983 को इन्सेट 1B छोड़ा गया इसका मुख्य उद्देश्य था - भारत की ग्रामीण और पिछड़े वर्गों को राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल करके उन्हें विकास से जोड़ना तथा राष्ट्र के प्रति संवेगात्मक दृष्टि उत्पन्न करना ।

अप्रेल 1982 में भारतीय राष्ट्रीय सेटेलाइट (इन्सेट) की स्थापना हुई । इसकी सहायता से प्राथमिक शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए टेलीविजन का विस्तृत स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है दिन-प्रतिदिन नयी-नयी सूचना तकनीक आधारित इस प्रविधि से विद्यार्थियों की विविध क्षेत्रों में जानकारी को उन्नत किया जा रहा है ।

शैक्षिक टेलीविजन सेवा आंध्र प्रदेश और उड़ीसा से आरम्भ हुई है । बाद में महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश और बिहार में इसका विस्तार किया गया है ।

इन राज्यों के कुछ चुने हुए जिलों के विद्यालयों में भारत सरकार ने 6 हजार से अधिक टेलीविजन सेट उपलब्ध कराए है । इन प्रसारण क्षेत्रों के अन्तर्गत आने वाले अन्य विद्यालयों के लिए राज्य सरकारे अतिरिक्त सामुदायिक टेलीविजन का प्रबंध कर रही है ।

भारत में लगभग 190 टेलीविजन प्रसारण केन्द्र है । इनसे लगभग 75 प्रतिशत जनता इन प्रसारण कार्यक्रमों को देख सकती है । प्रत्येक राज्य के लिए सप्ताह में 5 दिन प्रात: 45 मिनट का कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है । उसमें 20-20 मिनट के दो कार्यक्रम है पहला 5-8 वर्ष के बच्चों के लिए और दूसरा 9-11 वर्ष के बच्चो के लिए ।

सप्ताह में एक दिन शनिवार को शिक्षकों के लिए भी कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। कॉलेज एवं विश्वविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों के लिए प्रतिदिन कार्यक्रम प्रसारित U.G.C. द्वारा किया जाता है ।

बालकों के शिक्षण एवं अधिगम में यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि बालक अपनी जितनी अधिक इन्द्रियों का प्रयोग अधिगम में करता है उतना ही ज्ञान, जो अर्जित किया जा रहा है वह स्थायी होगा । रेडियो के कर्णप्रिय होने के कारण बच्चों को भाषा और संगीत सीखने में विशेष सहायता मिलती है ।

टेलीविजन द्वारा बच्चों को ऐतिहासिक और कल्पना को नयी उडान देने वाले कार्यक्रमों से कहीं अधिक लाभ पहुंचाया जा सकता है ।

एड्युसैट

एजुकेशन सैटेलाइट 20 सितम्बर 2004 को श्री हरिकोटा से प्रक्षेपित विश्व का प्रथम शिक्षा आधारित उपग्रह है । यह एक संचार उपग्रह है जो भूरथानिक कक्षा में स्थापित है । इसका उद्देश्य कम लागत वाले शिक्षा कार्यक्रमों की सहायता से पिछड़े लोगों तक पहुँचाना है । इसके जरिये प्रसारित कार्यक्रम मुख्य रूप से स्कूलों, महाविद्यालयों और अन्य उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए है मुख्य रूप से यह अनौपचारिक शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा को बढ़ला देता है ।

एड्यूसेट के माध्यम से ही आधुनिक शिक्षा का वर्तमान स्वरूप संभव हुआ है । यह शैक्षिक प्रक्रिया व सूचना प्रौद्योगिकी का नवीनतम रूप है जिसके माध्यम से वर्चुअल कक्षाएं, डिमाण्ड बेस्ट वीडियो प्रोग्राम डाटाबेस एक्सेस, ऑनलाइन शिक्षण क्रिया, ऑनलाइन पुस्तकालय आदि शैक्षणिक क्रियाएँ संभव हुई है ।

8.4 शिक्षा में सूचना क्रान्ति के नवाचार

शिक्षा विभागों में कम्प्यूटरों का उपयोग बहुत बड़े पैमाने पर फैल चुका है । दरअसल शिक्षा प्रणाली के सुचारू रूप से कार्यरत रहने में अनेक ऐसे कार्य है जो अनवरत शुद्ध एवं यथा

समय चलते रहने चाहिए और जिनमें कम्प्यूटर का सहयोग उन्हें अधिक गतिशील एवं शुद्ध बना देता है।

शिक्षा क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग साधारण कार्यों से लेकर असाधारण कार्य जैसे अनुसंधान व शोध कर्मों का मूल्यांकन आदि कार्य ।

छात्रों के विकास में कम्प्यूटर बेहद सहायक सिद्ध होते है । छात्रों की तार्किक ज्ञान में दिन-प्रतिदिन वृद्धि का एक बड़ा योगदान इंटरनेट का भी है । कहने का अर्थ है कि आज छात्रों के व्यक्तित्व विकास, उनके तार्किक ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें कम्प्यूटर और उसके अनुप्रयोगों को सिखाया जाए । चूंकि कम्प्यूटर सूचनाओं के प्रसारण और उन्हें जमा रखने का सबसे बड़ा साधन है इसलिए कम्प्यूटर का उपयोग शिक्षा के विस्तार और अध्ययन अध्यापन को सरल बनाने के लिए सूचना तकनीकी और कम्प्यूटर का प्रयोग आवश्यक है ।

पुस्तकालय प्रबन्धन Library Management

पुस्तकालयों में कम्प्यूटर की भूमिका निम्नलिखित कार्यों के लिए जानी जाती है ।

1. पुस्तकों का विवरण दर्ज करना ।
2. पुस्तकालयों के सदस्यों का विवरण दर्ज करना ।
3. पुस्तकें प्रदान करना । Issueing
4. पुस्तकें जमा (Deposit) करना ।
5. खोई या फटी हुई पुस्तकों का रिकार्ड रखना ।
6. सदस्यों की सदस्यता राशि जमा रखना ।
7. इश्यू की गयी पुस्तकों का रिकार्ड देखना ।
8. विभिन्न विषयों, लेखकों, प्रकाशकों के आधार पर पुस्तकों की सूची तैयार करना ।

शिक्षा प्रबन्धन व शोध Education Management & Research

- शिक्षा मंत्रालय की विभिन्न योजनाओं का विवरण दर्ज करना ।
- शिक्षा योजनाओं पर होने वाली धनराशि का ब्यौरा रखना ।
- छात्रों के विकास के आधार पर कोर्स पेपर तैयार करना ।
- विश्वविद्यालय/महाविद्यालयों और विद्यालयों की गतिविधियों पर निगरानी रखना ।
- वास्तविक जीवन के शोध कार्यों के लिए सिम्यूलेशन मॉडल प्रस्तुत करना ।
- विभिन्न शोध कार्यों के परिणामों को दर्ज करना ।
- गणितीय व विज्ञान की समस्याओं के हल में सहयोग देना ।

विद्यालय प्रबन्धन School Management

- विद्यार्थियों के मुख्य रिकार्ड S/R Register में रखना ।
- छात्रों की परीक्षाओं का आयोजन (प्रश्न पत्र बनाना, उत्तर जाँचना, रोल नं. तय करना)
- परीक्षा परिणाम तैयार करवाना ।
- परीक्षा परिणामों को दर्ज करना ।
- पुराने परिणाम निकालना ।
- प्रत्येक छात्र की कमजोर और विकसित क्षमताओं का रिकार्ड रखना ।
- छात्रों को विभिन्न कोर्स पेपर कम्प्यूटर पर ही प्रदान करना ।

- छात्रों से इंटरनेट के माध्यम से संपर्क करके अध्ययन-अध्यापन करना ।
- विभिन्न मल्टीमीडिया साधनों का उपयोग करके पढ़ाई को रूचिकर, प्रभावी और आसान बनाना।
- शिक्षकों पर पढ़ाई करवाने के बोझ को कम करना ।
- विद्यार्थियों की विभिन्न रिपोर्ट तैयार करना ।

दूरस्थ शिक्षा मूल्यांकन Evaluation Distance Education

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय (Ignou) इसका सबसे बड़ा उदारहण है । दूरस्थ शिक्षा के लगभग सभी कार्य कम्प्यूटर के द्वारा ही पूरे होते है । जैसे :-

- छात्रों का एडमिशन ।
- विभिन्न प्रकार के कोर्सो का विवरण ।
- घर बैठे ही छात्र अपनी फीस जमा करवा सकता है ।
- ऑडीयो/वीडियो क्लासेज का उपयोग ।
- मल्टीमीडिया के द्वारा अध्ययन-अध्यापन करवाना ।
- इंटरनेट, ई-मेल के द्वारा छात्रों से संपर्क करना ।
- परीक्षा परिणाम इंटरनेट पर प्रस्तुत करना ।

विशिष्ट बालकों की शिक्षा Education for special children

- कम दृष्टि या दृष्टिहीन छात्रों के लिए ऑडियो पैकेज प्रस्तुत करना ।
- दृष्टिदोष के छात्रों के लिए विशेष कुंजीपटल व आवाज प्रस्तुत करने वाले कम्प्यूटर व मल्टीमीडिया का उपयोग ।
- विशेष सॉफ्टवेयरों का उपयोग । जैसे छूकर चलाए जाने वाले प्रोग्राम या बोलकर चलाए जाने वाले प्रोग्राम
- मन्द बुद्धि विद्यार्थियों के लिए विशेष कोर्सवेयर रखा जाता है ।

8.5 मल्टीमीडिया का शिक्षा क्षेत्र में उपयोग

मल्टीमीडिया का अर्थ है डाटा संप्रेषण DATA COMMUNICATION के लिए एक से अधिक साधनों का उपयोग करना । दूसरे शब्दों में टेक्सट का संचालन, आवाजें, ग्राफिक्स तथा चलचित्रों का एकसाथ उपयोग ही मल्टीमीडिया है ।

लोग एक-दूसरे से जुड़ने, अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए कई प्रकार के माध्यमों का सहारा लेते है जैसे चित्र/वीडियो दृश्य का, चिह्नों का, आवाज का, लिखित सामग्री का इत्यादि ।

अत: मल्टीमीडिया के बुनियादी तत्व टेक्स आवाजें, चित्र और चलचित्र आदि ही है । मल्टीमीडिया पर आधारित कम्प्यूटर के कुछ विशेष हार्डवेयर - i.e. Sound Card, Microphone speakers, CD/DVD Drive आदि तथा सॉफ्टवेयर - इसमें अनेक सॉफ्टवेयरों का उपयोग है जैसे - Power point, Window media player, Iuistater, Premeir, Photoshop आदि एक मल्टीमीडिया कम्प्यूटर निम्नलिखित कार्य कर सकता है -

- अधिक मात्रा में टेक्स्ट सूचना निर्मित कर सकता है ।

- संगीत साधनों की धुनों पर आवाज तैयार कर सकता है ।
- प्लेबैक रिकार्डिग कर सकता है ।
- चित्रों व फिल्मों को मॉनीटर की स्क्रीन पर दर्शा सकता है ।
- एक साथ एक से अधिक लोगों के कम्प्यूटर स्क्रीन पर किसी विशेष प्रस्तुतीकरण को दर्शाया जा सकता है ।
- CD/DVD Drive आदि को चलाया जा सकता है ।
- डिजीटल कैमरा/वेब कैमरा या मोबाइल कैमरे का उपयोग किया जा सकता है ।
- वीडियो चैटिंग की जा सकती है ।

महत्व

मल्टीमीडिया शिक्षा के लिए बेहद ही महत्वपूर्ण साधन है । मल्टीमीडिया के उपयोग से अध्यापक अपने तथ्यों/विचारों को अधिक प्रभावी ढंग से समझाने के साथ-साथ उसे सिद्ध भी कर सकते है ।

आजकल प्रत्येक विषय से संबंधित एनसाइक्लोपीडिया CD या इंटरनेट पर उपलब्ध है । विद्यार्थी घर पर ही इनका उपयोग इनके गणित. विज्ञान, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, रसायन शास्त्र, वेद-उपनिषद कम्प्यूटर व सामान्य ज्ञान आदि के बारे में ज्ञान अर्जित कर सकते है ।

जटिल विषयों को यदि दृश्यों और विशिष्ट आवाजों की सहायता से समझा या समझाया जाए तो शायद वह अधिक असरदार होगा । अत: आज मल्टीमीडिया का उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में वरदान ही साबित हो रहा है ।

इंटरनेट

सूचनाओं का ऐसा विशाल समुद्र है जहाँ प्रत्येक विषय से संबंधित सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है। जहां तक शिक्षा का सवाल है यहाँ अध्ययन-अध्यापन की वेब साइट्स तो, है ही साथ ही विद्यार्थी को अपना भविष्य सवारने के लिए यहां वहां भटकना नहीं पड़ता है । फिर कोर्स के बाद क्या किया जाए, किस क्षेत्र में अधिक सफलता पाई जा सकती है, किसी विश्वविद्यालय/महाविद्यालय में प्रवेश कैसे प्राप्त किया जाए, किसी विशेष विषय के मान्यता प्राप्त महाविद्यालय/विश्वविद्यालय कहाँ है ।

इन सभी का आसान जवाब है इंटरनेट जहाँ हमको ये सब जानकारी ही प्राप्त नहीं होगी, अपितु विशेष विषय या विषय की पुस्तकें पढ़ने पढ़ाने के तरीके/साधन सब प्राप्त हो सकते हैं ।

आज इंटरनेट पर कई विश्वविद्यालय विद्यार्थियों की क्लास लेते है । जिनका सीधा प्रसारण होता है । छात्र दूर घर पर बैठे हुए अपने शिक्षक से सवाल या वार्ता कर सकता है विद्यार्थी अपने शिक्षक को अपने प्रश्न ई-मेल से भेज सकता है । शिक्षक उसके जवाब भी मेल कर सकता है । यह कार्य आजकल Text chatting या Video chatting से भी किया जाता है ।

इंटरनेट पर New groups (mailing list) भी होते है । जहाँ गंभीर विषयों पर वार्ता की जा सकती है ।

वर्चुअल कक्षा

संचार तकनीकी में वृद्धि के साथ-साथ दूरवर्ती शिक्षा कार्यक्रमों में वर्चुअल या सांकेतिक कक्षा को शामिल किया जाता है । इसमें छात्र मात्र श्रोता ही नहीं होते वे अपनी जिज्ञासाओं से संबंधित प्रश्न भी पूछ सकते हैं ।

ई-लर्निंग

ई-लर्निंग छात्रों की अध्यापक पर निर्भरता को खत्म तो नहीं परन्तु बहुत हद तक कम जरूर कर देती है । इसमें किसी भी विषयवस्तु की पाठ्यक्रम सामग्री को इंटरनेट पर अपलोड कर दिया जाता है तथा यह सामग्री हमेशा ऑनलाइन उपलब्ध हो जाती है इसमें विद्यार्थी की स्वतन्त्रता बढ़ जाती है वह किसी भी अनुकूल समय अध्ययन कर सकता है ।

डिजिटल पुस्तकालय

इसमें टेली एजुकेशन सॉफ्टवेयर एक महत्वपूर्ण साधन है । यह किसी भी पुस्तकालय की संपूर्ण पुस्तकों को इंटरनेट की सहायता से विश्व के किसी भी कोने में बैठे विद्यार्थी या पाठक तक सीधे ही पहुंचा देने में सक्षम है ।

8.6 सूचना क्रान्ति और शिक्षा का भविष्य

पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा रचित "महाशक्ति भारत" में सूचना प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा की आधुनिकतम कल्पना की गयी है । जिसमें एक तरफा, दो तरफा संप्रेषण उसकी रिकार्डिग व उससे संबंधित पुस्तकों को मंगवाया जाना सब कुछ देश के प्रत्येक कोने से दूसरे कोने तक संभव हो ।

वर्चुअल विश्वविद्यालय के निम्न कार्य हो सकते हैं:-

- व्याख्यान व परस्पर संवाद के रिकार्डिग को अपने डाटा बैंक में डालना ।
- विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों का आयोजन व उससे संबंधित सभी सामग्री का रिकार्ड डाटा रखना।
- नेटवर्क से जुड़े सभी विश्वविद्यालय के बीच केन्द्रीय भूमिका निभाना ।

8.7 शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की भूमिका

सूचना क्रान्ति आधारित नवीन शिक्षा प्रणाली में ये संस्थान अपनी सृजनात्मक भूमिका निभा सकते है क्योंकि आने वाले प्रत्येक नए छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका को नवीन सूचना क्रान्ति को किस प्रकार से अधिकाधिक छात्र हित में काम लिया जा सकता है । यह ये संस्थान अगर प्रशिक्षण दे दे तो कई छात्रों को नवीन प्रौद्योगिकी का ज्ञान आसानी से संभव हो सकता है ।

इस प्रकार शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से एक नई प्रकार की सूचना क्रांति आयेगी जो आधारभूत रूप से शुरू होनी चाहिए और तभी वो भारत के विकास में अतुलनीय योगदान देगी ।

8.8 सारांश

शिक्षा को सूचना प्रौद्योगिकी आधारित बनाने में शिक्षक सृजनात्मक भूमिका निभा सकते है और उन्हें इस संदर्भ में प्रशिक्षित किए जाने की जरूरत है । शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में मल्टीमीडिया सामग्री के निर्माण की प्रक्रिया एवं शिक्षकों एवं शिक्षक प्रशिक्षकों द्वारा इनके व्यावहारिक प्रयोग को बडे पैमाने पर शामिल किया जाना चाहिए ।

8.10 मूल्यांकन प्रश्न

1. शिक्षा में सूचना क्रान्ति से आप क्या समझते हैं, स्पष्ट कीजिए ।
2. शिक्षा में अनुप्रयुक्त सूचना क्रान्ति के साधनों का वर्णन कीजिए ।
3. शैक्षिक दूरदर्शन की शिक्षा के क्षेत्र में क्या भूमिका है?
4. शिक्षा में सूचना क्रान्ति के नवाचारों को बताइये ।
5. मल्टीमीडिया का शिक्षा के क्षेत्र में महत्व बताइये ।
6. शिक्षा में सूचना क्रान्ति में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की क्या भूमिका है?

8.10 संदर्भ ग्रंथ

1. कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (2009) शैक्षिक तकनीक के मूल आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
2. Gerhand, M. (1971) Effective Teaching Strategies with Behaviourl Outcome Approach. Parker Publications, West Nyack, New York.
3. Nohanty, J. (1980) Educational Technology and Communication Media, Nalanda, Cuttack.

इकाई - 9

शिक्षा का भविष्य शास्त्र

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 भविष्य शास्त्र: अर्थ

9.3 शिक्षा और भविष्यशास्त्र

9.4 शिक्षा और भविष्यमिति का अर्थ

9.5 भविष्य शास्त्र के क्षेत्र

9.6 भविष्य शास्त्र की आवश्यकता व महत्त्व

9.7 भविष्य शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त

9.8 भविष्य शिक्षा के उद्देश्य

9.9 भविष्य शिक्षा की विषय सामग्री तथा शिक्षा प्रक्रिया

9.10 भविष्य शिक्षा के स्तर प्रशासन तथा अर्थ

9.11 परिर्वतन के परिप्रेक्ष्य-शिक्षा के सन्दर्भ में

9.12 शिक्षा का एकीकृत विचार

9.13 शिक्षा एक मुक्त प्रणाली

9.14 व्यापक अधिगम

9.15 विज्ञान व सूचना टेक्नोलोजी का भविष्य समाज पर प्रभाव आधारित शिक्षा

9.16 जीवन मूल्य - शिक्षा पर बल

9.17 भावी भारत में विद्यालय

9.18 विकास की प्रवृतियाँ

9.19 पर्यावरण एवं जनसंख्या

9.20 मूल्यांकन प्रश्न

9.21 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

- विद्यार्थी भविष्य विज्ञान के अर्थ व क्षेत्र का ज्ञान कर सकेंगे ।
- विद्यार्थी भविष्य विज्ञान की आवश्यकता व महत्व के बारे में प्रवीणता प्राप्त कर सकेगें।
- शिक्षा व भारतीय समाज के भविष्य शास्त्र के सिद्धान्तों व उद्देश्यों का ज्ञान कर सकेगें।

9.1 प्रस्तावना

शिक्षा एक महत्वपूर्ण और सर्वव्यापी विषय है । यह मानव की एक विशेष उपलब्धि है अतीतकाल से मनुष्य ने जागरूक रहकर अपनी वाक् शक्ति और व्यक्ति के बीच समुदाय तथा समुदाय के बीच तथा सन्तति और सन्तति के बीच अपने व्यावहारिक अनुभव भण्डार का संचार करने के लिए उपयोग किया है । इनमें प्राकृतिक घटनाओं, नियमों विधि-निवेश की संकेत भाषा का उपयोग है ताकि व्यक्ति का समाजीकरण हो सके और वैयक्तिक स्मृती के माध्यम से पूरी जाति जीवित रह सके । शिक्षा वही सार्थक है जो भविष्य के संदर्भ में मनुष्य को सक्षम बनाती है । कभी मानव ने स्वंय को अहंकार पूर्वक चिन्तनशील व बुद्धिमान मानव घोषित किया था । किन्तु आज के मानव को अपनी उपलब्धियों के साथ अपनी सीमाओं की भी पहचान हो रही है । आज के मानव की अवधारणा के संबध में कुछ सार्वभौम सत्य निश्चित है । आज का मानव जीवन के प्रश्न को अत्याधिक महत्व देने के फलस्वरूप लाभ व आक्रमण की वृत्ति के साथ परोपकार व करूणा के भावों के समन्वय से ओत-प्रोत है ।

अच्छे समाज व अच्छे मानव के साथ ही जीवन के कुछ नियमित नियमों का पालन तथा सतत् सीखना व सतत् परिवर्तनशील वास्तविकता के अनुकूल बनने की क्षमता वाला । अपनी सीमाओं के बावजूद प्राकृतिक तथा सामाजिक आर्थिक पर्यावरण और स्वयं की प्रेरणा और महत्वाकांक्षाओं से उत्पन्न चुनौतियों से जुझने के लिए तत्पर ।

मानव की विशिष्ट युक्त अवधारणा अपने आप में कुछ प्रश्नों से जुड़ी है कि:-

- मानव का भविष्य क्या होगा?
- मानव के भविष्य का निर्णय कौन करेगा?
- शिक्षा इसमें किस प्रकार सहायक होगी?
- शिक्षा का भविष्य का रूप क्या होगा?

आज की तात्कालिक आवश्यकता वर्तमान प्रवर्तियों के आधार पर भविष्य को प्रस्तुत करने की नहीं अपितु भविष्य निर्माण करने की है । यह निर्माण उस संभावना की परिधि के भीतर ही किया जा सकता है । जो हमारे सामने उपस्थित वास्तविकता के अनुमानित अध्ययन से ज्ञान हुई हो । भविष्य के सबंध में अनुभवों पर आश्रित अध्ययन के लिए आधार क्या होगा 7 इन सब प्रश्नों के उत्तर के लिये विचार मन्धन की आवश्यकता है । इस चिन्तन के विषय को कुछ नाम देना भी आवश्यक है । हम कह सकते हैं । भविष्य के लिए भविष्य के बारे में नियोजन तथा भविष्य का मूल्यांकन, भविष्य के लिए यह एक सर्वथा अनुशासन उभर कर आया है, जिसका नाम रखा है-भविष्य विज्ञान ।

मानव सदैव अपने भविष्य के लिये चिन्तित रहा है । उसने इसके लिये अनेकानेक योजनायें बनाई है । पश्चिम के आधुनिक समाजों में आज भविष्य के प्रति चिन्ता और तेजी से बढ़ती जा रही है। इसके मूल में तेजी से बदलता हुआ विज्ञान एवं शिल्पविज्ञान आधारित समाज है, द्रुत गति से आ रहे जीवन के विभिन्न क्षेत्र में परिवर्तन हैं । मनुष्य सदैव से ही अपने भविष्य जानने को उत्सुक रहा है । ज्योतिष में उसकी आस्था इसी की परिचायक है । उसकी भविष्यवाणियों के आधार पर अपने भविष्य के कार्यकलापों व कार्य योजनाओं का निर्धारण करता है । किसी भी देश, राज्य, समुदाय, परिवार का वर्तमान व भविष्य शिक्षा प्रणाली के संगठन

एवं नियोजन पर निर्भर करता है । शिक्षा का स्वरूप जैसा होगा, भारतीय समाज का स्वरूप भी वैसा ही होगा । भूमण्डलीकरण व वैश्वीकरण के इस युग में परिवर्तन तीव्र गति से आ रहे है । शिक्षा के कारण विकास के मार्ग में होने वाले परिवर्तन भारतीय समाज की व्यवस्था को निर्धारित करते हैं ।

9.2 भविष्य शास्त्र: अर्थ

भविष्य शास्त्र का शाब्दिक अर्थ है भविष्य का विज्ञान या भविष्य का अध्ययन (Science or study of future) यह एक ऐसी अनवरत प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम स्वयं को आस-पास की भावी अच्छी या बुरी वास्तविकताओं के प्रति सचेत करते हैं और उसी के आधार पर योजनाऐं बनाते हैं ।

इस शास्त्र में सर्वाधिक बल भविष्य को समझ कर उसके स्पष्ट अंकन पर है । भावी तादात्मय, भविष्य दृष्टा, भविष्य चेतना, भविष्योन्मुखी आदि भविष्यशास्त्र की शब्दावलियाँ है । भविष्यशास्त्र भविष्य के विकल्पों के क्षेत्र को समृद्ध करने व सम्भावनाओं के अधिक विस्तृत स्वरूप को चित्रित करने का प्रयास करता है ।

हैक्सले व येट्स के अनुसार:- "भविष्य के वैज्ञानिक अध्ययन को उस व्यवस्थित प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो प्रवृतियों व विकल्पों को पहचान कर भविष्य के विचारणीय विषयों की ओर संकेत करती है ।"

(The scientific study of the future may be defined as a systematic process for identifying trends and alternatives that point to the issues of future.

-By Hensly and Yetes

जे.एल.बुर्डिन के अनुसार - "भविष्यमिति प्रक्षेपित परिवर्तनों के अध्ययन एवं उनके प्रति प्रतिक्रियाओं की प्रक्रिया है ।"

(Futurism is a process for studying and watching to projected changes)

सारांशत: कहा जा सकता है कि-

1. भविष्य का वैज्ञानिक अध्ययन एक व्यवस्थित प्रक्रिया है ।
2. भविष्य विज्ञान के द्वारा सम्भावित परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है ।
3. यह एक विकासशील विज्ञान है ।
4. यह एक अन्तर्विषय अध्ययन क्षेत्र है ।
5. इसके द्वारा समाज के उद्देश्यों व मूल्यों का सम्यक् मूल्यांकन किया जाता है ।

9.3 शिक्षा और भविष्यशास्त्र

भविष्य विज्ञान का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । शिक्षा में भी इसका प्रयोग हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में इसके प्रयोग ने "शिक्षा की भविष्यमिति" (Futurology of education) या "शैक्षिक भविष्यमिति" (Educational Futurology) को जन्म दिया है ।

9.4 शिक्षा और भविष्यमिति का अर्थ

शिक्षा की भविष्यमिति का अर्थ है वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा वैज्ञानिक परिस्थितियों का अध्ययन कर उनके आधार पर भविष्य में हमारे सामने आने वाली समस्याओं व चुनौतियों का पूर्वानुमान लगाना जिससे इनका सामना करने के लिये शैक्षिक योजना पहले से ही तैयार की जा सके । इसके द्वारा भावी समाज के स्वरूप का पूर्वानुमान लगाते हैं। और उसके अनुरूप भविष्य के सम्भावित शैक्षिक परिवर्तनों की रूपरेखा तैयार करते हैं।

9.5 भविष्य शास्त्र के क्षेत्र

आज जीवन मूल्यों पर घोर संकट है । आज मानव तनाव, असामंजस्य तथा विरोध का स्त्रोत बन गया है और स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिये खतरा बन गया है । इन कष्टों से जूझने के लिये न्यायपूर्ण और सौहार्दपूर्ण प्रशिक्षित मस्तिष्क की आवश्यकता है । यह वातावरण भविष्य विज्ञान के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है । भविष्य विज्ञान बालक को नवीन व व्यवस्थित जीवन जीने की कला सिखाता है, जिसके द्वारा मनुष्य नव-निर्माण का कार्य कर सकता है ।

1. विविध समस्याओं का वैज्ञानिक विधि से अध्ययन ।
2. स्वयं के अस्तित्व का ज्ञान ।
3. भविष्य की तैयारी का अध्ययन ।
4. वैयक्तिक व सामूहिक जीवन के लिये तैयार ।
5. मनुष्य के मूलभूत गुणों की पहचान में सहायक ।

9.6 भविष्य शास्त्र की आवश्यकता व महत्त्व

- वर्तमान के आधार पर वैकल्पिक भविष्य के चुनाव में सहायक ।
- वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर भविष्य की परिस्थितियों का पता लगाकर तदनुरूप शिक्षा में परिवर्तन करने की योजना बनाने तथा इस योजना के परिणामों का पूर्व आंकलन के लिए ।
- नीति निर्धारकों की सहायता के लिए, क्योंकि अन्य क्रियाओं के समान शिक्षा में भी नीति के अभाव में कार्य नहीं किया जा सकता । नीति निर्धारण के लिए प्रत्येक क्षेत्र में एक विशिष्ट समुदाय होता है । उसका दिशाबोध आवश्यक है ।
- आज आवश्यकता है भविष्य विज्ञान की योजना बनाने के लिए पृष्ठ भूमि के लिए योजना बनाने के लिए तथा योजना क्रियान्वित के लिए, जिससे भविष्य भय उत्पन्न न कर पाये तथा भविष्य सुखद हो उठे ।

भविष्य के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिदृश्य वर्तमान में शिक्षा प्राप्त कर रही पीढ़ी के योगदान पर ही निर्भर है । आज विलक्षण वैज्ञानिक व तकनीकी विकास एवं नवाचार के संदर्भ में पूर्व में कमी न होने वाली आज की सामाजिक, आर्थिक, चुनौतियों के

लिए, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थतियों में आश्चर्यजनक सुधार के लिये व सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिये शिक्षा का पूर्व की अपेक्षा दूर दृष्टिपूर्ण तथा भविष्योन्मुखी होना होगा ।

वर्तमान में तकनीकी नवाचार तथा अनुसंधान शिक्षा के अपरिहार्य साधन के रूप में प्रयुक्त हो रहे है । नवाचारों के अभावों का अर्थ है कल के शैक्षिक कार्यक्रमों तथा शैक्षिक व्यवस्थाओं की भविष्य के लिए पुनरावृति करना । जिसका निश्चय ही अर्थ होगा कि भविष्य के लिए अनुकूल प्रयासों में शिक्षा का सक्रिय योगदानकत्रो के रूप में अपनी ख्याति को खतरे में डाल देना । ये नवाचार यदि तकनीकी से ओत प्रोत तथा अनुसंधान पर आधारित होगें तब ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के विधिवत् प्रस्तावित होकर प्रभावशाली होगें अन्यथा नहीं। भविष्योन्मुखी शिक्षा पर हम दो संदर्भो में विचार करेगें । प्रथम बिन्दु है-शिक्षा के सन्दर्भ में परिवर्तन के प्ररिप्रेक्ष्य तथा द्वितीय है शिक्षा के संदर्भ में भविष्य प्रभावी संभावनाऐं ।
इसकी आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से अनुभव की जा रही है ।

1. समय व साधनों के उचित उपयोग के लिये

जब किसी समस्या के "उपस्थित होने के बाद हम उसके समाधान, उपायों के विषय में विचार करना आरम्भ करते हैं । तो इस सम्बन्ध में योजना तैयार करने में समय लग जाता हैं भविष्यमिति द्वारा भावी समस्याओं का पूर्वानुमान लगा कर उनके समाधान के लिये शैक्षिक कार्य योजना पहले ही तैयार कर ली जाती है ।

2. इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये

शिक्षा राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन है । भविष्य विज्ञान के द्वारा हम यह निर्धारित करते हैं कि भविष्य में हमारे लिये क्या इच्छित है और क्या नहीं । जो इच्छित है उसे प्राप्त करने के लिये शैक्षिक कार्यक्रम तैयार किये जा सकते है ।

3. उच्च प्रशिक्षित जनशक्ति के निर्माण के लिये

भविष्य विज्ञान के द्वारा ही हम वर्तमान विज्ञान व तकनीकी के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों के आधार पर भविष्य के लिये कुशल जनशक्ति के निर्माण की योजना तैयार कर सकते हैं।

4. भविष्य की जटिल समस्याओं के समाधान के लिये

शिक्षा की भविष्यमिति के द्वारा इनका पूर्वानुमान लगा इनके समाधान के लिये भावी शिक्षा की कार्य योजना तैयार की जा सकती है ।

5. भविष्य को अपने अनुकूल बनाने के लिये

प्रत्येक समाज सामान्यत: अपने अतीत पर गर्व करता है और भविष्य के लिये सुन्दर सपने बनाता है । उसके इन सपनों को साकार करने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । शैक्षिक भविष्यमिति के द्वारा अपने सपनों को साकार रूप देने के लिये शैक्षिक कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जाती है ।

6. भावी शैक्षिक नियोजन के लिये

बदलते सामाजिक परिवेश एवं आवश्यकताओं के अनुरूप इसके उद्देश्य तथा उनकी प्राप्ति के लिये दिये, जाने वाली अधिगम अनुभवों की व्यवस्था की जाती है ।

7. भविष्य की अनजान परिस्थितियों से सामंजस्य करने के लिये

भविष्य की शिक्षा विद्यार्थियों में भविष्य की उन अनजान परिस्थितियों से सामंजस्य की क्षमता विकसित करती है तथा उसके व्यक्तित्व को गतिशील बनाती है । भविष्य शिक्षा में सामग्री एकत्रीकरण, विश्लेषण, ग्रहण करने की, सीखने व पुन: सीखने की कुशलता का विकास किया जाता है ।

8. भविष्य को मापने की क्षमता का विकास

टौफलर का मानना है कि भविष्य की शिक्षा विद्यार्थियों में भविष्य के स्वरूप मापने की क्षमता का विकास करती है । अर्थात् वह सिखाती है कि भविष्य का स्वरूप वर्तमान में कितना अधिक होगा तथा किसी सीमा तक आगे जा सकता है ।

9. लोकतान्त्रिक तरीकों पर बल

भविष्य की शिक्षा पद्धति की विधियों में लोकतान्त्रिकता होनी चाहिये । भविष्य विज्ञान के माध्यम से लोकतान्त्रिक तत्वों को प्राखरता प्रदान की जाती है ।

9.7 भविष्य शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त

70 के दशक व उसके आस-पास अनेक ऐरने ग्रन्थों की रचना हुई जिन्होंने शैक्षिक भविष्यमिति के उद्भव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इनमें 1972 में UNESCO की 'Learning to Be', इवान इलियच (Ivan Illiach) की 'Deschooling society' रेमर (Reimer) की 'School is dead' तथा टौरस्टन (Torsten) की Education in the year 2000' आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय है। इसी प्रकार शैक्षिक विकास पर अन्तर्राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट में आने वाले समय में 'सीखने के लिये सीखना' (Learning for sake of) शिक्षा का उद्देश्य बताया गया है ।

1. जीवन पर्यनत शिक्षा का महत्व व शिक्षा में समानता को सानि ।
2. शिक्षा में सतत् एंव व्यापक मूल्याकंन को सानि ।
3. तकनीकी का शिक्षा में प्रयोग।
4. शिक्षा में गुणात्मता व समानता दोनों की प्राप्ति सम्भव ।
5. अधिगम व शिक्षण समस्याओं के प्रति उदार दृष्टि।
6. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य के लिये प्रयास ।
7. व्यावसायीकरण पर बल ।
8. सैद्धान्तिक विषयों के साथ-साथ नैतिक विकास पर जोर ।
9. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नई-नई शाखाओं को महत्व ।
10. सृजनात्मकता उन्मुख अधिगम पर जोर ।
11. जीवन मूल्य व जीवन कौशल आधारित शिक्षा पर बल ।

9.8 भविष्य शिक्षा के उद्देश्य

भविष्य शास्त्र एक नया विषय है जो निर्माणव्यवस्था में है । बेन्सन बेल ने भविष्य सम्बन्धी इस विज्ञान के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि भविष्य के इस अध्ययन का न तो वर्णन किया जा सकता है और न ही यह प्रमुखत: भविष्यवाणी ही है । यह

नव प्रयोग तथा मार्गदर्शन है । इसके अन्तर्गत मूल्यों और लक्ष्यों का स्पष्टीकरण और मूल्यांकन, प्रवृत्तियों का विवरण दिया जाता है तथा इसमें वैकल्पिक भविष्यों का प्रस्तुतिकरण तथा अन्त:निर्भरताओं के क्रमों का विवरण आता है । इसके अनेक उद्देश्य है।:-

1. **भविष्य के प्रति चेतना**
   भविष्य शिक्षा भविष्य के प्रति उदारवादी तत्व को प्रधानता देती है जो शिक्षा को भविष्य के प्रति संचेतना विकसित कर सके ।
2. **व्यावहारिक कुशलताओं का विकास**
   भविष्यमिति, बालक में व्यावहारिकता के गुणों का विकास करती है । व्यावहारिक गुणों के विकास के द्वारा भविष्य की कल्पना कर पाना आसान है ।
3. **नवीन योजना निर्माण व क्रियान्वयन**
   भविष्य विज्ञान की योजना बनाने के लिये पृष्ठभूमि के लिये योजना बनाने के लिये तथा योजना क्रियान्विति के लिये, जिससे भविष्य भय उत्पन्न न होने पाये ।
4. **नीति निर्धारण के योग्य बनाना**
   भविष्य विज्ञान बालक को नीति निर्धारण के योग्य बनाता है व भविष्य विज्ञान नव शाखा का सृजन करता है ।
5. **वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप योजना निर्माण**
   भविष्य विज्ञान वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप योजना बनाने तथा इस योजना के परिणामों के पूर्व आंकलन के लिये तैयार रहता है ।
6. **नव परिवर्तन का तैयार**

भविष्य विज्ञान आधुनिकता में विश्वास करता है । और प्रतिदिन नव परिवर्तन के लिये तत्पर रहने की कोशिश करता है । भविष्य विज्ञान नये-नये परिवर्तनों के द्वारा हर सम्भव यह प्रयत्न करता है । कि नये आविष्कारों का सृजन हो और प्रत्येक स्तर पर नव निर्माण का कार्य होता रहे।

संक्षेपत: यह कहा जा सकता है कि इसके अन्तर्गत वैज्ञानिक आधार पर भविष्य के लिये कार्य योजनाओं की रूपरेखा तैयार करने का प्रयास किया जाता है । जिससे आने वाले समय की चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया जा सके । इसका विकास बड़ी तेज गति से हो रहा है। भविष्य की शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर विचार किया गया है ।

9.9 भविष्य शिक्षा की विषय सामग्री तथा शिक्षा प्रक्रिया

भविष्य शिक्षा विषय सामग्री समूह के लिये न होकर व्यक्ति विशेष के अनुसार होगी । सिखने का दायित्व सीखने वाले का होगा ।

- पृथक् से एक सीखने वाला समाज (Learning society) अथवा सीखने वाला वातावरण (Learning environment) बनाना होगा ।
- सीखने की औपचारिक व्यवस्थाओं के सीन पर पूर्णतया गतिशील व्यवस्थाऐं होनी चाहिये ।

- विद्यालय, शिक्षण सामग्री के केन्द्र (Learning resource centre) के रूप में होने चाहिये ।
- शिक्षक आवश्यकता पड़ने पर मार्गदर्शन करें, सहायता करें ।
- शिक्षा व्यक्तिगत (Individualized) हो ।
- चयन के स्थान पर मार्गदर्शन पर बल दिया जाये ।
- सीखने वाले को सीखने के कार्य में उत्प्रेरित किया जाये।
- आयु सीमा, विषयों, पाठ्यक्रमों, स्तरों, परीक्षाओं के कृत्रिम अवरोध समाप्त किये जाने चाहिये ।

9.10 भविष्य शिक्षा के स्तर प्रशासन तथा अर्थ

- पूर्व प्राथमिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा पर बल दिया जाये ।
- अन्तर्विषयी शिक्षण व शोध कार्य पर बल ।
- शिक्षा में आवश्यक सुधार, परिवर्तन व आधुनिकीकरण ।
- शिक्षा राष्ट्र विशेष की दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक मांगों को पूरा करने में समर्थ हो ।
- विद्यालय प्रशासन विकेन्द्रित हो ।

भविष्य की शिक्षा गतिशील, सामाजिक असमानताओं और अन्यायों से मुक्ति दिलवाने वाली तथा अपरम्परागत होनी चाहिये । राष्ट्र विशेष की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास की अवस्थाओं एवं आवश्यकताओं के अनुसार भविष्य की शिक्षा सबल एवं सक्षम होनी चाहिये । समाज के विभिन्न वर्ग के लोग यदि खुले दिमाग से समाज के भविष्य के बारे में चर्चा करें तो यह सम्भव हो सकता है कि भविष्य की शिक्षा राष्ट्र विशेष के लिये सबल एवं सूक्ष्म रूप में कार्य करें ।

9.10 भविष्य शिक्षा के स्तर प्रशासन तथा अर्थ

परिवर्तन की जाति के संदर्भ में कहें तो आगामी कुछ ही शताब्दियों में पीढ़ियो का विस्तार पूर्व अर्धशताब्दी के तथा उससे भी पूर्व की अर्धशताब्दी के मध्यके विस्तार बिलकुल भिन्न होगा । यह परिवर्तन शिक्षा की दृष्टि से क्या संकेत दे रहा है । उस पर वांछनीय रूप से जानबूझकर गहराई से सोचना होगा । समय के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के संबंध में सोचने का तात्पर्य है परिवर्तन के संबंध में सोचना और परिवर्तन से जुड़ना । अत: सर्वप्रथम यह देखना है कि विकल्पों की राह में बाधास्वरूप कौन-कौन सी शक्तियाँ है? ये दो प्रकार की शक्तियाँ है जो संगठनात्मक तथा विघटनात्मक होती है, संगठनात्मक में विशेषत: विज्ञान व टैक्नोलॉजी में ज्ञान का प्रसार, विश्व द्वारा उत्तम जीवन स्तर के लिए खोज, समानता के समान्त की और जा रही मानव आत्मा का पुनरूधान तथा परस्पर जीवन स्तर के लिए खोज, समानता के समान्त की और जा रही मानव आत्मा का पुनरूधान तथा परस्पर आत्मनिर्भर विश्व का आविर्भाव है । विघटनात्मक शक्तियों से मानव जाति के अस्तित्व के लिए सांधातिक खतरों की समस्यायें, परिस्थितिकीय अधोगति ,जनसंख्या की वृद्धि और मानवीय मूल्यों का ह्रास चरम बिन्दु है ।

इन परिवर्तनों तथा विकासात्मक प्रवृतियों के प्रति अनुसरणात्मक तथा प्रतिक्रियात्मक दायित्व शिक्षा को नहीं निभाना है । अपितु शिक्षा के भविष्य को समाज के विकास में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करते हुए नेतृत्व प्रदान करना है, इस क्रम में सर्वप्रथम शिक्षा को भविष्य के निर्माण हेतु भविष्य का निरूपण करना होगा । जिसका तात्पर्य शैक्षिक प्रक्रिया की समग्र दृष्टि यथा विषय वस्तु, विधि एवं उपलब्धि के संदर्भ में शिक्षा का मूलभूत गुणात्मक रूपान्तरण करना होगा । इस प्रकार के गुणात्मक रूपान्तरण में निर्णायक बिन्दु अधिगम चालित अधिगमकर्ता, सृजनात्मकता तथा जीवन मूल्य है । शिक्षा प्रणाली तथा शिक्षण प्रक्रिया दोनों का ध्येय अधिगमाधारित समाज को बनाना है ।

पहले और पश्चात इन दोनों शब्दों का संबंध वर्तमान से है । पहले का पुनरवार्तन करना तो संभव नहीं है । किन्तु पश्चात् तो तात्कालिक वर्तमान से बँधा हुआ अज्ञात, अप्रत्याशित तथा पूर्ण कथ्यविहिन है । अत: भविष्य को जानने की, भविष्य के प्राक्कथन तथ पूर्वानूमान की माननीय खोज अथक है । आज बहुसंभावनायुक्त भविष्य दिशाविहिन न रहें, इस तथ्य के प्रति जागरूकता की आवश्यकता है । भविष्य को वर्तमान से अलग नहीं किया जा सकता । भविष्योन्मुखी शिक्षा के संदर्भ में हुए सिम्पोजियम में वर्तमान और भविष्य के संदर्भ में किया गया कथन वस्तुत: मार्गदर्शक है कि भविष्य के मेरे अस्तित्व का संबंध वर्तमान के मेरे अस्तित्व से है । वर्तमान में हमारे कार्य ही हमारे भविष्य का निर्धारण करते हैं । अत: वर्तमान में हम कैसे रहते हैं । यह महत्वपूर्ण हैं । भविष्य के परिप्रेक्ष्य से दूसरा तथ्य है, उद्घाटित या प्रगटित करना अथवा दैवीय शक्तियुक्त मानव द्वारा कथन करना । भविष्य कथन का अर्थ के रूप में समग्र भविष्य को प्रगट नहीं कर सकते किन्तु फिर भी भविष्य का आशिक रूप से पूर्वकथन किया जा सकता है । इसमें हम कहाँ जाना चाहते हैं तथा अपने भविष्य कथन के रूप गन्तव्य की और जाने के लिए अधिकाधिक प्रयास करना सम्मिलित है इन दो बातों की पूर्ति आवश्यक है । इसलिए भविष्य में शिक्षा संबंध में सुझाव है । कि हम अपनी दूरदृष्टि को पैना करने की क्षमता का विकास करें तथा दूरदृष्टि को यथार्थता में बदलने के लिए मनुष्य में परिवर्तन लायें ।

अब आगत भविष्य वर्तमान में ही महत्वपूर्ण हो गया है । बागत भविष्य आ गया है । इसका तात्पर्य है कि जिसके माध्यम से वर्तमान की वास्तविकताओं को पुन: आकार प्रदान किया जा सके तथा नई संभावनाओं का उद्गम हो सके । इसके संबंध में मानव के लिए उद्देश्य का निर्धारण नये सिरे से करना होगा । इस उद्देश्य निर्धारण में समाज द्वारा विवेकपूर्ण निर्णय व अन्त:दृष्टि जुड़ी है । वस्तुत: यह कार्य प्राचीन काल में ऋषियों के कार्य तुल्य ही है । अर्थात् दूरदृष्टि के अभाव में भविष्य कथन मात्र मृगमरीचिका ही होगी । भविष्य संबंधी सोच यर्थाथ में यूँ उतरेगी जब भविष्य के प्रति इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण हो कि मेरा पुत्र जब मेंरी आयु का होगा उस समय का समाज कैसा होगा? किस प्रकार के अवसर प्राप्त होगें? क्या - क्या कठिनाईयाँ होगी? क्या खतरे होगें? और इन सबसे निपटने के लिए किस प्रकार की क्षमताओं की आवश्यकता मानव को होगी?

शिक्षा इस प्रत्यक्षीकृत भविष्य के लिए सार्थक हो इसके लिए शिक्षा को समझना होगा। अपने सर्जनात्मक स्वरूप में सर्वाधिक सार्थक को समझना होगा । अपने सर्जनात्मक स्वरूप में

सर्वाधिक सार्थक होती है । यह सर्वाधिक सजग तब होती है जब यह भविष्य के सम्पूर्ण सामाजिक, माननीय ज्ञान तथा प्रत्येक प्रकार के वातावरण से परस्पर जुड़ी हो क्योंकि शिक्षा का अस्तित्व कभी भी शून्य नहीं होता । शिक्षा का निर्धारण हमेशा तात्कालिक समाज के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विश्वासों, सिद्धान्तों, अर्थतंत्र, सामाजिक मानसिकता तथा विश्व की प्रबल विचारधारा से होता है । जिसे भौतिक शास्त्र की भाषा में समेकित क्षेत्र कहा गया है ।

भविष्योन्मुखी शिक्षा पर दूर दृष्टि से पूर्व शिक्षा और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध पर एक दृष्टि समुचित है । शिक्षा सामाजिक और आर्थिक शक्तियों को तथा उनके विकास को उपयुक्त दिशा की और प्रस्तुत करने का प्रयास है ।

भविष्य की शिक्षा के सम्बन्ध में उद्देश्य तथा रास्ते दोनों पर विचार करना है । विकास के आज के प्रतिभाओं तथा शिक्षा के पीछे मूल चिन्तन अलगाववाद का है । भविष्य विज्ञान आर्थिक व मानवीय आधार पर विकास के नये-नये अवसर प्रदान करता है । विकास की ओर उन्मुख व्यक्तित्व एक सुन्दर सभ्य समाज के निर्माण में सकारात्मक, रचनात्मक सहयोग देने मे सहभागी होते हैं । जिसका प्रभाव सामाजिक वातावरण परिस्थितियों व जीवन पर प्रत्यक्षत: दिखाई देता है । मूल्य आधारित सुन्दर व सभ्य समाज का निर्माण कर सत्यम शिवम् सुन्दरम् पर आधारित समाज की संकल्पना भविष्य में समाज में स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है ।

9.12 शिक्षा का एकीकृत विचार

शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास करती है । यह विचार सैद्धान्तिक दृष्टि से सभी दर्शनों में है । मनुष्य एक स्थान पर ज्ञान से सम्बन्धित है तो कहीं पर अवबोध से सम्बन्धित है । शिक्षा के भविष्य को विकल्पों की विविधता के रूप में देखा जा सकता है तथा इन्ही विकल्पों को शिक्षा के उद्देश्यों की संज्ञा दी जा सकती है । शिक्षा के उद्देश्य अर्थात् विकल्पों का निर्धारण केवल वर्तमान के परिष्कार का ही नहीं अपितु भविष्य को आकर देने का है । परिवर्तित समय में परिप्रेक्ष्य में उद्देश्यों का निर्धारण नीतियों तथा योजना बनाने व उनको कार्यान्वित करने का महत्वपूर्ण साधन हैं, परम्परागत रूप से शिक्षा का प्रभाव शिक्षा के उत्पाद के रूप में शिक्षित व्यक्ति ही रहा ।

9.13 शिक्षा एक मुक्त प्रणाली

भविष्य की शिक्षा अधिगम शक्ति के रूप में ज्ञान के क्षेत्र शिक्षा और कार्य में सम्बन्ध तथा सबके लिये शिक्षा है।

1. औपचारिक शिक्षा की अवधि का विस्तार करना होगा ।
2. शैक्षिक संस्थाओं में नियमित रूप से बढ़कर उत्तीर्ण होने वाले प्रौढों को शिक्षा की निरन्तरता को बनाये रखना होगा ।
3. शिक्षा के एक स्तर से दूसरे का स्वरूप बदलना होगा ।
4. शैक्षिक विधियों में आधुनिकता लानी होगी ।
5. अधिगम सम्बन्धी विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी ।

9.14 व्यापक अधिगम

बालक के सर्वांगीण विकास के लिये भविष्य विज्ञान व्यापक अधिगम पर बल देता है । अधिगम के प्रथम स्तर पर वैयक्तिक, शारीरिक व स्वास्थय के विकास तथा अधिगम सम्बन्धी मूलभूत कौशलों का विकास किया जायेगा । जानने के तरीकों में मानवकी की और सृजनात्मकता, विज्ञान और टेक्नोलोजी, सामाजिक, आर्थिक ज्ञान को प्रमुखता प्रदान करना भविष्य विज्ञान के द्वारा ही सम्भव है ।

9.15 विज्ञान व सूचना टेक्नोलॉजी का भविष्य समाज पर प्रभाव आधारित शिक्षा

ज्ञान का विस्फोट एक महत्वपूर्ण बिन्दु है । टेक्नोलॉजी के विकास के परिणाम से जिसकी साक्षी है हमारे पर्यावरण की आज की स्थिति जो समस्यायें टेक्नोलॉजी के विकास से उत्पन्न हुई है । आज जीवन के हर क्षेत्र में टेक्नोलॉजी का विस्तार हुआ है । आज समाज कृषि से उद्योग, उद्योग से स्वचालित संप्रेषण तकनीकी अर्थात् औद्योगीकोत्तर समाज में परिवर्तित हो गया है । प्रत्येक परिवर्तन की विशेषता है सैद्धान्तिक व व्यवहारिक ज्ञान का साथ-साथ चलना ।

टेक्नोलॉजी के ज्ञान की एक ओर विशेषता हे कि मनुष्य द्वारा केवल समझने की दृष्टि से सिद्धान्त व क्रिया को अलग-अलग कर लिया जाता है पर प्रत्येक को सम्पूर्णता के संदर्भ में जानना आवश्यक है । विभिन्न भागों को परस्पर संबधित करके जानना होगा । आज का समाज विज्ञान और टेक्नोलॉजी का यह विकास आर्थिक सामाजिक जीवन के ढांचे को निर्धारित करता है। जिसका प्रबन्धन विशेषज्ञों तथा वृहद स्तर पर केन्द्रीकृत अधिकारी तंत्र पर निर्भर होता है । इसी टेक्नोलॉजी के विकास के रूप में भविष्य को आकार देने का प्रमुख शक्ति हो जाता है ।

भविष्य विज्ञान व शिक्षा का अटूट संबंध है । विज्ञान व सूचना टेक्नोलॉजी के बिना शिक्षा की कल्पना भविष्यमिति के संदर्भ में करना असम्भव है ।

सूचना प्राप्ति, प्रश्न कौशल तथा आलोचनात्मक अभिवृत्ति दोनो सम्पूर्ण अधिगम की प्रक्रिया में निहित है, विशेषत: विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का मूल आधार ही है । विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का ध्येय ही विद्यार्थियों को स्वयं समस्या की पहचान से सक्षम बनाता है ।

शिक्षा में सतत् शिक्षा में मांग एक नवाचार "दूरस्थ शिक्षा" का आह्वान कर रही है, जिसकी दूरस्थ अधिगम की संज्ञा भी दी जा सकती है । शैक्षिक तकनीकी का व्यवहृत रूप के साथ दूरस्थ शिक्षा का सम्बद्ध किया जा सकता है।

आज के मानव जीवन पर सूचना टैक्नोलॉजी का अपरिहार्य प्रभाव है । अधिगम की दृष्टि से मनुष्य की मनुष्य से अन्तःक्रिया की अपेक्षा मनुष्य की मनुष्य से अन्त-क्रिया अधिक प्रभावी हो रही है । सूचना टैक्नोलॉजी में नये विकास अर्थात् कम्प्यूटर की सहायता से सीखना, परस्पर अन्त: क्रिया वीडियो तथा टेलीविजन विद्यार्थियों को अपने अधिगम को सुधारने के पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं ।

9.16 जीवन मूल्य - शिक्षा पर बल

आज भी विश्व में आर्थिक व टैक्नोलॉजी की शक्तियों में तथा जीवन मूल्यों में परस्पर विरोध है, प्रभावशीलता, कुशलता तथा परिणामोन्मुख उद्देश्य आर्थिक समृद्धि से ही जुड़े रहते हैं । व्यक्तिगत हित समूहगता हितों से ऊपर हैं । समृद्ध वर्ग समाज के हित की सामूहिक जिम्मेदारी से कट गये हैं ।

विद्यार्थियों में जीवन मूल्यों के विकास की दृष्टि से सारी शिक्षा प्रणाली संभ्रमित हैं और यह भी सच है कि शिक्षा कभी भी जीवनमूल्यों से होकर जाता है । जीवन मूल्यों के माध्यम से ही हम स्वंय को तथा विश्व को देख पाते हैं । जीवन मूल्यों का शिक्षा प्रणाली में समावेश परिवार के माध्यम से होगा । विद्यालय के प्रारम्भिक वर्षों में आदतों के निर्माण को केन्द्र में रख जीवनमूल्यों का प्रारम्भ होगा । इन आदतों का संबंध सहयोग अत्मनियंत्रण तथा दूसरों का ध्यान रखना आदि से होगा ।

जीवन मूल्यों के सबंध में यदि शिक्षक को सम्मिलित करता है । तो इन मूल्यों को अनुदेशन से अलग रखना होगा क्योंकि मूल्यों का विकास परिसंवादात्मक विधि से होगा। परिसंवाद-शिक्षक-शिक्षार्थी तथा विचारों के मध्य होगा । भविष्य की शिक्षा का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु है । क्योंकि अब विश्व अमानवीय शक्तियों की बाढ़ से घिरा हुआ है । भविष्योन्मुखी शिक्षा का प्रमुख तत्व राष्ट्रीय स्तर पर योजना व विकास है किन्तु इसमें अन्तराष्ट्रीय सहयोग व सहभागिता एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता है । बहुत से परिवर्तन सार्वभौमिक रूप से सारे विश्व में प्रभावित कर रहे हैं । जैसे - परिस्थितकी असंतुलन, पर्यावरण प्रदूषण, जनसंख्या, प्राकृतिक, संसाधनों की निरन्तर कमी उनका समान वितरण, विज्ञान व टैक्नोलॉजी से मनुष्य जीवन के लिए निरन्तर बढ़ते हुए खतरे । अत: राष्ट्रीय स्तर पर नीतियो या योजना बनाने में अन्तराष्ट्रीय आधार पर्याप्त मात्रा में होगा । नई शताब्दी का नया वर्ष भविष्य की शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में अन्तराष्ट्रीय सहयोग का वर्ष होगा । कम्प्यूटर तथा वीडियों टेप का महत्व बढ़ेगा और शिक्षा में जीवन के अनुभवों को जोड़ा जायेगा । शिक्षा में गुण और समानता दोनों की प्राप्ति संभव होगी क्योंकि उच्चशिक्षा मात्र विश्वविद्यालय की जाति नहीं अपितु उसका विकास विश्वविद्यालय की परिधि से बाहर होगा ।

भविष्योन्मुखी शिक्षा का प्रमुख तत्व राष्ट्रीय स्तर पर योजना व विकास निर्माण है । विद्यार्थियों में मूल्य शिक्षा के संवर्धन व विकास के लिये भविष्य शिक्षा का सहारा लिया जाना आवश्यक है । भविष्य शिक्षा न केवल कम्प्यूटर व सूचना क्रान्ति तक ही सीमित है, बल्कि इसके माध्यम से बालकों में बेहतर जीवन जीने की कला का भी विकास होता है । जीवन मूल्यों का शिक्षा प्रणाली में प्रवेश परिवार के माध्यम से ही हो सकता है । विद्यालय में बालक के आदतों का निर्माण सम्भव हो सकता है ।

9.17 भावी भारत में विद्यालय

वर्तमान में विद्यालय औपचारिक शिक्षा के ऐसे केन्द्र है, जहां विद्यार्थी एक निश्चित समय तक बंधे रहते है और निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार अध्यापक उनके मस्तिष्क में जानकारी भरने का कार्य करते है । इवान इलीच ने "Deschooling Society" तथा रेमन ने

"School is dead" नामक पुस्तकों के माध्यम से भविष्य में विद्यालय विहीन समाज की कल्पना की है । भविष्य में निर्विद्यालयीकरण के स्थान पर निरोप साधन बनेंगे ।

विद्यालय विद्यार्थियों को नई जानकारी देने के माध्यम बनेंगे तथा अभिष्ट गुणों व व्यावहारिक कौशलों का विकास करेंगे । विद्यालय श्यामपट्ट अभियान के अनुरूप सभी आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित होंगे । विद्यालयों में परम्परागत कठोरता को छोडकर व्यावहारिकता लचीलापन व उपयोगिता लानी होगी ।

भावी भारत में कक्षा कक्ष

नई शिक्षा नीति 1986 के प्रावधान के अनुरूप श्यामपट्ट अभियान के अन्तर्गत जिन न्यूनतम सुविधाओं का उल्लेख किया गया है । उन्हें सम्पन्न किया जायेगा । सूचना तकनीकी के क्षेत्र में हो रही क्रान्ति ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है । ऐसे में यदि कक्षा-कक्षों को इन्टरनेट से जोड़ दिया जाता है तो विद्यार्थी उस पर उपलब्ध पाठों के सहारे पढ़ाई कर सकते हैं।

भावी भारत में अध्यापक

अध्यापक महत्व भविष्य शिक्षा में बढ़ेगा । वह अपनी परम्परागत भूमिका को छोडकर नवीन भूमिकाओं का निर्वाह करेगा । इस संदर्भ में डॉ.पी.एल. वर्मा का कथन उल्लेखनीय है । अध्यापक की भूमिकाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन होंगे । उसकी भूमिका विद्यार्थियों को अधिकाधिक ज्ञान एवं कौशलों के विकास के लिये प्रेरित करेंगे । वह बहुमाध्यम उपागम का प्रयोग करके अपने अधिगम को अधिक प्रभावशाली बनायेगा । वह केवल ज्ञान का हस्तान्तरण करने वाला न होकर विद्यार्थियों को सीखने के नये अवसर प्रदान करेगा । उनके नैतिक पक्षों को समझते हुये उनके मार्गदर्शन की भूमिका का भी निर्वहन करेगा ।

भावी भारत में शिक्षण विधियाँ

1. शिक्षण अधिगम में बहुमाध्यम उपागम (Multi-media approach) का महत्व बढ़ेगा।
2. शिक्षण की अपेक्षा अधिगम पर बल होगा ।
3. अभिक्रमित अधिगम के माध्यम से भी छात्र शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे ।
4. शिक्षण में दृष्य-सामग्री का महत्व बढ़ेगा ।
5. शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में बच्चों की सक्रिया भागीदारी होगी ।

भावी भारत में अनुशासन

आज भारत में नैतिक मूल्यों में निरन्तर गिरावट आ रही है । दूरदर्शन, मीडिया आदि भी हिंसा प्रधान कार्यक्रमों के जरिये विद्यार्थियों के भावों से खिलवाड़ कर रहे हैं । घर व समाज में आज प्रत्येक व्यक्ति नैतिक मूल्यों की गिरावट से परेशान है । इसके लिये दूरदर्शन व सिनेमा पर इन मूल्यों को पुनर्जीवित करने का प्रयास करना चाहिये क्योंकि श्रृव्य-दृश्य साधनों के माध्यम से मूल्य शिक्षा का संदेश समाज को दिया जा सकता है । दूरदर्शन पर केवल हिंसात्मक कार्यक्रम ही न दिखाये जायें बल्कि मनोवैज्ञानिक रोचक व मूल्यों के आत्मसात कराने वाले कार्यक्रम दिखाये जाने चाहिये ।

अन्त में इतना ही कहा जा सकता है कि आने वाला समय बहुत चुनौतीपूर्ण होगा । हमें दिशा में कई कारगर प्रयत्न करने होंगे । यदि अभी से इस प्रकार की स्थितियों को नियन्त्रित करने का प्रयास नहीं किया जायेगा तो भविष्यमिति के कारण ही हम भावी चुनौतियों का पूर्वानुमान समय रहते लगा उनका सामना करने के लिये प्रयत्न कर सकते है ।

9.18 विकास की प्रवृतियाँ

पिछले कुछ दशकों से मानवता निरन्तर संघर्षरत है । आज महिला, अल्पसंख्यक तथा आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक रूप से वंचित का पुन: आविर्भाव हो रहा है । यह पुन: आर्विभाव सभी देशों के मध्य अपना केन्द्र बना रहा है । अल्पसंख्यक का बहुसंख्यक जाति के विरोध में जाति अधिकार जिसके हाथ में है तथा अधिकार से वंचित के मध्य संघर्ष, इस प्रकार के वर्ग स्पष्टत: बता रहे हे कि आज समरूपता के स्थान पर विविधता, समरूपता के सानि पर अनेकत्व भिन्नता के स्थान पर अभिन्नता ही भविष्य के विकास की प्रवृत्तियाँ होनी चाहिये ।

आज परस्पर एक दूसरे पर निर्भर देशों के एकीकरण के रूप में एक विश्व उभर कर आ रहा है । पूर्व में अपने-अपने सांस्कृतिक परिवेश में रहने वाला व्यक्ति अब विश्व नागरिक के रूप में उभर रहा है । विश्व नागरिकता का माध्यम संप्रेषण यांत्रिकी. यात्रा, व्यापार तथा पारिस्थितिक असन्तुलन व प्राकृतिक स्त्रोतों के प्रति संवेदनशीलता है किन्तु इसके साथ ही सांस्कृतिक विविधता की भिन्नता भी रहेगी । आज विभिन्न देशों को विश्व एकता की दृष्टि से सांस्कृतिक धर्म, भाषा तथा जातिय समूह की विविधता से सम्बन्धित चुनौतियों का सामना करना है ।

9.19 पर्यावरण एवं जनसंख्या

केवल अंश मात्र तात्कालिक लाभ के लिए प्राकृतिक स्त्रोतों के लिए प्राकृतिक स्त्रोतों के अन्धाधुन्ध दोहन का परिणाम जल की कमी, वनविहीनता की स्थिति, आणविक शक्ति के दुष्प्रभाव रेडियो धर्मिता का प्रदूषण, भूमि की विकसित, विभिन्न पशु व विभिन्न वनस्पतियों का तेजी से विलोपन, तेजाब की वर्षा, औद्योगिक कचरे की बढ़ोतरी आदि जो मानव जीवन के लिए खतरों का अपार विस्तार कर रहे हैं । इन समस्याओं की वृद्धि तेजी से हो रही है । किन्तु इनको सुलझाने की गति अति धीमी हैं । विकासशील देश में विकसित देशों में इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित प्रतिमानों का ज्यों का त्यों अनुकरण कर रहे हैं । परिणामस्वरूप जलवायु-विषयक परिवर्तन, ओजोन परत की क्षति जल व वायु प्रदूषण तथा अन्य समस्याओं में वृद्धि हो रही है ।

इसको बचाने के लिए शिक्षा की भूमिका आर्थिक तथा परिस्थितिकी संपोषित भविष्य को सुरक्षित करने की है । जो जीवनमूल्यों के प्रतिसकारात्मक अभिवृद्धि के रूप में उपस्थिति है । अर्थात् जो जीवनमूल्यों की पुन: अवस्थिति को इन खतरों से बचा सकती है । आर्थिक, सामाजिक तनाव तथा असामानता से संबधित समस्याओं जनसंख्या की अपार वृद्धि के कारण ही है । जिसका बहुत बड़ा भाग युवा पीढ़ी का है । प्रत्येक प्रकार की प्रगति के लिए यही मात्र एक निर्णयात्मक शक्ति के रूप में है । इसके संबंध में दो विकल्प है । युवा पीढ़ी के इस बड़े भाग को शैक्षिक प्रक्रिया द्वारा समाज में सक्रिय योगदान कर्त्ता के रूप में परिवर्तित किया जाये

अथवा उपयुक्त शिक्षा के अभाव में यूं ही तूफानी नदी के रूप में असमानता के गड्डे में गिरने को छोड़ दिया जाये ।

9.20 मूल्यांकन प्रश्न

1. क्या परिवर्तन के लिये शिक्षा आवश्यक है?
2. शिक्षा का भविष्योन्मुखी होना क्यों आवश्यक है?
3. ज्ञान का विस्फोट से क्या तात्पर्य है?
4. शिक्षा किस प्रकार मानव के निर्माण में सहायक है?
5. भविष्योन्मुखी शिक्षा के ढांचे के लिये महत्वपूर्ण आधार कौन-कौन से हैं?
6. आज के विकास की कौन-कौन सी प्रमुख प्रवृतियां है? इनका भविष्य की शिक्षा के साथ किस प्रकार तालमेंल बैठाया जा सकता है ।
7. शिक्षा के आधार पर भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करते हुये भारतीय समाज के भविष्य शासन को स्पष्ट कीजिये?

9.21 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह आर: एजूकेशन इन द ट्वन्टी फर्स्ट सेन्चुरी ऐशिया पेसिफिक पर्सपेक्टिक्स, यूनेस्को ।
2. मॉलनार टी: द फ्यूचर ऑफ एजूकेशन, फ्लीट पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, न्यूयॉर्क 1991
3. एन.आर.स्वरूप सक्सेना: शिक्षा सिद्धान्त आर.एल.बुक डिपो, मेरठ 2008
4. विजय सूद: आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा, टण्डन पब्लिकेशन, लुधियाना ।
5. गिरिश पचौटी: शिक्षा सिद्धान्त, लायल बुक डिपो, मेरठ 2005
6. दुबे श्याम नारायण: 'शिक्षा समाज और भविष्य' राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 1994
7. चतुर्वेदी: शिक्षा के रूप एवं सांस्कृतिक धरोहर, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर 2005
8. पी.डी.पाठक व त्यागी: भारतीय शिक्षा सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 2007
9. एम.पारीक व रजनी शर्मा: उदीयमान भारतीय समाज व शिक्षा, शिक्षा प्रकाशन 2004
10. पासी बी.के. एवं साहू पी.के.: फ्यूचर स्टडीज, नेशनल साइकोलोजिकल कॉरपोरेशन, आगरा 1991
11. रूहेला, सत्यपाल, भविष्यशास्त्र तथा शिक्षा का भावी स्वरूप एल.के.ओड. (सम्पादित) शिक्षा के नूतन आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1988 ।
12. दुबे. श्यामाचरण: शिक्षा समाज और भविष्य, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली- 1994
13. मॉलनार, टी: द फ्यूचर ऑफ एजूकेशन, प्लीट पब्लिशिंग कारपोरेशन, न्यूयार्क 1991
14. पासी, बी.के. एवं साहू पी.के. प्यूचर स्टडीज, नेशनल, साइकोलॉजीकल कॉरपोरेशन, आगरा 1991

इकाई-10

शिक्षा और स्त्रियों की परिस्थिति / स्त्री शिक्षा और लैंगिक असमानता

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 शिक्षा और स्त्रियों की परिस्थिति

10.3 स्त्री शिक्षा के पिछड़ने के कारण

10.3.1 पारिवारिक एवं सामाजिक

10.3.2 विद्यालयी समस्या

10.3.3 विषय वस्तु व शिक्षण विधियों से सम्बन्धित समस्याऐं

10.4 सामाजिक एवं सांस्कृति मूल्यों व उनका स्त्री शिक्षा पर प्रभाव

10.4.1 ग्रामीण परिवेश

10.4.2 शहरी परिवेश

10.4.3 पिछड़ा वर्ग

10.5 स्त्री शिक्षा की स्थिति में परिवर्तन

10.6 स्त्री शिक्षा और लैंगिक असमानता

10.6.1 लिंग असमानता का अर्थ

10.6.2 लिंग असमानता के कारण

10.7 शिक्षा द्वारा लैंगिक समानता

10.8 सारांश

10.9 मूल्यांकन प्रश्न

10.10 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप-

- शिक्षा व वर्तमान में स्त्रियों की परिस्थिति की व्याख्या कर सकेंगे ।
- स्त्री शिक्षा के पिछड़ेपन के कारणों को जान सकेंगे ।
- स्त्री शिक्षा के पिछड़ेपन के पारिवारिक, सामाजिक, विद्यालयी व विषयवस्तु से संबधित कारणों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का स्त्री शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख कर सकेंगे।

- ग्रामीण, शहरी व पिछड़ा वर्ग परिवेश का स्त्री शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या अपने शब्दों में कर सकेगें ।
- वर्तमान में स्त्री शिक्षा की स्थिति में हुये परिवर्तन को जान सकेंगे ।
- लिंग असमानता के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- लिंग असमानता के कारणों को जान सकेंगे ।
- शिक्षा द्वारा लैंगिक समानता कैसे लायी जा सकती है अपने सुझाव दे सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति व पौराणिक ग्रंथ इस बात के साक्षी है कि भारतवर्ष में अनादिकाल से ही स्त्री को सम्मानीय स्थान दिया गया है । भारतीय संस्कृति में स्त्री के माँ, देवी, गृहणी, अर्द्धांगिनी कहकर पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे । समय के साथ स्त्रियों की स्थिति में काफी बदलाव आया । विदेशियों के आक्रमण के कारण स्त्री, पुरूष प्रधान समाज में अबला बन कर रह गयी । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज के रूढ़ीवादी दृष्टिकोण व मान्यताएँ नष्ट होने लगी । स्त्री शिक्षा के प्रति भारतवासियों की रूचि बढ़ने लगी । स्त्री शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुये पंडित नेहरू ने कहा कि 'एक लड़के की शिक्षा केवल एक व्यक्ति की शिक्षा है लेकिन एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है ।' विश्वविद्यालय आयोग ने भी स्त्री शिक्षा के महत्व को दर्शाते हुये स्पष्ट किया कि 'शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित लोग नहीं हो सकते है यदि सामान्य शिक्षा को स्त्रियों या पुरूषों तक सीमित करने का प्रश्न हो तो यह मौका स्त्रियों को देना चाहिये स्वत: यह शिक्षा भावी संतान तक पहुंचेगी ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्री जीवन के इतिहास में कई उतार-चढाव आये । हमारे देश के समाज सुधारकों जैसे राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी. जवाहरलाल नेहरू आदि ने महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु उन्हे शिक्षित करने हेतु काफी प्रयास किये फिर भी स्त्रियों की शैक्षिक व सामाजिक स्थिति में अधिक संतोषजनक बदलाव नहीं आया लेकिन उस समय किये गये प्रयास बहुत महत्वपूर्ण थे ।

भारत में नवीन समाज की पुर्नरचना करने में स्त्रियों के सक्रिय योगदान करने की दृष्टि से संविधान में स्त्रियों को पुरूषों के समान स्थान दिया गया । सन् 1962 में श्रीमती हंसा मेंहता समिति, 1964- 1966 में शिक्षा आयोग ने 1970 में राष्ट्रीय समिति ने स्त्री शिक्षा के महत्व पर अपने-अपने सुझाव प्रस्तुत किये । आज आधुनिक विश्व में स्त्रियाँ हर क्षेत्र में पुरूषों के समान उत्तरदायित्व का निर्वहन कर रही है । स्त्री शिक्षा के प्रति बदलते दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप प्रत्येक वर्ग के लोग आज राष्ट्रीय जीवन में स्त्री शिक्षा के महत्व को सहर्ष स्वीकार कर रहे हैं । उपर्युक्त समितियों व आयोग की अभिशंसा के अनुरूप स्त्री शिक्षा के लिये सरकारी व गैर सरकारी प्रयास किया जा रहे है ।

शिक्षा मानव संसाधन के विकास का महत्वपूर्ण साधन है इसीलिये भारत में स्त्रियों के सबलीकरण हेतु शिक्षा को एक महत्वपूर्ण कारक माना गया है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री शिक्षा हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(1), 16(1), 16(2) में उल्लेखित है कि किसी भी नागरिक से लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा । भारतीय संविधान की धारा 15 के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने नारी शिक्षा के प्रसार के लिये उल्लेखनीय उत्साह दर्शाया । सरकार द्वारा स्त्री शिक्षा हेतु प्रभावशाली कदम उठाये गये । वर्ष 1949-50 के प्राथमिक विद्यालय में बालिकाओं की संख्या का प्रतिशत 28 मात्र था जो कि 1955-56 में 4%0 तक पहुँच गया ।

सारगर्भित रूप में यह कहा जा सकता है कि महिलाओं की परिस्थिति को भारतीय इतिहास के परिपेक्ष्य में जानना बहुत आवश्यक है तभी हम आधुनिक महिलाओं की स्थिति के कई सारे पहलुओं को ठीक प्रकार से समझ सकेंगें ।

10.2 शिक्षा और स्त्रियों की परिस्थिति

वैदिक काल में सामाजिक व्यवस्था पुरूष प्रधान थी । घर पर पुरूष वर्ग ही परिवार का लालन पालन व व्यवस्था करता था । भारत जैसे पुरूष प्रधान युग में उस समय और वर्तमान में भी कन्या जन्म को उल्लास का प्रसंग नहीं माना जाता है । पुत्र प्राप्ति हेतु लालायित रहते है ।

वैदिक काल में महिलाओं का विशिष्ट स्थान था । उन्हे विद्या अध्ययन के अवसर दिये जाते थे। पुत्रियों का उपनयन सरकार किया जाता था । उन्हे वेद पढ़ने की स्वतंत्रता थी । वेद की ऋचाओं के रचियता में कई नारियों के नाम उल्लेखित है जैसे लोपामुद्रा, उर्वशी, विश्वावरा धोषा आदि । उस युग में स्त्रियों को पढ़ने पढ़ाने की स्वतंत्रता थी । उस युग में बालिकाओं को दो विभागों में बाँटा गया था । ब्रह्मवादिनी व सद्योद्वा छात्रा तत्वज्ञान प्राप्ति में प्रयासरत रहती थी। जबकि सद्योछा 15-16 वर्ष की आयु तक अर्थात विवाह होने तक अभ्यास करती थी । मैत्रयी गार्गी, आत्रेयी जैसी विदुषी नारियों की कीर्ति गाथा हम अभी भी पढ़ते हैं । स्त्री शिक्षिका, गुरूपत्नी स्त्री शिक्षा के अस्तित्व के प्रमाण प्रस्तुत करती है । स्त्री शिक्षिका को उपाध्याय तथा गुरूपत्नी को उपाध्यायिनी कहा जाता था । वैदिक काल में स्त्रियों को विद्याअध्ययन का पूर्ण अधिकार था। बालिकाओं को घर में ही शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था थी । गुरूकुल आश्रमों में लड़कियों को शिक्षा हेतु नहीं भेजा जाता था ।

भारत में मुस्लिम शासन के समय स्त्री शिक्षा में उल्लेखनीय परिवर्तन आया । उस समय स्त्री शिक्षा का ह्रास हो गया । पर्दाप्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा जैसी सामाजिक कुरितियाँ पनपी और सुरक्षा की दृष्टि से स्त्रियों को घर की चार दीवारी में वेद का ज्ञान दिया गया । फलस्वरूप स्त्रियाँ फिर शिक्षा से वंचित हो गयी । उसी का परिणाम है कि आज भारत अशिक्षित, अमर्यादित कुरितियो का देश बनकर जनसंख्या विस्फोट जैसी गंभीर परिस्थितियों में पहुँच गया है।

वर्तमान समय में स्त्रियों कीं शैक्षिक परिस्थिति मध्यकालीन युग की महिलाओं से बेहतर कही जा सकती है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने सभी क्षेत्रों में प्रगति की परन्तु स्त्री शिक्षा के विकास को हम बहुत अच्छा नहीं कह सकते । निरक्षरता के कारण महिला सर्वगुण सम्पन्न होते हुये

भी अपने आप को सिद्ध नहीं कर सकी । पुरूष प्रधान भारतीय समाज में पुरूषों की संकीर्ण मानसिकता के कारण स्त्रियों को लाचार बनाकर रख दिया क्योंकि अधिकांश पुरूष यह नहीं चाहता कि समाज में स्त्रियों का सम्मान व वर्चस्व बढ़े ।

देश के विकास का सीधा संबंध वहाँ की जनसंख्या के शिक्षित होने से होता है । महिलायें कुल जनसंख्या का लगभग आधा होती है इसलिये यदि देश की आधी जनसंख्या (स्त्रियाँ) निरक्षर हो तो वह समाज कैसे प्रगति कर सकता है ।

भारत के विद्वानों, समाज सुधारकों ने नारी शिक्षा की महत्ता को जाना और नारी शिक्षा पर बल देते हुये अपने प्रयास आरम्भ किये । उसी के परिणामस्वरूप वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा में बढ़ोतरी हुयी जहाँ पहले परिवारों में लड़कियों को पढ़ने नहीं भेजा जाता था व यह माना जाता था कि लड़की पढ़लिख कर क्या करेंगी? उस पर खर्च क्यो किया जाये उसे कौन सी नौकरी करनी है। उसे तो केवल गृहस्थी सम्भालनी है लेकिन समाज अब इस बात को स्वीकारता है कि नारी शक्ति महान है । नारियाँ हर क्षेत्र में अपने आप को श्रेष्ठतम साबित करती है । उनका भी देश के विकास में उतना ही योगदान है जितना की पुरूषों का ।

1958 में महिला शिक्षा राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गयी । समिति का सुझाव था कि लड़कियों को भी लड़कों के समान शिक्षा दी जानी चाहिये । इस समिति के अनेक सुझाव सरकार ने स्वीकार किये । महिला शिक्षा राष्ट्रीय समिति (1958) के मुख्य सुझाव निम्नलिखित थे ।

1. लड़कियों के लिये प्राथमिक स्तर की शिक्षा को बढ़ावा दिया जाये ।
2. शिक्षा में बाधक पारम्परिक नियमों को समाप्त किया जावे ।
3. महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति अधिक हो ।
4. माध्यमिक स्तर तक लड़कियों के लिये पृथक विद्यालयों को खोला जाये ।
5. जब तक 6-11 वर्ष की 80 प्रतिशत बालिकाओं का विद्यालय में नामांकन न हो जाये तब तक केन्द्र द्वारा राज्यों को सहायता दी जाये ।
6. बालक व बालिकाओं के शिक्षा के अन्तराल को शीघ्र समाप्त करें ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा लड़कियों की शिक्षा हेतु विशेष आर्थिक सहायता प्रदान करना भी उल्लेखित है ।

बालक व बालिकाओं के शिक्षा के बीच अन्तर के कारणों तथा उसके निराकरण के लिये 1963 में पाठ्यक्रम विभेदीकरण समिति की स्थापना की । इस समिति ने सुझाव दिया कि प्रारम्भिक स्तर पर तो लड़के व लड़कियों के लिये एक ही विषयवस्तु होनी चाहिए लेकिन माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिये गह विज्ञान व लड़कों के लिये दस्तकारी हथकरघा जैसे विषय समान रूप से चलाये जाने चाहिये ।

भारतीय शिक्षा आयोग 1964-66 ने महिलाओं की शिक्षा तथा उससे जुड़ी समस्याओं पर विस्तृत विचार किया और सुझाव दिया कि-

महिला शिक्षा को मुख्य कार्यक्रम के अन्तर्गत रखना चाहिये । स्त्री शिक्षा में बाधक तत्वों को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिये । स्त्री व पुरूष के बीच शिक्षा की असमानता को दूर कर देना चाहिये ।

1986 में पुन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण किया गया जिसमें स्त्री पुरूष के समान शिक्षा के अवसर प्रदान करने की बात दोहरायी गयी और यह बात कही गयी कि लड़कियों की शिक्षा न केवल सामाजिक न्याय हेतु होनी चाहिये बल्कि इसलिये ताकि समाज में परिवर्तन व विकास द्रुतगति से हो ।

इस प्रकार स्त्री शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आया । स्त्री शिक्षा को विकास से जोड़ने की बात सोची जाने लगी । यह अनुभव किया जाने लगा कि देश का वांछित विकास तभी संभव होगा जब स्त्री शिक्षित होगी । यही कारण है कि मानव अधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में उल्लेख किया कि शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है । शिक्षा का अवसर बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से मिलना चाहिए ।

भारतीय संविधान में 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जिसे एक दशक में पूरा करने का प्रण लिया गया । स्त्री शिक्षा के पीछे रहने का आभास तब होता है जब हम शिक्षा के विविध स्तरों पर ध्यान देते हैं । स्त्री शिक्षा के आकड़ों का ग्राफ पिछले वर्षों के मुकाबले बढ़ा है लेकिन हमें आशातीत सफलता अभी नहीं मिली है । स्त्री शिक्षा में प्रगति तो हुयी है लेकिन स्त्रियों व पुरूषों की शिक्षा का अन्तराल बना हुआ है ।

स्वमूल्यांकन के प्रश्न

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्त्री शिक्षा हेतु कौन-कौन से आयोग गठित हुये ।
2. भारतीय शिक्षा आयोग ने स्त्री शिक्षा के विकास हेतु क्या-क्या मुख्य सुझाव दिये ।
3. वैदिक काल में महिला शिक्षा की क्या परिस्थिति थी ।

10.3 स्त्री शिक्षा के पिछड़ने के कारण

भारत सरकार व राज्य सरकारों द्वारा महिला शिक्षा पर पर्याप्त व्यय करने के बाद भी महिला शिक्षा में अशातीत सफलता नहीं मिल पा रही है । महिला शिक्षा के पिछड़ने के कई कारण है ।

10.3.1 पारिवारिक व सामाजिक कारण

(i) परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति:

महिला शिक्षा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बाधक तत्व माता पिता की निर्धनता है । गरीबी के कारण माता-पिता अपनी सभी संतानों को पढ़ाने में असमर्थ रहते है । विशेष रूप से बालिका शिक्षा के प्रति उदासीन रहते हैं ।

(ii) अशिक्षित माता-पिता

हमारे देश में ग्रामीण क्षेत्र में अधिकतर माता-पिता निरक्षर होते है उन्हे शिक्षा के महत्व की जानकारी नहीं होती । उनकी यह धारणा होती है कि बालिकाओं को पढ़ाने से उन्हे अच्छे संस्कार नहीं दिये जा सकते । वे लड़कियों को घर से बाहर भेजने में संकोच करते है । वे शिक्षा देने का विरोध करते है उनकी यह संकीर्ण सोच होती है कि लड़कियाँ पराया धन होती है । विवाह के बाद दूसरे घर चली जाती है इसलिये उन पर शिक्षा में धन खर्च करना व्यर्थ समझते है । दूसरी भ्रांति यह होती है कि पढ़ी लिखी लड़की के लिये समकक्ष वर ढूढ़ना कठिन होता है जबकि गृहकार्य में निपुर्ण लड़की का विवाह अधिक सरल है । इसी संकीर्ण सोच के कारण माता-पिता अपनी लड़की संतान की शिक्षा के प्रति उपेक्षा भाव दर्शाते है ।

(iii) बाल विवाह व पर्दा प्रथा:

भारत में लम्बे समय से स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था । शिक्षा केवल नौकरी के लिये आवश्यक समझा जाता है ऐसी मान्यता रही है कि लड़कियों का कार्य घर परिवार सम्भालना होता है । आज भी अभिभावक लड़कियों को अच्छा वर प्राप्ति तक ही शिक्षा दिलवाना उचित समझते है । बाल विवाह व पर्दा प्रथा दोनो ही इस युग में स्त्रियों की शिक्षा में घोर बाधक है । नौकरी **(Employment)** परम्परागत रूप में स्त्रियों का घर से बाहर काम करना पारिवारिक सम्मान के विरूद्ध समझा जाता है । वे माता व पत्नी पहले है और उपार्जिका **(Earner)** बाद में। स्वतंत्रता से पूर्व तक स्त्रियाँ न के बराबर ही नौकरी करते देखी जा सकती थी ।

10.3.2 विद्यालयी समस्याएँ

(i) शैक्षिक सुलभता की अपर्याप्तता

ग्रामीण अंचलों में आवागमन के साधनों का अभाव रहता है । महिला शिक्षिकाएँ ऐसे स्थानों पर पैदल नहीं जा सकती । इससे लड़कियों की शिक्षा प्रभावित होती है । शिक्षण संस्थाओं की दूरियाँ, बालिका उपयोगी विविध विषयों की कमी, महिला शिक्षकों की कमी आदि ऐसे बाधक तत्व है जो बालिका शिक्षा को प्रभावित करते हैं ।

(ii) योग्य शिक्षिकाओं का अभाव

हमारे देश में योग्य महिला शिक्षकों का अभाव है । अनुभवी व प्रशिक्षित कुशल महिला शिक्षिका को तैयार करने में हम असफल रहते हैं । कुशल अध्यापिका के अभाव के कारण अनेक उपयोगी विषय जैसे गृहविज्ञान, चित्रकला, ललितकला आदि का सुचारू रूप से अध्ययन संभव नहीं हो पाता। कई योग्य व कुशल महिला शिक्षिकाएँ घर परिवार व विवाह उपरांत जिम्मेदारियों को निभाने के कारण उच्च शिक्षा व प्रशिक्षण लेने में असमर्थ रहती है ।

(iii) विद्यालय में भौतिक सुविधाओं का अभाव

गांवों में महिला शिक्षा की स्थिति बहुत चिन्ताजनक है । वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण भौतिक आवश्यकताएँ जैसे भवन, प्रयोगशाला, शौचालय आवागमन के साधन, सुरक्षात्मक प्रबंध के अभाव के कारण माता-पिता अपनी लड़कियों को विद्यालय भेजना उचित नहीं समझते।

(iv) सहशिक्षा विद्यालय समस्या

सरकार के लिये विभिन्न स्तरों पर छात्र-छात्राओं हेतु पृथक संस्थाएँ खोलना बहुत कठिन होता है इसीलिये सह शिक्षण संस्थान खोले जाते हैं, माध्यमिक स्तर पर लड़के व लड़कियों में भावनात्मक अस्थिरता के कारण माता-पिता अपनी लड़कियों को सह शिक्षा विद्यालयों में भेजने से कतराते हैं।

10.3.2 विषय वस्तु व शिक्षण विधियों से सम्बन्धित

(i) बालिका अनुकूल पाठ्यक्रम का अभाव

सभी सामान्य विद्यालय लड़के व लड़कियों के लिये एक जैसा पाठ्यक्रम लागू करते हैं। लड़कियों के लिये वह ज्ञान केवल परीक्षा उत्तीर्ण तक सीमित रहता है लड़कियों की रूचि, क्षमता अनुकूलता के विपरीत पाठ्यक्रमों से बालिका शिक्षा प्रभावित होती है । बालिकाओं के

लिये गृहविज्ञान, चित्रकला, ललितकला, संगीत, हस्तकला से सम्बन्धित विषय सभी विद्यालयों में उपलब्ध नहीं होते ।

10.4 सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों व उनका स्त्री शिक्षा पर प्रभाव

किसी भी राष्ट्र का चहुँमुखी विकास तभी संभव है जब वहाँ की महिलाओं को पुरूषों के समान बराबर की स्थिति में देखा जाये । भारत की आधी आबादी महिलाओं की है । देश की आधी आबादी के विकास के बिना हम अपने राष्ट्र को कैसे सुदृढ़ व पूर्ण विकसित कर सकते हैं । देश व समाज की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों ने महिला शिक्षा को अत्यधिक प्रभावित किया है जो निम्न प्रकार है :-

10.4.1 ग्रामीण परिवेश

भारत की एक बड़ी जनसंख्या गाँवों में रहती है । ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का प्रचार प्रसार शहरों की तुलना में कम है । लोग परम्परावादी, रूढ़िवादी विचारों में अधिक विश्वास करते है । आधुनिक विचारधारा का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत कम या हम यूं कहे कि बिल्कुल नजर नहीं आता जितना कि शहरी जनजीवन में दिखायी देता है । महिलाओं के निरक्षरता का कारण समाज में व्याप्त रूढ़िवादी परम्पराएँ, कुरितियाँ सामाजिक पिछड़ापन, धार्मिक मान्यताएँ, गलत रीतिरिवाज, अन्धविश्वास, गरीबी, अशिक्षा आदि है ।

ग्रामीण समाज में आज भी लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता है । उन्हे पराया धन समझकर उपेक्षित रखा जाता है । लड़कियों को बोझ समझकर उनके जल्दी विवाह कर दिये जाते हैं । परिवार में लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है । लड़कों की आवश्यकताओं को पहले पूरा किया जाता हैं । लड़कियाँ बचपन से ही घर के काम काज करने, अपने छोटे भाई, बहिनों को सम्भालने, गाय बकरियाँ चराने जाती हैं । इस सब कार्यों के बोझ तले लड़कियाँ पढ़ाई की बात न तो सोच पाती हैं व न ही पाठशाला जाती हैं और कुछ जो पाठशाला तो जाती हैं लेकिन घर के कामकाज में दबकर रहकर अपनी पढ़ाई पर ध्यान नहीं दे पाती है । कुछ पिछड़े व रूढ़िवादी परिवार तो लड़कियों का पढ़ना ही अच्छा नहीं मानते । उनकी यह सोच होती है कि लड़की को भविष्य में नौकरी थोड़े ही करनी है उसे तो घर के कामकाज में ही दक्ष होना चाहिऐ ।

ग्रामीण क्षेत्र के माता-पिता यह भी सोचते हैं कि यदि लड़की पढ़लिख गयी तो उसके दिमाग ऊपर चढ़ जायेंगे और योग्य वर ढूंढने में परेशानी होगी । ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता का प्रतिशत कुल जनसंख्या का 1/4 भाग है । स्वतंत्र भारत में वे तीन चौथाई निरक्षर है । भारत के गरीब अभिभावक लड़कियों को पढ़ाने में असमर्थ होते है । बालिकाऐं बचपन से ही स्कूल जाने के बजाय दूसरों के घरों में झाड़ू पोछा, बर्तन कर अपने परिवार की आर्थिक मदद करती है। गरीबी व भुखमरी से विवश होकर कई परिवार की बालिकाएँ अपनी अभिभावकों के साथ मजदूरी करने जाती है ।

महिला साक्षरता की दृष्टि से राजस्थान राज्य सबरने पिछड़ा हुआ है । यहाँ महिला साक्षरता का 20.84 प्रतिशत है । 1991 की जनगणना सर्वेक्षण में देखा गया कि देश की कुल 84 करोड़ जनसंख्या के 33 करोड़ 22 लाख निरक्षरों में से बीस करोड़ 21 लाख महिलाएँ

निरक्षर थी । ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी 75% से अधिक महिलाएँ निरक्षर है । निरक्षर महिलाएँ ही बाल विवाह, पर्दाप्रथा, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, तलाक, वैश्यावृत्ति व बलात्कार जैसे हादसों का शिकार होती है । यदि हमें महिला विकास करना है तो निरक्षरता को जड़मूल से समाप्त करना होगा ।

10.4.1 शहरी परिवेश

स्त्री शिक्षा को यदि शहरी परिवेश से देखा जाये तो हम पाते हैं कि शहरी माता-पिता अपने पुत्र व पुत्री के लिये समान रूप से शिक्षा की व्यवस्था करते है । समाज की सोच भी व्यापक है । समाज पढ़ा लिखा व अच्छे विचारों को मान्यता देता है । लड़कियाँ लड़कों के समान सभी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के लिये स्वतंत्र है । उन पर सामाजिक बंधन व मान्यताएँ उतनी जकड़ी हुयी नहीं है जितनी ग्रामीण परिवेश में। निरक्षरता का प्रतिशत भी शहरी क्षेत्र में कम है । संविधान के अनुच्छेद 14 में 6-14 वर्ष तक के सभी बालक, बालिकाओं को बिना किसी भेदभाव के अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा देना दशार्या गया है । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के 74 वर्षों बाद भी हम इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये है ।

यशपाल समिति के आकंलन के अनुसार पहली कक्षा में प्रवेशित सौ लड़कियों में से चालीस लड़कियाँ पांचवी कक्षा तक पहुँच पाती है । पाँचवी पास लड़कियाँ उनमें से केवल 18 ही होती है । विश्वविद्यालय स्तर तक मात्र तीन प्रतिशत लड़कियाँ पहुँच पाती है ।

1991 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता कुल साक्षरता का 52.11% व पुरूषों की 63.86% साक्षरता के मुकाबले महिलाओं का साक्षरता 39.42% आंकी गयी । शहरों में शिक्षित नारी उपभोक्तावादी संस्कृति का शिकार बन रही है । नारी उत्पीड़न का एक प्रमुख रूप यौन उत्पीड़न (Sexual Harrasment) है । स्त्रियाँ जहाँ कार्य करती है वहाँ उनके मालिक व बास कुछ स्त्रियों का यौन शौषण करते पाये जाते हैं उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है उन्हे परेशान किया जाता है । झूठे आरोप लगाकार उन्हे फंसाया व तंग किया जाता है जिससे वह या तो नौकरी छोड़ देती है या समर्पण कर देती है । होटल में काम करने वाली महिलाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने हावभाव व पहनावे से ग्राहकों को आकर्षित करें । महिलाओं पर घर में किये जाने वाले अपराधों को घरेलू मामला समझ कर पुलिस हस्पक्षेप नहीं करती और स्त्रियाँ भी उन्हे बाहर उजागर करना उचित नहीं समझती ।

10.4.3 पिछड़ा वर्ग

शिक्षा सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण साधन है । शिक्षा के द्वारा ही समाज में व्याप्त बुराईयाँ, कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ, समस्याओं का निवारण संभव है । संविधान के अनुच्छेद 14 में यह व्यवस्था की गयी है कि 6-14 वर्ष तक के सभी बालक, बालिकाओं को बिना किसी भेदभाव के अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा दी जायेगी । ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी 75% से अधिक महिलाऐं निरक्षर है । इनमें भी निम्न गरीब तबके अनुसूचित और अनुसूचित जनजाति की 9%0 से अधिक महिलाएँ निरक्षर है । देश के 17 जिलों में साक्षरता 5%0 से कम है तथा 73 जिलों में महिला साक्षरता 2%0 से भी कम है ।

अनुसूचित जाति की लाखों महिलाएँ सबसे अधिक शिक्षा से वंचित है । अनुसूचित जाति के बच्चो के प्राथमिक कक्षाओं 1 से 4 तक नामांकन दर केवल 15.79 प्रतिशत है इनमें

39.46 कन्याएँ हैं। इनमें से भी प्राथमिक शिक्षा के बाद आधी लड़कियाँ स्कूल छोड़ देती है । स्कूल छोड़ने वालों में सर्वाधिक 68.73% जनजाति की लड़कियाँ है । इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण बालिकाएँ विशेषकर अनुसूचित व पिछड़ी जातियों की साक्षरता दर आज भी काफी कम है ।

सामाजिक व सांस्कृतिक रूढ़ियाँ भी बालिका शिक्षा की राह में अवरोध पैदा कर रही है । अनुसूचित जाति व जनजाति में तथा अल्पसंख्यक समुदाय में बालिका शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता । माता-पिता स्वंय निरक्षर होते हैं वे परम्परावादी मान्यताओं में ज्यादा विश्वास रखते है । इन समाजो में लड़कियों का विवाह प्राय: छोटी उम्र में कर दिया जाता है । माता-पिता के घर में भी लड़कियाँ घर के कामकाज में हाथ बटाती है । सामाजिक रीति रिवाजों के अनुसार लड़कियाँ घर परिवार सम्भालना, बच्चे पैदा करना, उनकी देखभाल तक ही सीमित रह जाती है । ऐसे में आवश्यकता है माता पिता की मानसिकता को बदलना ताकि वे अपनी बालिकाओं को शिक्षा हेतु विद्यालय भेजने का मन बना सके ।

NCERT के पाँचवे सर्वे (1989) के अनुसार देश के 6%0 प्राथमिक स्कूलों में सभी कक्षाओं 1 से 4 के लिये मात्र एक अध्यापक है । देश के 5.29 लाख प्राथमिक स्कूल में आधे स्कूलों में स्वच्छ पेयजल की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है । 85% विद्यालयों में शौचालय नहीं हैं। 71000 विद्यालयों के भवन हेतु इमारत नहीं है ।

स्वमूल्यांकन के प्रश्न

1. स्त्री शिक्षा के पिछड़ने के क्या-क्या मुख्य कारण है?
2. उन विद्यालयी समस्याओं का उल्लेख करें जो स्त्री शिक्षा में बाधाएँ उत्पन्न करती है ।
3. ग्रामीण परिवेश के ऐसे कौन-कौन से सांस्कृतिक मूल्य है जो स्त्री शिक्षा को प्रभावित करते है।

स्त्री शिक्षा के विकास हेतु किये जा रहे प्रयास

बालिकाओं एवं महिलाओं के शैक्षिक उन्नयन हेतु राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से प्रयास किए गए, जो बालिका एवं महिला शिक्षा के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुए। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है ।

अनौपचारिक शिक्षा

केन्द्र प्रायोजित योजनान्तर्गत 6-14 वर्ष के विद्यालय न जाने के लिए वर्ष 1979-80 मार्च 1, 2011 तक अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम चलाया गया । शिक्षा के दायरे से छूट रहे कामकाजी बच्चों एवं एक बड़ी संख्या में बालिकाओं को चिह्नांकित करते हुए अनौपचारिक शिक्षा योजना के अन्तर्गत विकेन्द्रित प्रबंधन व्यवस्था द्वारा आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम की संबद्धता एवं अधिगम क्रियाओं में विविधता को अपनाकर सभी तक शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित करने हेतु छूट प्रदान की गई है । इस योजनान्तर्गत आवासीय क्षेत्रों तक शिक्षा सुविधा की पहुंच सुनिश्चित करने लचीली कार्य योजनाओं हेतु आवासीय शिविर विद्यालय वापिस चलो शिविर सेतु पाठ्यक्रम इत्यादि का प्रावधान है । इस योजना का यह नवीन रूप इन केन्द्रों को सामुंदायिक प्रबंधन व्यवस्था हेतु आदेशित करता है ।

महिला समाख्या: महिला समानता हेतु शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के उद्देश्यों को मूल पाठ रूप में क्रियान्वयन स्तर पर लाने हेतु महिला समाख्या योजना के अन्तर्गत शैक्षिक वातावरण सृजन कर ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा हेतु प्रेरित कर संगठित किया गया । वर्ष 1989 में इस योजना का विस्तार कुछ राज्यों में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की सहायता से किया गया ।

महिला संघ

महिला समाख्या योजनान्तर्गत प्रत्येक गांव में महिलाओं की बैठक हेतु जगह देने का प्रावधान है जहां पर महिलाएं मिलकर सामूहिक रूप से समस्याओं पर प्रकाश डाल सके, प्रश्न कर सके, भयमुक्त होकर अपनी-अपनी बात कह सकें, विचार कर सकें, समीक्षा कर सके, एवं सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आत्मविश्वास से अपनी आवश्यकताओं के बारे में विचार-विमर्श कर अपनी बात कह सकें । महिलाओं द्वारा उजागर की गई आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के आधार पर शैक्षिक अनुसमर्थन प्रदान करने हेतु प्रौढ़ शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, अनुसमर्थन सेवाएं, महिला शिक्षण केन्द्र और पूर्व बाल्यकाल एवं परिचर्चा केन्द्रों के चरणबद्ध तरीके से स्थापना की गई ।

ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड

वर्ष 1987-88 में प्राथमिक विद्यालयों को बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराना सुनिश्चित करने हेतु ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड की योजना प्रारम्भ की गई । वर्तमान में इसे सर्व शिक्षा अभियान में सम्मिलित कर लिया गया है । ऐसे विकास खण्ड जहां महिला साक्षरता दर कम है वहां पर इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालयों के क्षमता संवर्द्धन में अतिरिक्त महिला शिक्षक एवं शिक्षण अधिगम सामग्री की व्यवस्था करने का प्रावधान है । इस योजनान्तर्गत मुख्य रूप से महिला शिक्षकों की नियुक्ति पर जोर दिया गया इसके लिए वर्ष 1993-94 में योजना को पुन: संशोधित कर यह प्रावधान किया गया कि कम से कम 50 प्रतिशत शिक्षक महिलाएं होनी चाहिए ।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

कार्यक्रम योजना के समस्त पहलू लैंगिक और समानता पर मुख्य रूप से केन्द्रित हैं । यह कार्यक्रम कम-महिला साक्षरता दर वाले जिलों में लागू किया गया । यद्यपि डी.पी.ई.पी अन्तर्गत क्रमबद्ध परिवर्तन हेतु प्रयास किए गए इसके अन्तर्गत लैंगिक असमानता को दूर करने हेतु समेकित प्रयास किए गए, जैसे - योजना का नियोजन एवं प्रबंधन, बाल शिक्षण विद्या में सुधार, बालिका शिक्षा हेतु विशेष प्रयास एवं सामुदायिक जागरूकता एव भागीदारी हेतु कार्य योजना का निर्माण एवं प्रबंधन इत्यादि ।

परियोजना निर्माण, क्रियान्वयन और अनुश्रवण की सम्पूर्ण प्रक्रिया लैंगिक समानता के परिप्रेक्ष्य में की गई । वार्षिक कार्य योजनाओं में लैंगिक कार्यक्रम स्पष्ट रूप से उल्लेखित किए गए । कार्यक्रम के अन्तर्गत लैंगिक असमानता के पहलू को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया, राज्य एवं जिला स्तर पर लैंगिक समन्वयक की नियुक्ति की गई । कुछ राज्यों में ग्रामीण स्तर पर ग्राम शिक्षा समिति में महिला प्रतिनिधि का होना अनिवार्य रूप से प्राविधानित किया गया । सभी कार्यकर्ताओं का लैंगिक संवेदनशील कार्यक्रम एवं मुख्य एवं लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। शैक्षिक सुविधा उन्नयन के अन्तर्गत, बस्ती के निकट नवीन विद्यालय की स्थापना, पेयजल एवं

शौचालय सुविधा की व्यवस्था करना इत्यादि से बालिका नामांकन एवं ठहराव एवं दूरगामी प्रभाव पड़ेगा ।

सर्व शिक्षा अभियान

प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु देशव्यापी कार्यक्रम के रूप में सर्व शिक्षा अभियान के राष्ट्रीय कार्यक्रम के द्वारा प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रमों को सफलता प्राप्त हुई है । वर्ष 2007 तक सभी बच्चे पांच वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर सकें एवं लैंगिक असमानता दूर हो जाए । वर्ष 2010 तक सभी बच्चों को आठ वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा, उच्च शिक्षा प्राथमिक स्तर तक पूरी करने का लक्ष्य है ।

शैक्षिक रूप से पिछड़े विकास खण्डों (देश के लगभग एक तिहाई ब्लॉक) में से विशेष रूप से महिला शिक्षा के क्षेत्र के रूप में चिह्नांकित किए गए विकास खण्डों के लिए विशेष पैकेज का निर्माण किया गया जिसमें बालिका शिक्षा पर विशेष बल देते हुए विशेष सामुदायिक जागरूकता एवं स्थानीय आवश्यकतानुसार प्रयास किए गए इसके अन्तर्गत विद्यालय वातावरण, अनुसमर्थन सेवाएं, जैसे - पूर्व बाल्यकाल परिचर्या केन्द्र एवं सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्रारम्भिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में विशेष प्रयास किए गए ।

भविष्य के लिए योजनाएं

राष्ट्रीय कार्य योजना में दो तरफा रणनीति तैयार की गई है जिसके अन्तर्गत लैंगिक आधार को मुख्य धारा में लाना एवं विशेष योजनान्तर्गत बालिका और महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करना । प्रारम्भिक शिक्षा के सावैभौमिकरण हेतु सर्व शिक्षा अभियान एवं इसके अन्य भाग, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, लोक जुम्बिश कार्यक्रम, मध्यान्तर भोजन योजना के अन्तर्गत बालिकाओं को शिक्षा की मुख्यधारा में सम्मिलित करने का प्रावधान किया गया है । इन कार्यक्रमों के मुख्य क्षेत्र इस प्रकार है:

- बालिका शिक्षा को समर्थन प्रदान करने में समुदाय की सक्रियता सुनिश्चित करना विशेष रूप से गांव एवं विद्यालय में प्रगति का नियमित अनुश्रवण कर, शैक्षिक वातावरण तैयार करना ।
- योजना तैयार करने वालों, शिक्षकों और शैक्षिक प्रबन्धकों का प्रशिक्षण एवं लैंगिक संवेदीकरण कार्यक्रम का आयोजन । इस कार्यक्रम में बालिका शिक्षा के क्षेत्र पर विशेष बल दिया जाएगा ।
- कक्षा-कक्ष पाठ्य-पुस्तकों एवं शिक्षण अधिगम सामग्री को बालिका हेतु मित्रवत् बनाना ।
- विशेष प्रयासों की व्यवस्था करना ।

महिला एवं बालिका शिक्षा हेतु निर्धारित किये गए उपर्युक्त प्रस्तावित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु तीन कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, महिला समाख्या कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्रारम्भिक स्तर पर बालिका शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम और कस्तुरबा गांधी स्वतंत्र विद्यालय योजना । इन तीन योजनाओं के अतिरिक्त, माध्यमिक स्तर पर नवीन मुक्त बालिका शिक्षा योजना प्रस्तावित की गई । इस योजनान्तर्गत, निम्नांकित प्रावधान किये गए है:

- शैक्षिक रूप से पिछड़े 500 विकास खण्डों को चिह्नाकिंत कर माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का निर्माण करना । इसके लिए दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि

हेतु इस कार्य 5000 मिलियन रूपये की धनराशि का प्रावधान, 100 मिलियन रूपये प्रति विद्यालय की दर से किया गया है ।

- शैक्षिक रूप से पिछड़े विकास खण्डों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की कक्षा ix व x की बालिकाओं हेतु, दसवीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत 6577.76 मिलियन रूपये लागत की निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें वितरित करने का प्रावधान है ।

इन दो कार्य योजनाओं के समन्वय से लैंगिक असमानता को कम करने में किये गए प्रयासों से न केवल नामांकन ठहराव एवं सम्प्राप्ति में ही अन्तर आएगा, बल्कि विद्यालय का वातावरण भी लैंगिक समानता एवं संवदेनशीलता से युक्त होगा ।

10.5 स्त्री शिक्षा की स्थिति में परिवर्तन

प्रागैतिहासिक काल मनुवादी व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों से बेहतर थी । आर्यो की सभ्यता व संस्कृति के प्रचार प्रसार में स्त्रियों का विशेष योगदान था । उस समय स्त्रियाँ शिक्षा / ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने में समर्थ थी ।

प्राचीन इतिहास के विकास काल पर यदि नजर डाले तो यह तत्व सामने आता है कि यदि महिलाओ की भागीदारी को हटा दिया जाये तो इतिहास का स्वरूप ही बदल जायेगा । इतिहास बेबुनियाद, सारहीन, अर्थहीन लगने लगेगा । जैसे यदि रामायण से सीता, कैकयी, मंथरा, महाभारत से द्रौपदी, कुंती, गन्धारी भागवत कक्षा से देवकी, यशोदा, राधा, रूकमणी, गोपियाँ, मीरा के चरित्र को हटा दे तो राम व कृष्ण एक साधारण पुरूष रह जाते हैं ।

नारी शिक्षा का जीता जागता उदाहरण पण्डित मण्डन मिश्र के आने पर उनकी पत्नी का शंकराचार्य से तत्वज्ञान पर शास्त्रार्थ करना ।

शैक्षिक सुविधाओं के विकास हेतु सर्वप्रथम भारत सरकार का 4 नवम्बर, 1948 को राधाकृष्णन आयोग, विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की स्थापना की गयी । इस आयोग ने शिक्षित माता घर की भाग्य विधाता के आदर्श वाक्य को स्वीकार करते हुये स्त्री शिक्षा के विकास को सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताया । आयोग के अनुसार स्त्रियों को कुशल मातृत्व, सफल गृहणी, माँ अन्नपूर्णा, परिवार की सफल व्यवस्थापिका बनने के लिये यह आवश्यक है कि उसे गृह विज्ञान, अर्थशास्त्र, गृह प्रबन्ध, मातृ शिशु कल्याणकारी विषय विज्ञान व तकनीकी का प्रारम्भिक ज्ञान जैसे विषयों की शिक्षा उच्च प्राथमिकता के आधार पर दी जाये ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951-56 के आरम्भिक वर्षों में देश की साक्षरता दर मात्र 18.33% थी । तृतीय पंचवर्षीय योजना 1961-1966 में साक्षरता का दर 28.5%0 था । जिसमें पुरूष व स्त्री साक्षरता 40.4% व 15.3% थी । चौथी पंचवर्षीय योजना 1969-74 में महिला साक्षरता का प्रतिशत 21.97% रहा ।

उस समय प्रति हजार पुरूषों पर मात्र 440 महिलायें ही साक्षर थी । छठी पंचवर्षीय योजना 1980-1985 के शुरू में 1981 में साक्षरता का प्रतिशत 43.57 व 29.67% हो गया। इस काल में स्त्री शिक्षा को विशेष सफलता मिली । जिसमें पुरूष स्त्री साक्षरता प्रतिशत क्रमश: 56.38% व 29.67% हो गया । 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया । साथ ही तकनीकी व व्यावसायिक क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने पर विशेष

बल दिया गया । परिणामस्वरूप 1991 में साक्षरता का प्रतिशत 52.2% हो गया । पुरूष व स्त्री साक्षरता प्रतिशत भी बढ़कर क्रमश: 64.13% व 39.29% हो गया ।

इस प्रकार प्रति हजार पुरूषों पर महिला साक्षरता की संख्या 569 हो गयी । महिला साक्षरता की दर में हमारे देश के विभिन्न भागों में भारी असमानता देखने में आती है जिसे इस तालिका द्वारा स्पष्ट समझा जा सकता

तालिका 2.1

महिला साक्षरता का प्रादेशिक स्वरूप

क्र. स.	राज्य / केन्द्र शासित प्रदेश	1991 में महिला साक्षरता (प्रतिशत में)	2001 में महिला साक्षरता (प्रतिशत में)
1	केरल	68.13	87.86
2	मिजोरम	78.60	86.13
3	लक्षद्वीप	72.89	81.13
4	चण्डीगढ़	72.34	76.65
5	गोआ	68.09	75.51
6	दिल्ली	66.99	75.00
7	अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	65.46	75.29
8	पाण्डिचेरी	65.63	74.13
9	दमनद्वीप	59.40	70.37
10	हिमाचल प्रदेश	52.13	68.08
11	महाराष्ट्र	52.32	67.51
12	त्रिपुरा	49.65	65.41
13	तमिलनाडू	51.33	64.55
14	पंजाब	50.41	63.65
15	नागालैण्ड	54.75	61.41
16	सिक्किम	46.69	61.45
17	उत्तराचंल	-	60.26
18	पं.बगांल	46.56	60.22
19	मेघालय	44.60	60.41
20	मणिपुर	47.60	59.70
21	गुजरात	48.64	58.60
22	कर्नाटक	44.34	57.45
23	हरियाणा	40.47	56.31
24	असम	43.03	56.03

25	छतीसगढ़	-	52.40
26	आन्ध्रप्रदेश	32.72	51.17
27	उड़ीसा	34.68	50.97
28	मध्यप्रदेश	28.85	50.28
29	राजस्थान	20.24	44.34
30	आरुणाचल	29.69	44.24
31	दादर व नगर हवेली	26.98	42.99
32	उत्तर प्रदेश	25.31	42.98
33	जम्मू कश्मीर	-	41.82
34	झारखण्ड	-	39.38
35	बिहार	20.44	33.57

महिला प्रबलीकरण हेतु सरकार द्वारा अनेक विकास कार्यक्रमों एवं कल्याणकारी योजनाओं का संचालन किया जा रहा है जैसे द्वारिका योजना (1982) महिला समाख्या योजना (1989) किशोरी बालिका योजना (1992) ग्रामीण महिला विकास परियोजना (1996) बालिका समृद्धि योजना (1997) एवं स्वयं सिद्ध योजना (2001) आदि । इन योजनाओं के फलस्वरूप महिला साक्षरता दर में वृद्धि हुई है । वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार वर्तमान में महिला साक्षरता पिछले 10 वर्षों में 39.29% से बढ़कर 54.16% हो गयी है ।

10.6 स्त्री शिक्षा और लैंगिक असमानता

10.6.1 लिंग असमानता का अर्थ

सामाजिक संरचना व व्यवस्था में लिंग की समानता और असमानता का विशेष महत्व है । लिंग की असमानता पर समाज के संरचनात्मक, संगठनात्मक ढ़ाचे का प्रभाव पड़ता है । लिंग की असमानता समाज के संतुलन व्यवस्था और विकास को प्रभावित करती है । विचारणीय विषय यह है कि लिंग की असमानता के कारण स्त्री व पुरूष में किसका शोषण हो रहा है । असमानता का शिकार कौन सा वर्ग है? लिंग भेद के क्षेत्र क्या-क्या है? संवैधानिक अधिकारों और उनके व्यवहारों में कितना अंतर है ।

लिंग की परिभाषा

लिंगभेद को यौन भेद के रूप में हम कह सकते है कि प्राणी शास्त्र में स्त्री पुरूष के जैविक लक्षणों का वैज्ञानिक अध्ययन करते है । सामाजिक विज्ञान में विशेष रूप से समाज शास्त्र में स्त्री पुरूषों का अध्ययन लिंग के आधार पर किया जाता है । स्त्री व पुरूष का अध्ययन सामाजिक संबंधों को जानने के लिये किया जाता है । यौनिभेद जैविक और लिंग भेद सामाजिक व सांस्कृतिक है । दूसरे अर्थ में यौनि भेद स्त्री व पुरूष का नर मादा होना लिंग भेद का अर्थ स्त्री व पुरूष के बीच सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सांस्कृतिक व शैक्षणिक असमानता का होगा ।

भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार स्त्रियों की संख्या 49,57,38,169 है जबकि पुरूषों की संख्या 53,12,77,078 है । अर्थात पुरूषों की तुलना में स्त्रियाँ जनसंख्या में कम है । 2001 के अनुसार पुरूष साक्षरता दर 75.96% और महिला साक्षरता दर 54.28% है । हिन्दू समाज की स्त्रियों की स्थिति काफी अच्छी रही है । उन्हे दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में पूजा जाता है । उत्तर वैदिक काल में लिखा गया है कि यत्र नार्यस्तु, पुज्यंते, रमन्ते तत्र देवता मतलब जहाँ नारी की पूजा होती है । वहाँ देवता निवास करते है ।

शनै:शनै: मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आयी । उनके अधिकार छिन गये। स्त्रियों को अबला निसहाय माना गया । स्वंतत्रता पूर्व व पश्चात् हमारे देश के समाज सुधारको के प्रयासों के फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया किंतु अभी भी पूर्ण सफलता नहीं मिल पायी है ।

10.6.2 लिंग असमानता के कारण

स्वतंत्रता से पूर्व से लेकर 1947 तक स्त्रियों की स्थिति निम्न से ज्यादा गिरती चली गयी । जिसके कारण स्त्रियों में असुरक्षा व असंतोष की भावना ने धर कर लिया । स्त्री शिक्षा की उपेक्षा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, कन्यादान, वैवाहिक कुरीतियाँ, पुरूषों पर निर्भरता, पारिवारिक उपेक्षा, संयुक्त परिवार में मासिक धर्म पर छूआछूत, पुर्नविवाह पर रोक, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह, अर्न्तजातीय विवाह पर जाति से बाहर करना, बहुपत्नी विवाह जैसी समस्याएँ थी ।

कुछ पारिवारिक समस्याएँ जैसे लड़की का माता पिता की सम्पत्ति पर अधिकार न होना, बेटी द्वारा दाह संस्कार न करना यह सभी कारण प्राचीन् काल से लिंग असमानता को दर्शाते हैं । अभी तक लिंग भेद को मात्र स्त्री व पुरूष में जैविकीय विभिन्नता के रूप में ही देखा जाता था । पुरूषत्व और स्त्रीत्व के बारे में सांस्कृतिक विचार, रूढिवादिता से त्रस्त थे । धीरे-धीरे विचारधारा में परिवर्तन आया । संरचनात्मक स्तर पर घरेलू श्रम विभाजन में भी असमानता प्रदर्शित हुई ।

आजकल लिंग का प्रयोग व्यक्तिगत पहचान और व्यक्तित्व को इंगित करने के लिये नहीं किया जाता अपितु संस्थाओं और संगठनों में लैंगिक श्रम विभाजन के रूप में किया जाता है ।

स्वमूल्यांकन के प्रश्न

1. लैंगिक भेदभाव से आप क्या समझते है?
2. लिंग असमानता के क्या-क्या कारण है?
3. लिंग भेद व यौन भेद किस प्रकार भिन्न है?

10.7 शिक्षा द्वारा लैंगिक समानता

लिंग के आधार पर शिक्षा में विभेद आरम्भिक स्तर से ही हो जाता है । संस्थाएँ समाज व सुविधाएं असमान शैक्षिक उपलब्धियों के लिये जिम्मेदार है । लिंग समानता के लिये शैक्षिक अवसरों की समानता आवश्यक है । पुरूषों के समान स्त्री की शिक्षा भी आवश्यक है । बड़े खेद का विषय है कि लिंग भेद का जन्म बाल्यकाल में परिवार से ही आरम्भ हो जाता है । बालिका को हम समाज में वह दर्जा नहीं दे पाते जो बालक को देते है । प्रत्येक दम्पत्ति की

लालसा पुत्र प्राप्त करने की होती है । भ्रूण परीक्षण करवाकर वह आश्वस्त होना चाहते हैं । कुछ लोग जन्म के बाद बालक, बालिका में भेद करते हैं उनके पालन-पोषण में भेद करते हैं । समाज बालिका को पढ़ाना ही नहीं चाहता । आरम्भ में विद्यालय भेज भी देते है तो बीच में ही उनकी पढ़ाई रोक दी जाती है ।

शिक्षा ही वह सक्रिय माध्यम है जिसके द्वारा लैंगिक समानता लायी जा सकती है ।

1. बालिकाओं के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक विकास हेतु उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था हो जिसमें स्त्रियोचित खेलकूद, व्यायाम, आसन उचित शिक्षण विषयों को सम्मिलित किया जाये ।
2. शिक्षा द्वारा स्त्रियों को उनके कर्त्तव्यों, उनके अधिकारों को पढ़ाया जाये । उन्हे समाज में रहने के तौर तरीके व्यवहार करने का ज्ञान दिया जाये ।
3. शिक्षा द्वारा स्त्रियों में नेतृत्व की भावना का विकास, उत्तरदायित्व का बोध कराया जाये । स्त्रियों को पुरूषों के समान युद्ध कौशल, सामाजिक सुधार, राजनैतिक सुधार, आर्थिक सहयोग करने में सक्षम बनाया जाये । उन्हे पुरूषों के समान विकास की सुविधायें व अवसर देकर प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाये ताकि वे योग्य शिक्षक, चिकित्सक, अभियन्ता, प्रशासक, न्यायाधिपति, समाज सुधारक बनाकर राष्ट्र की सेवा कर सके ।
4. संस्कृति की पोषक व प्रसारक बनने में स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है । वे परिवार से लेकर समाज तक अपने व्यवहारों से संस्कृति का हस्तान्तरण बहुत आसानी से कर सकती है । वे समाजीकरण के आदर्श प्रस्तुत करके पुरूष वर्ग का मार्ग प्रशस्त कर सकती है । स्त्री शिक्षा में भारतीय संस्कृति का समन्वय इस प्रकार हो कि वह उसके प्रसार में अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह सरलता से कर सके ।
5. स्त्री ही अपने बच्चों का चरित्र निर्माण करती है । उन्हे सुसंस्कारित करती है । वह दया, क्षमा, उदारता, सहिष्णुता, सहकारिता की देवी होती है । निश्चित ही हम स्त्री को इस प्रकार की शिक्षा देकर समाज व राष्ट्र में शान्ति की स्थापना कर सकते हैं ।
6. स्त्री जाति को सशक्त बनाने हेतु उपयोगी पाठ्यक्रम हो जो पुरूषों के समान हर आर्थिक स्थिति में अपना योगदान दे सके । इस हेतु उन्हे व्यावसायिक व जीविकोपार्जन संबंधी कार्य, विषयगत ज्ञान व प्रशिक्षण दिया जाये ।
7. पुरूषों के समान स्त्रियों को, प्रजातांत्रिक वातावरण दिया जाये ताकि उसकी प्रजातंत्र में आस्था हो और उसकी रक्षा हेतु अपना योगदान दे सके । स्त्री शिक्षा के पाठ्यक्रम में नागरिकता की शिक्षा प्रजातंत्र के सिद्धांतों की जानकारी होनी चाहिये ।
8. बालिकाओं को जीवनोपयोगी शिक्षा दी जाये ताकि उनमें बालकों की तरह आत्मविश्वास व स्वावलबंन जैसे गुणों का विकास हो ।
9. स्त्रियों के लिये शिक्षा सुविधाओं का विस्तार किया जाये व शैक्षिक विषमताओं को शीघ्र समाप्त किया जाये ।
10. शिक्षक प्रशिक्षण के लिये महिलाओं को छात्रवृत्ति व उनके रिफ्रेशर कोर्स की व्यवस्था की जाये ।

11. स्त्री शिक्षा हेतु अलग से धन का प्रावधान और विभिन्न स्तरों पर महिलाओं हेतु अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना हो ।
12. बालिकाओं के अधिक नामांकन हेतु विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाये ।

उपरोक्त लिखित कार्यों का क्रियान्वयन कर हम शिक्षा द्वारा लैंगिक समानता ला सकते है ।

उच्च शिक्षा और स्त्रियाँ - 1998 में स्त्रियों की उच्च शिक्षा में प्रविष्टि एवं पहुंच को वैश्विक राजनैतिक एजेन्डा में मुद्दे में समाविष्ट किया गया । हॉयर एजुकेशन एम्स वुमन: इश्युड एण्ड परस्पेक्टिव (UNESCO 1998) ने उच्च शिक्षा पर अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ़रेंस में स्त्रियों पर केन्द्रित किया । विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं एवं कमेंटियों की सिफारिशों में परिणामस्वरूप 1993-94 में 25.7 लाख स्त्रियों से बढ़ कर 1999-2000 में 4.26 लाख व 2004-05 में 54.06 लाख हो गई थी जबकि पुरूषों की स्थिति देखें तो पता लगता है कि 51 लाख से बढ़कर 69 लाख व 2005 में 81 लाख हो गई थी । संख्याओं के संदर्भ में देखें तो पता चलता है कि स्त्रियों की पहुंच पुरूषों की अपेक्षा उच्च शिक्षा में काफी कम है, परन्तु दोनों के बीच की दूरी धीरे-धीरे कम हो रही है । 1991 जनसंख्या के अनुसार महिलाओं की उच्च शिक्षा में वृद्धि दर 7.72 प्रतिशत पाई गई जबकि पुरूषों की 4.73 प्रतिशत पाई गई । 2001 की जनसंख्या के अनुसार स्त्रियों की उच्च शिक्षा में वृद्धि दर 8.77 व पुरूषों की 5.22 प्रतिशत पाई गई ।

स्त्रियों की उच्च शिक्षा में पहुंच को यदि ग्रामीण एवं नगरीय संदर्भ में देखें तो पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्र की स्त्रियाँ उच्च शिक्षा के दायरे में अधिक आ रही है ।

10.7 सारांश

1. विश्वविद्यालय आयोग ने स्त्री शिक्षा के महत्व को दर्शाते हुये स्पष्ट किया कि शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित लोग नहीं हो सकते । यदि सामान्य शिक्षा को स्त्रियों या पुरूषों तक सीमित करने का प्रश्न हो तो यह अवसर स्त्रियों को देना चाहिये । स्वत: यह शिक्षा भावी संतान तक पहुँच जायेगी ।
2. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री शिक्षा हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (1(, 16 (1), 16 (2) में उल्लेखित है कि किसी भी नागरिक से लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा । भारतीय संविधान की धारा 15 के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा ।
3. वैदिक काल में महिलाओं का विशिष्ट स्थान था । उन्हे विद्या अध्ययन के अवसर दिये जाते थे । पुत्रियों का उपनयन संस्कार होता था उन्हे वेद पढ़ने की स्वतंत्रता थी ।
4. 1986 में गठित-राष्ट्रीय शिक्षा नीति National Education Policy) में स्त्री पुरूष के समान अवसर देने की बात दोहराई गयी । यह बात कही गयी कि लड़कियों की शिक्षा न केवल सामाजिक न्याय हेतु हो बल्कि इसलिये कि समाज में परिवर्तन व विकास दुतगति से हो ।
5. भारतीय संविधान में 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी । इसे एक दशक में पूरा करने का प्रण भी किया गया ।

6. स्त्री शिक्षा के पिछड़ने के प्रमुख कारण पारिवारिक, सामाजिक, अशिक्षित माता पिता, बाल विवाह, पर्दाप्रथा, शैक्षिक सुविधाओं का अभाव, भौतिक सुविधाओं का अभाव, पर्याप्त विषय वस्तु व स्त्रीयोचित पाठ्यक्रम शिक्षण विधियों का अभाव महिला शिक्षिकाओं का अभाव आदि है ।
7. देश व समाज की सामाजिक सांस्कृति परिस्थितियों ने महिला शिक्षा को अत्यधिक प्रभावित किया है ।
8. महिला साक्षरता की दृष्टि से राजस्थान राज्य सबसे पिछड़ा हुआ है । यहाँ महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत 20.84 है ।
9. सामाजिक संरचना व व्यवस्था में लिंग की समानता और असमानता का विशेष महत्व है । लिंग की असमानता समाज के संतुलन व विकास को प्रभावित करती है ।
10. लिंग असमानता के प्रमुख कारण, सामाजिक बुराईयाँ, पारिवारिक उपेक्षा, दहेज, बेमेल विवाह, बहुपत्नी विवाह, माता पिता की सम्पत्ति पर अधिकार न होना, रूढ़िवादी विचारधारा, श्रम विभाजन आदि है ।

10.8 मूल्यांकन प्रश्न

1. वैदिक काल में महिलाओं की परिस्थिति की विवेचना करिये ।
2. महिला शिक्षा को बढ़ाने हेतु किये जा रहे प्रयासों का उल्लेख करिये ।
3. क्या यौन भेद ही लिंग भेद है?
4. ग्रामीण, शहरी तथा पिछडे वर्गों के संदर्भ में बालिका शिक्षा पर सामाजिक सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव की व्याख्या करें ।
5. भारत में बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति का वर्णन करों ।
6. वर्तमान में महिलाओं की शैक्षिक परिस्थिति को स्पष्ट कीजिये ।
7. शैक्षिक विकास में लैंगिक असंतुलन के क्या कारण है?
8. भारत में ग्रामीण क्षेत्र में साक्षरता की निम्न दर क्यों है?
9. बालिकाओं के शारीरिक मानसिक विकास हेतु विद्यालय में क्या-क्या क्रियाऐं करवाना चाहिये?
10. भारत में महिला शिक्षा की प्रगति हेतु अपने सुझाव दीजिये ।

10.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. Agrawal J.C. Modern Indian Education. Shipra Publication Delhi, 2001
2. D.B. Raw Education for women, Discovery publishing, New Delhi.
3. N.R. Swaroop Saxena & Sanjay Kumar Philosphical and Soialogical Foundation of Education, Meerut Publishing, 2008.

इकाई - 11

जनसंख्या शिक्षा

इकाई की संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

11.2.1 जनसंख्या शिक्षा की विशेषताएँ

11.3 जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व

11.4 जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य

11.5 जनसंख्या शिक्षा - शिक्षण की अवधारणा

11.6 जनसंख्या शिक्षा की विषय-वस्तु

11.6.1 जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास में कठिनाईयाँ

11.6.2 जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया

11.7 जनसंख्या शिक्षा की शिक्षण विधियाँ

11.8 जनसंख्या विस्फोट

11.9 सारांश

11.10 मूल्यांकन प्रश्न

11.11 संदर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

जनसंख्या शिक्षा पाठ को पढ़ने के बाद आप व्यवहार में निम्न परिवर्तन पायेंगे:-

- जनसंख्या शिक्षा के अर्थ व आवश्यकता से परिचित हो सकेंगे ।
- जनसंख्या शिक्षा व सामान्य शिक्षा में अन्तर कर सकेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य व विषय-वस्तु का निर्धारण कर सकेंगे ।
- जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों से परिचित हो सकेंगे ।
- जनसंख्या विस्फोट, इस के कुप्रभाव व इसके नियंत्रण के उपाय जान सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

संसार में जनसंख्या का विस्फोट हो रहा है । पिछले कुछ वर्षों से जिस गति व घनत्व के साथ विश्व की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, उस पर सभी के द्वारा गहरी चिन्ता की जा रही है । बढ़ती हुई जनसंख्या की गंभीरता को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1974 को "विश्व जनसंख्या वर्ष" के रूप में मनाया । जिसका उद्देश्य जन साधारण को बढ़ती हुई जनसंख्या, उसकी गम्भीरता, कुपरिणाम तथा उससे उत्पन्न समस्याओं से अवगत कराना था । सन् 1974 से ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व की जनसंख्या का अध्ययन करने के उद्देश्य से

अपने कार्यालय में एक पृथक सचिवालय कोष्ठ स्थापित किया तथा इसके लिए पृथक से आर्थिक साधनों की व्यवस्था थी।

किसी भी देश एवं उसके समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नागरिकों को योग्य बनाने तथा उनके विकास करने का कार्य शिक्षा का है । शिक्षा के द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास किया जाता है, तथा उसे इतना सक्षम बनाया जाता है कि वह समाज की देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके । आज समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है । आज भारत की जनसंख्या विस्फोट स्थिति में पहुँच गई है । इसकी पुष्टि निम्नलिखित जनसंख्या वृद्धि के आकड़ों से स्पष्ट हो जाती है । भारत की जनसंख्या सन् 1947 में 35 करोड़, सन् 2001 में 1 अरब 2 करोड़ और सन् 2011 में 1 अरब 21 करोड़ हो गई है विश्व की जनसंख्या की तुलना में भारत की जनसंख्या के संदर्भ में उपयुक्त टिप्पणी निम्नलिखित लेखाचित्र से स्पष्ट हो जाती है । इससे यह प्रदर्शित होता है कि विश्व की जनसंख्या सन् 2001 में 6 अरब 10 करोड़ थी और अब 10 सालों में इसकी जनसंख्या वृद्धि 90 करोड़ के लगभग होकर 7 अरब हो गई है । जबकि भारत की जनसंख्या वृद्धि इसी काल में 1 अरब 2 करोड़ हो गई है यह जनसंख्या वृद्धि यह बतलाती है कि विश्व के 6 बच्चों में से एक बच्चा भारत में जन्म लेता है यदि इस जनसंख्या वृद्धि की यह गति रही तो भारत की जनसंख्या सन् 2030 में 1 अरब 53 करोड़ जो कि वर्तमान में आर्थिक विकास के संदर्भ में भावी पीढ़ी की न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चिन्ताजनक है क्योंकि भारत में तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि के कारण हमारे सभी प्राकृतिक संसाधनों में कमी होती जा रही है । निर्धनता और बेरोजगारी विकराल रूप धारण कर चुकी है, पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है, जल का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है । विकास योजनाओं का समुचित लाभ नहीं मिल पा रहा है । इन सब का मूल कारण है - भारत में जनसंख्या वृद्धि । अत: संसार के प्राय: सभी देशों में जनसंख्या शिक्षा का उपयोग जनसंख्या समस्या के हल हेतु किया जा रहा है । फलस्वरूप जनता में जनसंख्या के प्रति जागरूकता की वृद्धि होती जा रही है तथा समाज जनसंख्या वृद्धि कम करके समाज में उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग करके जीवन स्तर को उन्नत बनाने के प्रयास कर रहा है । इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा वर्तमान संसार का महत्वपूर्ण साधन जनसंख्या सीमित करने तथा जनसंख्या के प्रति उचित दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देने हेतु बन गया है ।

11.2 जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषाएं

जनसंख्या शिक्षा का प्रादुर्भाव विश्व में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या के कारण हुआ । अत: इसका अर्थ जन्म नियन्त्रण की शिक्षा के रूप में लगाया जाने लगा परन्तु यह गलत एवं अपूर्ण अर्थ है । जन्म नियन्त्रण में सहायता करना जनसंख्या शिक्षा का एक उद्देश्य हो सकता है परन्तु यह उद्देश्य प्रत्येक काल एवं परिस्थिति में लागू हो ऐसा आवश्यक नहीं है । जनसंख्या शिक्षा जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करने की शिक्षा है । जनसंख्या शिक्षा को परिभाषित करने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है परन्तु किसी परिभाषा को सर्वमान्य या पूर्ण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जनसंख्या शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त

व्यापक है । जनसंख्या शिक्षा को इसके उद्देश्यों, लक्ष्यों, क्षेत्र व अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तनों आदि के आधार पर परिभाषित किया गया है । जनसंख्या शिक्षा को प्रारम्भ में परिवार नियोजन शिक्षा या यौन शिक्षा के रूप में शिक्षा पद्धति के एक भाग के रूप में जाना था परन्तु यह स्पष्ट समझना आवश्यक है कि जनसंख्या शिक्षा न तो परिवार नियोजन है और न ही यौन शिक्षा । यह दूसरी बात है कि इन दोनों से संबंधित बातों का समावेश जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत किया जा सकता है।

जन+संख्या जनसंख्या शिक्षा---------मानवीय शक्ति अथवा मानवीय संसाधन से सम्बन्धित शिक्षा

जनसंख्या शिक्षा जीवन स्तर उच्च बनाने तथा सुखी जीवन की संभावनों की वृद्धि करने वाली शिक्षा ही है । जनसंख्या शिक्षा मानव के ज्ञान, बोध एवं व्यवहार को जागत करने, परिष्कृत करने एवं नवीन अथवा समयानुसार विचार प्रदान करने की शिक्षा है ।

मासियालास (1972) के अनुसार:- "जनसंख्या शिक्षा मानवीय जनसंख्या की प्रकृति तथा इसके परिवर्तनों के प्राकृतिक व मानवीय प्रभावों की खोज करने के विश्वसनीय तरीकों के ज्ञान का शिक्षण एवं अधिगम है ।"

According to Massialas (1972):-"Population education is the teaching and the learning of realiable knowledge about ways of inquiring into the nature the human population and natural and human consequences of population changes."

वीडरमैन (1974) के अनुसार - "जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक प्रक्रिया है जो लोगों की सहायता निम्न रूप में करती है -

(अ) स्वयं एवं अपने समुदाय जिसमें समस्त विश्व सम्मिलित है के संबंध में जनसंख्या संबंधों, कारणों एवं प्रभावों को सीखने में ।

(ब) स्वयं एवं अपने समुदाय के लिए जनसंख्या प्रक्रिया एवं जनसंख्या की विशेषताओं से संबंधित समस्याओं को परिभाषित करने में ।

(स) ऐसे संबंधित उपायों का आंकलन करने में जिनसे की एक व्यक्ति या समस्त समाज जीवन की वर्तमान तथा भावी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए इन प्रक्रियाओं को प्रभावित करने के लिए प्रतिक्रिया कर सकता है।

Viedarman (1974) has defined population education as an educational process which assists persons

(A) To learn the probable causes and consequences of population phenomena for themselves and their (Including the world) communities.

(B) Define for themselves and their communities the nature and the problems associated with population processes and characteristics.

(C) To assess the possible effective means by which society as a whole and the person as an individual can respond to and

influence these process in order to enhance the quality of life now and in the future.

जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जिसके द्वारा विद्यार्थियों को जनसंख्या वृद्धि और जीवन स्तर के मध्यम अर्न्तसंबंधों की जानकारी दी जाती है, ताकि वे उच्च स्तर के जीवनयापन की धारणा बनाकर जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं का हल ढूंढ़ने के प्रति प्रयत्नशील हों ।

11.2.1 जनसंख्या शिक्षा की विशेषताऐं

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से हम जनसंख्या शिक्षा की निम्नलिखित विशेषताओं पर निष्कर्ष के रूप में पहुँच सकते है:-

(1) जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है ।

(2) जनसंख्या शिक्षा व्यक्तियों. परिवारों, समुदायों एवं राष्ट्रों में जनसंख्या जनित समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करती है ।

(3) जनसंख्या शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करना है ।

(4) जनसंख्या शिक्षा कुछ उद्देश्य विभिन्न देशों, संस्कृतियों एवं काल में भिन्न-भिन्न हो सकते है।

(5) यह एक बहु-विषयी अध्ययन की शाखा है । जनसंख्या शिक्षा की विषय-वस्तु जनांकिकी, अर्थशास्त्र, सांख्यिकी, गृहविज्ञान, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र अध्ययन आदि विषयों से ली गई है ।

(6) यह एक मूल्य आधारित विषय है क्योंकि इसका लक्ष्य जनसंख्या समस्याओं के प्रति विवेकशीलता, उत्तरदायित्व की भावना, जागरूकता एवं चेतना का विकास करना है ।

(7) जनसंख्या शिक्षा एक समस्या आधारित शिक्षा है, अत: खोज एवं समस्या समाधान इसकी प्रमुख अधिगम प्रक्रियाएँ है ।

(8) जनसंख्या शिक्षा जनसंख्या को एक समस्या के रूप में प्रस्तुत न करके जनसंख्या परिवर्तनों एवं जीवन की गुणवत्ता के बीच अन्तर्सम्बन्ध के रूप में प्रस्तुत करती है।

(9) जनसंख्या शिक्षा जनसंख्या समस्याओं के समाधान में प्रयोग किये जाने वाले चिकित्सकीय एवं वैधानिक उपायों के सफल क्रियान्वयन के लिए आधार तैयार करती है। अत: शैक्षिक चिकित्सकीय एवं वैधानिक उपागम एक दूसरे पर निर्भर है ।

(10) जनसंख्या शिक्षा परिवार नियोजन की शिक्षा या यौन शिक्षा नहीं है । यह परिवार के आकार एवं परिवार नियोजन के प्रति उचित अभिवृत्ति उत्पन्न करने की प्रेरणात्मक शक्ति है ।

11.3 जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व

गत कुछ दशकों से जनसंख्या में अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हो रही है । यदि यह गति न रोकी गई तो मानव-जीवन बड़ा ही दुष्कर, संघर्षमय हो जायेगा । मानव जीवन को सुखमय साधन-सम्पन्न तथा श्रीयुक्त बनाने के लिए जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण लगाना आवश्यक है । आज के जनसंख्या विस्फोट के परिप्रेक्ष्य में जीवन स्तर को उन्नत बनाने के लिए तथा राष्ट्र को विकास की ओर गतिशील करने के लिए जनसंख्या शिक्षा आवश्यक है ।

जनसंख्या शिक्षा जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों से उत्पन्न समस्याओं पर प्रहर करने का शैक्षिक उपागम है । जनसंख्या परिवर्तनों को वांछित दिशा देने के चिकित्सकीय एवं शैक्षिक उपागम है । जनसामान्य की अभिवृत्ति में शिक्षा के द्वारा परिवर्तन आता है के लिए प्रेरित होते है । अत: जनसंख्या शिक्षा विशेषतया भारत जैसे देश जो जनसंख्या विस्फोट की स्थिति से गुजर रहे है के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी विषय है । भारत में विशेषतया एवं विश्व में सामान्यतया निम्न कारणों से जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता उत्पन्न हो रही है ।

- राष्ट्रीय प्रगति के लिए: राष्ट्रीय प्रगति के लिए भी जनसंख्या शिक्षा नितान्त अनिवार्य है ।
- सामाजिक ऊत्थान के लिए: समाज में जितना अधिक जन बाहुल्य होगा, समाज में उतनी ही समस्याऐं उत्पन्न होगी । अत: समाज में कम जनसंख्या होनी चाहिए । उचित आवास, मानसिक एवं सामाजिक अशान्ति के कारणों को दूर करने के लिए जनसंख्या शिक्षा आवश्यक है ।
- जनसंख्या विस्फोट: पिछले कुछ वर्षों से जनसंख्या में अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हो रही है । इस गति को रोकना अत्यन्त आवश्यक है । जनसंख्या वृद्धि पर सरलतापूर्वक नियंत्रण लगाने के लिए जनसंख्या शिक्षा आवश्यक है । जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण लगाया जा सकता है ।
- योजनाओं की सफलता: विश्व का प्रत्येक देश योजनाऐं बनाकर आर्थिक प्रगति कर रहा है । योजनाओं की सफलता जनसंख्या की स्थिरता पर निर्भर है । अत: जीवन स्तर एवं गुणवत्ता जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से बढ़ाई जा सकती है ।
- परिवार नियंत्रण कार्यक्रमों की असफलता: विश्व के विभिन्न देशों में जनसंख्या नियंत्रण के लिए परिवार नियोजन कार्यक्रमों के अन्तर्गत व्यापक रूप से लूप, नसबन्दी, जैसे कार्यक्रम अपनायें, किन्तु इन कार्यक्रमों को जनता ने सही ढंग से नहीं अपनाया । इसके लिये तो जनता के मन को ठीक करना पड़ेगा । उनकी भावनाओं से लोगों को सम्बन्धित करना पड़ेगा । अत: व्यक्ति को मानसिक और मनोवृत्तिमूलक नियन्त्रण के लिए तथा उनको नियोजित परिवार एवं सीमित परिवार के लिए तैयार करने के लिए जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता है ।
- पारिवारिक उन्नति के लिए: पारिवार की आर्थिक तथा शैक्षिक उन्नति के लिए छोटा सीमित परिवार अनिवार्य है । परिवार कल्याण के लिए परिवार के सदस्यों की संख्या कम होना आवश्यक है ।
- प्राकृतिक साधनों के साथ सामंजस्य: जनसंख्या वृद्धि से उपलब्ध प्राकृतिक साधन अपर्याप्त हो जायेगें । एक ओर बढ़ती हुई जनसंख्या तथा दूसरी और घटते साधन एक समय असामंजस्य की स्थिति में आकर असन्तुलन पैदा कर देंगे । इसके लिए पहले जनसंख्या वृद्धि का नियंत्रण आवश्यक है ।
- लिंग समानता स्थापित करने के लिए: विश्व के लगभग सभी भागों में समाज पुरूष प्रधान है । महिलाओं की भूमिका बच्चों को जन्म देने एवं उनकी देखभाल करने तक ही सीमित है । विश्व के किसी भाग में महिलाओं की स्थिति दूसरे भाग की महिलाओं

से तो उत्तम हो सकती है परन्तु अपने समाज के पुरूषों से उत्तम नहीं है । लिंग भिन्नता की स्थिति कम या अधिक मात्रा में सभी समाजों एवं राष्ट्रों में पाई जाती है । फरवरी 2011 में सम्पन्न भारत की 15 वीं जनगणना के अंतिम परिणाम के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ में पुरूषों की संख्या 62.37 करोड़ व महिला संख्या 58.65 करोड़ अंकलित की गई है । इस प्रकार प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या 940 है । विश्व की 7 अरब की आबादी में लगभग 3.5 अरब महिलायें है जो आज भी अपने मौलिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है । लिंग समानता के अभाव में विकास आधी जनसंख्या के लिए अर्थहीन हो जाता है । जनसंख्या शिक्षा महिलाओं को परिवार समाज एवं राष्ट्र में उनके अधिकार दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है । जनसंख्या शिक्षा में महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक, स्थिति का वर्तमान स्तर, कारण एवं उपायों का अध्ययन करती है । जो कि लिंग समानता स्थापित करने में सार्थक भूमिका निभा सकती है ।

- शिक्षा को मूल्योन्मुख बनाने के लिए: जनसंख्या शिक्षा व्यक्ति को परिवार समुदाय एवं राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी बनाती है । जनसंख्या शिक्षा व्यक्ति में मानवाधिकार महिला समानता, बाल अधिकार, शिक्षा का महत्व पर्यावरण एवं परिस्थिति की सन्तुलन के प्रति उत्तरदायित्व, उत्तम जीवन जीने का अधिकार आदि मूल्यों का विकास करती है । जनसंख्या शिक्षा मात्र परिवार को सीमित रखने के शिक्षा नहीं है । अपितु जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करने की शिक्षा है ।
- राष्ट्रीय जनसंख्या कार्यक्रमों एवं नीतियों का जनसंख्या तक संप्रेषण करने के लिए जनसंख्या कार्यक्रमों एवं नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए उनका जनसामान्य तक सम्प्रेषण आवश्यक है । यह सम्प्रेषण ही उन्हें कार्यक्रमों एवं नीतियों के प्रति जागरूक बनाता है । जनसंख्या शिक्षा के द्वारा यह नीतियाँ एवं कार्यक्रम जन सामान्य तक पहुंचते है । इसके लिए शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक तथा निरौपचारिक साधनों का प्रयोग किया जाता है । अनौपचारिक तथा निरौपचारिक साधनों के द्वारा जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय न जाने वाले या पाठशाला के बाहर युवाओं को भी सम्मिलित किया जाता है । इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा के द्वारा जनसंख्या कार्यक्रम एवं नीति जनसंख्या तक पहुंच जाते है ।

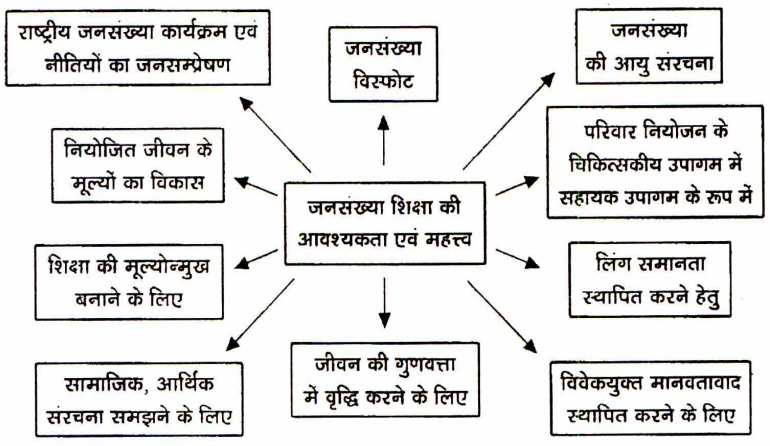

11.4 जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य

प्रारम्भ में तो जनसंख्या शिक्षा को परिवार नियोजन एंव यौन शिक्षा से सम्बन्धित ही माना गया परन्तु अब जनसंख्या शिक्षा को जीवन को सुखी बनाने तथा जीवन मूल्य उन्नत बनाने की शिक्षा के रूप में मान्य किया जाता है । जनसंख्या शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य यही है कि विद्यार्थी की अवधारणा में ऐसा परिवर्तन किया जाये कि जिससे वह वयस्क होने पर छोटे परिवार के महत्व को जानकर, गुणात्मक जीवन यापन के लिए अपने परिवार एवं समाज दोनों के हित में उचित निर्णय ले सके । इस प्रकार वैचारिक परिवर्तन करना इसका सामान्य उद्देश्य है, जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य देश, काल एवं तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित किये जाने चाहिए जो थोड़े बहुत संशोधन के साथ लगभग सभी देशों एवं समाजों पर लागू किये जा सकते है।

इस संदर्भ में इण्डोनेशिया के तोज्क्रोविरोनो (Tojkrowirono) (पारख 1985 द्वारा उद्धरित) के द्वारा निर्धारित किये गये उद्देश्यों का अध्ययन किया जा सकता है । उन्होनें जनसंख्या शिक्षा के निम्न उद्देश्य बताए हैं-

1. जनांकिकी के सिद्धान्तों का बोध कराना ।
2. तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारणों का अध्ययन करना ।
3. जनसंख्या के तीव्र वृद्धि के प्रभावों का अध्ययन करना ।
4. सामाजिक आर्थिक विकास एवं लोक कल्याण के मध्य सम्बन्ध को समझना ।
5. पर्यावरणीय सन्तुलन के अर्थ एवं महत्व को समझना ।
6. भाग्यवाद के विपरीत यह समझना कि परिवार का आकार सीमित किया जा सकता है।
7. जीवन की गुणवत्ता के सम्बन्ध में छोटे परिवार के मानक के महत्त्व को समझना ।
8. जनसंख्या घनत्व, जनसंख्या, वृद्धि के व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों को समझना ।
9. यह अनुभूति करना कि मानव व्यवहार का सामाजिक संरचना एवं सामाजिक परिवर्तन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है ।
10. देश एवं विश्व के कल्याण के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना ।

जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य क्षेत्रीय आवश्यकताओं पर निर्भर करते है । तोज्क्रोविरोनो (इण्डोनेशिया) ने जनसंख्या शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों की सूची बनाई है । जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों निम्न प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है :-

1. जनसंख्या नियन्त्रण तथा परिवार नियोजन के कार्यक्रम बनाकर क्रियान्वित करना ।
2. शिक्षकों एवं छात्रों को देश की जनसंख्या वृद्धि संबंधी भयावह स्थिति के प्रति जागरूक बनाना तथा विभिन्न राज्यों एवं भारत सरकार द्वारा कियें जा रहें प्रयत्नों की जानकारी देना ।
3. जनसंख्या एवं जीवन की गुणवत्ता के मध्य अर्न्तसम्बन्धों को जानना ।
4. पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके कुप्रभावों को समझना ।
5. प्राकृतिक संसाधन एवं मानवीय आवश्यकताओं के मध्य सन्तुलन की अभिवृत्ति का विकास करना ।
6. उप जन सांख्यकीय प्रत्ययों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना ।
7. व्यक्तिगत तथा पारिवारिक जीवन के सभी पक्षों उत्तरदायित्व, परस्पर सहायता एवं सहयोग की भावना का विकास करना ।
8. स्त्रियों को समाज में उचित स्थान दिलाने की अभिवृत्ति का विकास करना ।
9. राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण के लिए उत्तरदायित्व की भावनाओं तथा परिवर्तित प्रवृत्तियों का विकास करना ।
10. जनसंख्या शिक्षा के प्रति लोगों का विश्वास उत्पन्न करना ।

उपर्युक्त जनसंख्या के उद्देश्यों को प्राप्त करके विद्यार्थियों को इस योग्य बनाया जा सकेगा कि वे उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन जी सकेगें तथा अपने परिवार को सीमित रखने सम्बन्धी युक्तियुक्त तथा उचित निर्णय लेने में समर्थ होंगे । उनमें जनसंख्या सम्बन्धी उचित दृष्टिकोण भी विकसित होगा जिससे समाज, देश एवं विश्व का कल्याण सम्भव होगा ।

11.5 जनसंख्या शिक्षा शिक्षण की अवधारणा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् **(N.C.E.R.T)** नई दिल्ली द्वारा संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोश **(U.N.F.P.A)** की आर्थिक सहायता से भारत में यह प्रायोजना प्रारम्भ की गई है ।

राजस्थान में जनसंख्या शिक्षा की प्रायोजना अप्रेल 1980 से आरम्भ की गई है । इसके क्रियान्वयन का दायित्व, राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान **(S.I.E.R.T)** उदयपुर को दिया गया । इस संस्थान द्वारा निम्नांकित कार्य किये गये हैं । और अब भी नये आयाम लेकर प्रायोजन का विस्तार किया जा रहा है ।

(1) पाठ्यक्रम एवं अधिगम सामग्री का निर्माण एवं विकास

(2) अध्यापकों को प्रशिक्षित करना ।

(3) सह शैक्षिक प्रवृत्तियों का संचालन ।

(4) विभिन्न विषयों में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी पाठों का निर्माण एवं पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित करना ।

(5) अनुसंधान एवं मूल्यांकन।

(6) पत्रिका, एकांकी, रूपक, कहानी आदि पुस्तकों का प्रकाशन एवं प्रसार जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी साहित्य का निर्माण ।

(7) प्रतियोगितायों व अन्य कार्यक्रम में जनसंख्या को सम्मिलित करना ।

11.6 जनसंख्या शिक्षा की विषयवस्तु

शैक्षिक प्रक्रिया के तीन प्रमुख अंग होते है शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यक्रम । पाठ्यक्रम के द्वारा शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य सम्पन्न होने वाली अन्त: क्रिया को दिशा मिलती है । पाठ्यक्रम विद्यार्थी में परिवर्तन लाने का उपकरण है । यह परिवर्तनीय होता है । तथा आवश्यकताओं के अनुरूप सत्त सुधार की आवश्यकता होती है । ज्ञान के विस्फोट के कारण नई-नई जानकारी बढ़ती है । जिसे पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु में स्थान दिया जाये या न दिया जाये इस पर निर्णय लेना होता है । जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम विभिन्न स्तरों के लिए क्या निर्धारित किया जाये यह एक विचारणीय प्रश्न है । किस स्तर पर किस प्रकरण को सम्मिलित किया जाये? उसे कौन पढ़ायेगा? कैसे पढ़ायेगा? किसको पढ़ायेगा? आदि अनेक प्रश्न है । जिनका सन्तोषजनक उत्तर मिलने पर ही पाठ्यक्रम में उम्र प्रकरण को सम्मिलित किया जा सकता है ।

पाठ्यक्रम के माध्यम से जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों एवं लक्ष्यो की पूर्ति किया जाना संभव है । पाठ्यक्रम ही पढ़ने वाले को प्रेरित करता है तथा सीखकर जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा देता है । अत: यह आवश्यक है कि जनसंख्या शिक्षा का अच्छा पाठ्यक्रम विकसित किया जायें । जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों के आधार पर जनसंख्या शिक्षा की विषयवस्तु के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व कमेंटी ने रिपोर्ट दी है ।

सन् 1912 में समाजशास्त्री व जनसंख्या विद हाउसर ने पाठ्यक्रम में जनांकिकी की आवश्यकता को बताया ।

(1) कुल जनसंख्या वृद्धि (प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक)

(2) जनसंख्या वृद्धि के कारक, प्रवास, उत्पत्ति-दर, आयु के अनुसार वर्गीकरण एवं मृत्युदर

(3) जनसंख्या वितरण

(4) जनसंख्या का आर्थिक, सामाजिक एंव राजनैतिक प्रभाव

(5) जनसंख्या अनुसंधान की विधियाँ

परन्तु हाउसर ने जनसंख्या शिक्षा के लिए जनांकिकी को ही महत्वपूर्ण बताया व जनसंख्या शिक्षा के अन्य पहलुओं को छोड़ दिया है । इस प्रकार यह रूपरेखा संकुचित दृष्टिकोण लिये हुए है । 1970 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण ने जनसंख्या शिक्षा के पाँच क्षेत्रों को बताया :-

(1) जनसंख्या वृद्धि

(2) आर्थिक विकास व जनसंख्या

(3) सामाजिक विकास व जनसंख्या

(4) स्वास्थ्य, पोषण व जनसंख्या

(5) जैवीथ कारक - पारिवारिक जीवन व जनसंख्या

विभिन्न मतों को जानने के पश्चात् हम यह कह सकते है कि जनसंख्या शिक्षा में हमें:-

(1) **जनसंख्या सम्बन्धी ऑकडों को लेना चाहिए -** इसके अन्तर्गत जन्मदर शुद्ध पुनरूत्पादन व मृत्युदर, किसी देश-विदेश में क्या हो रहा है । इसका विवेचन किया जाता है ।

(2) **आर्थिक विकास एवं जनसंख्या वृद्धि -** इस विषय क्षेत्र के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि से संसाधनों में कमी, निर्धनता, बेरोजगारी, अशिक्षा, राष्ट्रीय आय में कमी, कृषि, उत्पादन भूमि में कमी, खनीज पदार्थों का अभाव, आर्थिक विकास का अवरूद्ध होना आदि सभी आयामों की जानकारी दी जाती है।

(3) **सामाजिक विकास और जनसंख्या वृद्धि -** जनसंख्या वृद्धि में समाज में अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई है । जैसे - गरीबी, दहेज, शहरी भीड़-भाड़. बेरोजगारी, सामाजिक, अपराध, बाल-विवाह, अशिक्षा, अन्धविश्वास, पानी, चिकित्सा, निवास में कमी आदि । इस क्षेत्र में इन्ही प्रकरणों पर शिक्षण करवाया जाता है ।

(4) **स्वास्थ्य व पोषण और जनसंख्या वृद्धि -** स्वस्थ रहने के लिए स्वास्थय प्रद निवास, स्वच्छ वायु, संतुलित एवं पोषक तत्वों से युक्त भोजन, शुद्ध पेयजल आदि की परम आवश्यकता होती है। खाद्यान्न की वृद्धि चिकित्सा सुविधाओं में आदि में प्रतिवर्ष वृद्धि से ये अपर्याप्त रहते है । इन सभी विषयों का अध्ययन इस क्षेत्र में कराया जाता है ।

(5) **जैविक तत्व, परिवार एवं जनसंख्या वृद्धि -** लड़के-लड़की की विवाह की आयु-बच्चों के बीच का अन्तराल, गर्भवती स्त्रियों की देखभाल, प्रसव से पूर्व व पश्चात् लगने वाले टीकों की जानकारी आदि बातें जनसंख्या शिक्षा का अंग है ।

(6) **संसाधनों का विकास एवं पर्यावरण संरक्षण -** जलवायु परिवर्तन से आज जीवित रहने के लिए उपभोग्य वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो गई है । प्रकृत्ति प्रदत्त साधन सीमित है । असीमित जनसंख्या वृद्धि एवं सीमित प्राकृतिक संसाधनों एवं उत्पादन में असन्तुलन हो गया है । वनों का विनाश हो रहा है । जल का स्तर नीचे जा रहा है । ओजोन परत में छेद हो गया है, खनिज पदार्थों का अनियन्त्रित दोहन हो रहा है । इन सबको ध्यान में रखते हुए पर्यावरण संरक्षण अनिवार्य है ।

एक अच्छे नागरिक के उत्तरदायित्वों के विषय में बोध उत्पन्न करना पाठ्यक्रम के माध्यम से जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों और लक्ष्यों की पूर्ति किया जाना संभव है । पाठ्यक्रम ही पढ़ने वाले को प्रेरित करता है तथा सीखकर जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा देता है । अत: यह आवश्यक है कि जनसंख्या शिक्षा का अच्छा पाठ्यक्रम विकसित किया जाये । जनसंख्या शिक्षा राष्ट्र के विकास का एक महत्वपूर्ण सशक्त साधन है । यदि जनसंख्या शिक्षा को राष्ट्र के जीवन और आकांक्षाओं से सम्बन्धित कर दिया जाये तो यह राष्ट्र के लोगों को उचित मूल्यों और प्रवृत्तियों का विकास करके राष्ट्र की समस्याओं, राष्ट्र की साधन क्षमता और

जनसंख्या विकास में तालमेल बैठना किसी भी राष्ट्र के उचित नियोजित विकास हेतु आवश्यक है ।

11.6.1 जनसंख्या शिक्षा के पाठयक्रम विकास में कठिनाईयाँ

जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम शिक्षण व्यूह रचना, पाठ्यक्रम सम्प्रेषण उपागम क्षेत्र इत्यादि स्पष्ट्या परिभाषित नहीं हो पाये हैं । जनसंख्या शिक्षा अन्तर विषयी प्रकृति का विषय है । अत: यह निर्धारित करना कि किस विषय में कौन सी विषय वस्तु जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम में जोड़ी जायेगी और इसे कैसे जोड़ा जायेगा, यह एक कठिन प्रश्न है । जनसंख्या शिक्षाविद् भी इसी प्रकार के प्रश्नों पर मत भिन्नता रखते हैं अत: जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारित करने में कई कठिनाईयाँ दृष्टिगत होती हैं । इनमें से कुछ कठिनाईयों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(1) जनसंख्या शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उद्देश्य अभी स्पष्टता परिभाषित नही किये गये है बिना सुपरिभाषित उद्देश्यों के उस स्तर के लिये ज्ञानानुभव सुनिश्चित करना एक समस्या है ।

(2) जनसंख्या शिक्षा एक अन्तरविषयी विषय है । अत: वर्तमान जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम में ऐसे बिन्दुओं को ढूंढ़ना है जहाँ अन्य विषयों की सामग्री को जोड़ा जा सके ।

(3) इस बिन्दु पर अभी मत भिन्नता है कि जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम किस स्तर से शुरू किया जाये । यदि जनसंख्या शिक्षा को प्राथमिक स्तर से शुरू किया जाये तो उस स्तर पर क्या ज्ञानानुभव प्रदान किया जायें और माध्यमिक स्तर से शुरू करने पर क्या? यह विचारणीय प्रश्न है ।

(4) जनसंख्या शिक्षा पढ़ाने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव भी एक समस्या है ।

(5) शिक्षकों, अभिभावकों, शैक्षिक प्रशंसकों एवं विद्यार्थियों का परम्परावादी दृष्टिकोण भी जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम विकास में बाधा उत्पन्न करता है ।

प्रो. जयसूर्या के अनुसार जनसंख्या शिक्षा के पाठयक्रम में निम्नलिखित कठिनाईयाँ आती है।

(1) जनसंख्या शिक्षा का अपेक्षाकृत नवीन प्रत्यय होना ।

(2) शैक्षिक पेशेवरों का जनसंख्या शिक्षा के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण ।

(3) जनसंख्या शिक्षा की विषय वस्तु निश्चित करना ।

(4) जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों का अभाव ।

11.6.2 जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम विकास प्रक्रिया

पाठ्यक्रम-विकास एक जटिल प्रक्रिया है । इसके लिए व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनसुरण करना होता है । जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास के लिए अग्रलिखित प्रक्रिया अपनाई जा सकती है ।

(1) विभिन्न आयु वर्ग एंव कक्षा स्तरों के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पहचान करना।

(2) विद्यार्थियो के पूर्वानुभवों अथवा प्रवेशीय व्यवहार को सूचीबद्ध करना ।

(3) ज्ञान, अभिवृद्धि एवं कौशल के रूप में उद्देश्यों का विशिष्टीकरण ।

(4) विद्यार्थियों के सामाजिकसांस्कृतिक पर्यावरण-, रुचियों एवं अनुभवों के आधार पर उचित अधिगम परिस्थितियों का निर्धारण करना ।

(5) उद्देश्यों एवं विद्यार्थियों के अनुभवों के आलोक में उचित विचारों प्रत्यों एवं मूल्यों की पहचान करना ।

(6) पाठ्यक्रम को व्यापक बनाने के लिए विषय वस्तु विश्लेषण करना ।

(7) विकसित किए गए पाठ्यक्रम का मूल्यांकन करने के लिए परीक्षण व मूल्यांकन करना एवं पृष्ठ पोषण प्रदान करना । जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया को निम्नलिखित फ्लो चार्ट द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है ।

11.6.3 जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम विकास का फ्लो चार्ट

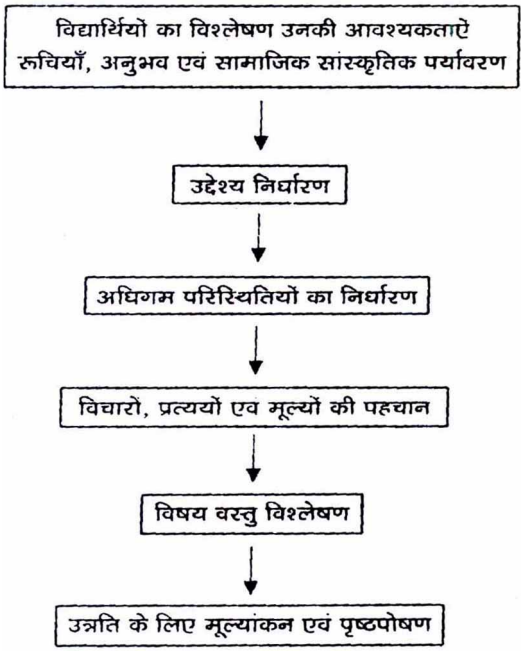

11.7 जनसंख्या शिक्षा की शिक्षण विधियाँ

शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है । यह अधिगम के उद्देश्य से सम्पादित की जाती है । शिक्षण एवं अधिगम के समान उद्देश्य होते हैं । विभिन्न स्तरों एवं विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है । विद्यालयी एवं उच्च शिक्षा स्तर पर जनसंख्या शिक्षा द्वारा विभिन्न प्रकार के उद्देश्य प्राप्त किये जाते हैं, जैसे ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक । जनसंख्या शिक्षा शिक्षक को कक्षा स्तर, विषय वस्तु की प्रकृति, उपलब्ध समय एवं संसाधन, विद्यार्थियों की आयु व योग्यतायें शिक्षण उद्देश्य आदि को ध्यान में रखकर उपयुक्त शिक्षण विधि का चयन करना होता है । अत: जनसंख्या शिक्षा शिक्षक को विभिन्न शिक्षण विधियों पर स्वामित्व होना चाहिए । जनसंख्या शिक्षा शिक्षण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं:

(1) व्याख्यान विधि (2) विचार-विमर्श (3) प्रायोजना (4) समस्या समाधान (5) पैनल परिचर्चा (6) वाद-विवाद (7) बज सैशन (8) मस्तिष्क उद्वेलन (9) सेमिनार (10) मूल्य स्पष्टीकरण (11) सामाजिक पृच्छा प्रतिमान

(1) व्याख्यान विधि

व्याख्यान शिक्षण की सबसे पुरानी विधि है । इसका प्रयोग ज्ञानात्मक एंव भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है । एक भली भाँति तैयार एवं प्रभावशाली तरीके से दिये गये व्याख्यान के द्वारा विद्यार्थियों में तार्किक चिन्तन की योग्यता विकसित की जा सकती है व्याख्यान के तीन पद होते हैं :-

(i) **शिक्षक द्वारा तैयारी -** विषय वस्तु की पूर्ण तैयारी शिक्षक द्वारा की जानी चाहिए । शिक्षक को व्याख्यान की तैयारी में उद्देश्य, विषय-वस्तु कक्षा-कक्ष, अन्त: क्रिया, शिक्षण की प्रविधियाँ, शिक्षण सामग्री आदि सभी का नियोजन करना चाहिए ।

(ii) **शिक्षक द्वारा प्रस्तुतीकरण -** शिक्षक द्वारा तैयार व्याक्ष्यान का कक्षा में योजनानुसार प्रस्तुत करना होता है । शिक्षक द्वारा उचित उदाहरणों एवं दृश्य-श्रृव्य सामग्री का प्रयोग किया जाता है । प्रश्नों के द्वारा व्याख्यान की प्रभावोत्पादकता एवं छात्रों में अवबोध स्तर का परीक्षण करना चाहिए ।

(iii) **विद्यार्थियों द्वारा ज्ञान ग्रहण करना -** व्याख्यान का यह पद प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ चलता है शिक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी व्याख्यान को ग्रहण कर रहे है या नहीं इसके लिए उसे बीच-बीच में प्रश्न पूछने चाहिए ।

जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक प्रगति शिक्षा तथा खाद्य सामग्री पर प्रभाव प्राकृतिक सम्पदा तथा जनसंख्या में सन्तुलन, परिवार नियोजन व कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रम पर व्याख्यान दिया जा सकता है ।

(2) विचार-विमर्श

विचार-विमर्श एक प्रजातांत्रिक शिक्षण विधि है । जनसंख्या शिक्षण की यह एक महत्वपूर्ण शिक्षण विधि है । जनसंख्या शिक्षा का एक समस्या केन्द्रित विषय है अत: जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याऐं उत्पन्न होती है । जनसंख्या शिक्षा से इन समस्याओं पर समूह परिचर्चाओं का आयोजन किया जा सकता है । विद्यार्थी जनसंख्या समस्या के समाधान की कार्य योजनायें बना सकते है । जनसंख्या वृद्धि एक सामाजिक समस्या है । अत: विद्यार्थी इसका समाधान सामाजिक वातावरण में खोज सकेंगे ।

(3) प्रायोजना विधि

प्रायोजन विधि जॉन डीवि की दार्शनिक विचारधारा प्रयोजनवाद पर आधारित है । इस विधि के प्रतिपादक डबल्यू एच. किलवैट्रिक है । इस विधि का प्रयोग जनसंख्या शिक्षा में प्रभावी तरीके से किया जा सकता है । इस विधि के अन्तर्गत शिक्षक एवं विद्यार्थी वास्तविक जीवन परिस्थितियों से समस्या का चुनाव करते है । इससे विद्यार्थियों को प्रायोजन की वास्तविक जीवन में उपयोगिता का अहसास होता है । विद्यार्थी स्थानीय स्तर पर जनसंख्या से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षण कर सकता है ।

(4) समस्या समाधान विधि

समस्या समाधान एक प्रक्रिया है जिसमें कि व्यक्ति के सम्मुख बाधा, कठिनाई उत्पन्न होती है । जिससे विवेचनात्मक चिन्तन प्रारम्भ होता है तथा व्यक्ति खोज, पूछताछ, शोध, परीक्षण या अवलोकन के द्वारा ऐसी सामग्री जुटाता है । जिससे समस्या का समाधान होता है। जनसंख्या की गत्यात्मकता के कारण अनेक प्रकार की समस्या उत्पन्न होती है । जनसंख्या में वृद्धि, कमी, लिंगानुपात में परिवर्तन, वितरण में परिवर्तन जनसंख्या संरचना में बदलाव आदि के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है और जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली इन्हीं समस्याओं के माना कि समाधान समस्या समाधान विधि में वृद्धि ढूंढे जा सकते है । इससे बालकों में समस्याओं के वैज्ञानिक समाधान की अभितृप्ति एवं योग्यता विकसित होती है ।

(5) पैनल परिचर्चा

पैनल परिचर्चा में किसी समस्या पर विशेषज्ञों के एक समूह द्वारा कुछ श्रोताओं के सम्मुख परिचर्चा की जाती है । श्रोता इन परिचर्चा को सुनकर समस्या का बोध करते हैं । इससे श्रोताओं को तथ्यात्मक एवं प्रत्यात्मक ज्ञान प्राप्त होता है । जनसंख्या शिक्षा में पैनल परिचर्चा हेतु कई प्रकरण लिये जा सकते है जैसे जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास, छोटे परिवार की आवश्यकता, आवास समस्या, निरक्षरता, पर्यावरण, जनसंख्या नीतियां एवं कार्यक्रम आदि ।

(6) वाद-विवाद

वाद विवाद एक प्रकार की परिचर्चा है जिसमें किसी विचार, सिद्धान्त, नीति कार्यक्रम या प्रकरण के पक्ष तथा विपक्ष में बोलने वाले वक्ता होते हैं । जनसंख्या शिक्षा में वाद-विवाद के आयोजन की व्यापक सम्भावनाएं है । कई प्रकरण इसमें तार्किक व प्रभावशाली है । कई प्रकरण इसमें तार्किक व प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत किये जा सकते है । जैसे जनसंख्या नियंत्रण का दबाव युक्त उपागम शहरीकरण के सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव, विद्यालय स्तर पर यौन शिक्षा, संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार इत्यादि ।

(7) बज सैशन

बज सैशन में परिचर्चा बड़े समूह को छोटे-छोटे उपसमूहों में बाँटकर कराई जाती है । ताकि अधिकतर सदस्यों की चर्चा में भाग लेने का अवसर मिल सके ।

(8) मस्तिष्क उद्वलेन

मस्तिष्क उद्वेलन एक समस्या समाधान स्थिति है जिसमें सही गलत पर विचार न करते हुए समस्या के सभी सम्भावित समाधानों को बाहर लाने के लिए प्रतिभागियों को स्वतन्त्र मानसिक चिन्तन का अवसर दिया जाता है ।

(9) मूल्य स्पष्टीकरण व्यूह रचना

मूल्य स्पष्टीकरण व्यूह रचनाओं का प्रयोग स्वयं एवं दूसरों के मूल्यों से समझने, उनका विश्लेषण करने तथा मूल्य द्वन्दों को समझने के लिए किया जाता है । यह शिक्षण व्यूह रचनाएं है ।

(10) सामाजिक खोज प्रतिमान

सामाजिक खोज प्रतिमान का प्रयोग सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण एवं उनका समाधान खोजने के लिए किया जाता है । यह सामाजिक अन्त: क्रिया परिवार का प्रतिमान है ।

जनसंख्या शिक्षा समस्या केन्द्रित तथा मूल्य आधारित शिक्षा है अत: जनसंख्या शिक्षण के लिए ऐसी शिक्षण उपयुक्त रहती है जो समस्याओं तथा मूल्यों से सम्बन्धित हों । जनसंख्या शिक्षा के लिए वह शिक्षण विधि उपयुक्त होगी जो बालक को जनसंख्या विस्फोट की समस्या का बोध करा सकें और जनसंख्या वृद्धि के कारक, मान्यताओं, मूल्यों को छोड़कर नवीन धारणाऐं मान्यताओं व मूल्यों को अपना सकें ।

11.8 जनसंख्या विस्फोट

जनसंख्या वृद्धि एक बहुआयामी समस्या है । इसके अनेक कारण होते है तथा आर्थिक, शैक्षिक, जनांकिकीय, भौगौलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक । भारत सहित विश्व के कई देश जनसंख्या विस्फोट की स्थिति से गुजर रहे हैं । विश्व में चार प्रकार के विस्फोट हुए है - (1)ज्ञान का विस्फोट (2) सूचना का विस्फोट (3) आकांक्षाओं का विस्फोट एवं (4) जनसंख्या विस्फोट । जनसंख्या विस्फोट की समस्या, एशियाई एवं अफ्रीकी देशों में अधिक जटिल है । विश्व में जनसंख्या विस्फोट मृत्युदर में तेजी से कमी होने के कारण हुआ है । देश की आबादी 2011 में 1.21 अरब हो चुकी है । राजस्थान का अंश 5.67 प्रतिशत है कुल जनसंख्या में, इस प्रकार विगत एक दशक में देश की जनसंख्या में 18.15 करोड़ (17.64 प्रतिशत) की वृद्धि 2001-11 के दौरान हुई है । तेजी से बढ़ती इस जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों का लगातार तीव्र गति से क्षरण हो रहा है । इसके दुष्प्रभाव से जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा है । बेतहाशा बढ़ती आबादी ने हमारे आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं को प्रभावित किया है । जनसंख्या के इस प्रकार तीव्र गति से बढ़ने के अग्र मुख्य कारण है ।

(1) उच्च जन्म दर एंव अपेक्षाकृत निम्न मृत्युदर ।

(2) अशिक्षा एवं निर्धनता

(3) त्रुटिपूर्ण सोच, अशिक्षा तथा अज्ञानतावश लोग सोचते है कि जितने उनके बच्चे होंगे, उतने ही अनेक यहाँ कमाने वाले होगें ।

(4) परिवार नियोजन उपायों का सीमित प्रयोग, परिवार कल्याण के साधनों का सीमित प्रचार तथा उनकी कम उपलब्धता ।

(5) बाल विवाह कुप्रथा का प्रचलन एवं विवाहित महिलाओं का ऊँचा प्रतिशत ।

(6) गर्म जलवायु इससे व्यक्ति में परिपक्वता जल्दी आती है ।

(7) समाज की व्याप्त कुप्रथायें जैसे बाल विवाह, वंश-वेल वृद्धि, सन्तान को भगवान की देन मानना, भाग्यवाद में विश्वास ।

(8) मनोरंजन के अभाव होने से वे यौन-क्रीड़ा को ही मनोरंजन का एकमात्र साधन मानते है।

(9) भारत में वृद्धजन अपने नाती पोतो की शादी अपने सामने ही करना चाहते है तथा उन्हें अपनी गोद में खिलाने की ललक होती है ।

(10) दूरदर्शिता का अभाव-दूरदर्शिता और दूरगामी परिणामों का ज्ञान न होने से भी जनसंख्या में वृद्धि होती है ।

जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम :

विकराल रूप धारण करती जनसंख्या से निम्न समस्यायें उत्पन्न होती है :-

(1) खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में कमी एवं कुपोषण में वृद्धि ।

(2) भोजन तथा आवासीय समस्या बढ़ेगी । जीवन स्तर गिरेगा एवं गरीबी बढेगी ।

(3) जनसंख्या वृद्धि से मँहगाई बढेगी । कालाबाजारी तथा भ्रष्टाचार में वृद्धि होगी । पेयजल संकट भयावह हो जायेगा ।

(4) बेरोजगारी में वृद्धि होगी जिससे समाज में निर्धनता, अपराध व हिंसा बढेगी ।

(5) परिवार, समाज राष्ट्र का आर्थिक विकास अवरूद्ध होता है । विकासात्मक गतिविधियों का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होगा ।

(6) स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, सन्तान कमजोर पैदा होगी । स्वास्थय प्रद भोजन उपलब्ध नहीं होगा तथा बीमारियाँ बढ़ेगी ।

(7) बढ़ती जनसंख्या के लिए शिक्षा की दीर्घस्तर पर व्यवस्था करनी होगी ।

(8) जनसंख्या वृद्धि में पर्यावरण प्रदूषण बढ़ेगा ।

जनसंख्या को नियंत्रित करने के उपाय

भारत में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए हम निम्नलिखित उपाय अपना सकते है :-

(1) रोजगार के अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध कराये जाये ।

(2) भाग्यवाद में से विश्वास समाप्त किये जायें ।

(3) शिक्षा का प्रचार व प्रसार करना चाहिए, जिसमें यौन-शिक्षा तथा जनसंख्या शिक्षा को अनिवार्य बनाया जायें ।

(4) पुनर्शिक्षा की व्यवस्था हो जिसमें जनसंख्या विस्फोट के उपाय बतायें जायें ।

(5) सामाजिक शिक्षा का विकास किया जाये ।

(6) परिवार कल्याण तथा परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को गति दी जाये ।

(7) बाल-विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जाये ।

(8) विवाह की आयु में वृद्धि के लिए कानून हो जिसका कठोरता से पालन हो ।

(9) मनोरंजन के स्वस्थ साधन उपलब्ध करायें जायें ।

(10) जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों में समुदाय की सहभागिता बढ़ाना ।

जनसंख्या वृद्धि रोकने के उपाय

जनसंख्या वृद्धि एक बहुआयामी समस्या है । अत: कोई एक उपाय जनसंख्या वृद्धि रोकने में सक्षम नहीं होगा । जनसंख्या वृद्धि के अनेक कारण है और इसे रोकने के उपायों का निर्धारक ही इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर करना होगा । भारत में जनसंख्या वृद्धि रोकने के प्रयासों की असफलता का महत्वपूर्ण कारण यही है कि हमने चिकित्सकीय उपायों पर अधिक बल दिया अन्य उपायों पर पर्याप्त बल नहीं दिया गया । जनसंख्या वृद्धि को रोकना केवल सरकारी प्रयासों से ही सम्भव नहीं है । अपितु प्रत्येक व्यक्ति, राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के संगठनों को इसमें अपनी भूमिका अदा करनी होगी । भारत में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए हम निम्नलिखित उपाय अपना सकते है ।

(1) रोजगार के अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध कराये जायें ।

(2) भाग्यवाद में से विश्वास समाप्त किया जायें ।

(3) शिक्षा का प्रचार व प्रसार करना चाहिए जिसमें यौन शिक्षा तथा जनसंख्या शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाये ।

(4) पुनर्शिक्षा की व्यवस्था हो जिसमें जनसंख्या विस्फोट के उपाय बतायें जायें ।

(5) सामाजिक शिक्षा का विकास किया जाये ।

(6) परिवार कल्याण तथा परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को गति दी जाये ।

(7) बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जायें ।

(8) विवाह की आयु में वृद्धि के लिए कानून हो जिसका कठोरता से पालन हों ।

(9) मनोरंजन के स्वस्थ्य साधन उपलब्ध कराये जाये ।

जनसंख्या शिक्षा की समस्याऐं

जनसंख्या की समस्याऐं अत्यन्त जटिल एंव उलझी हुई है । जनसंख्या शिक्षा की समस्याऐं और उनके समाधान हेतु दिये सुझावो को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।

(1) रूढिवादिता एवं अन्धविश्वास की समस्या ।

(2) जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित विषय-वस्तु तथा पर्याप्त साहित्य का अभाव ।

(3) जनसंख्या शिक्षा के स्पष्ट तथा सुनिश्चित उद्देश्यों के अभाव की समस्या ।

(4) पर्याप्त ज्ञान तथा अन्तर्दृष्टि वाले प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव ।

(5) सुनिश्चित तथा वैज्ञानिक पाठ्यक्रम के विकास की समस्या ।

(6) जनसंख्या शिक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त तकनीकी साधनों का अभाव ।

(7) जनसंख्या संबंधी शोध कार्य का अभाव ।

(8) उपयुक्त शिक्षण विधियों की समस्या ।

(9) जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित ज्ञान के मूल्यांकन की समस्या ।

(10) जनसंख्या शिक्षा के प्रति अनुचित दृष्टिकोण की समस्या ।

उपर्युक्त समस्याओं के कारण भारत में जनसंख्या शिक्षा का विकास बहुत ही कम हो पाया है । शिक्षा तथा आर्थिक नियोजन से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को चाहिए कि वे अति शीघ्र ही इन समस्याओं का निराकरण करें तभी जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है तथा देश की उन्नति के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है ।

11.9 सारांश

जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण सभी परिवेश सम्मिलित होते है । वर्तमान में जनसंख्या का स्वरूप एवं इससे उत्पन्न समस्याओं की जानकारी नागरिकों को देना एवं इनके प्रति जागरूक दृष्टिकोण का विकास करना ही जनसंख्या शिक्षा है । जनसंख्या शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करना है, जिसे प्राप्त करने के लिए जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करना आवश्यक है ।

11.10 मूल्यांकन प्रश्न

1 जनसंख्या शिक्षा से आप क्या समझते है?

2 जनसंख्या शिक्षा पाठयक्रम के रूप में किस प्रकार व्यवहार में लाई जा सकती है?

3 जनसंख्या शिक्षा के महत्व के पाँच कारण लिखिए?

4 भारत में जनसंख्या शिक्षा की क्या समस्यायें है? इनके निवारण के लिए क्या कदम उठाये जायें?

11.11 संदर्भ ग्रंथ

1 Gupta, P.K., Population Education; Surya Publication, Meerut, 2001

2 Gopal Rao, D., Population Education-A Guide to curriculum and Teacher Education Sterling Publishers, 1974

3 Mallayar K.C. Population Education, Vinod Pustak Mandir, Agara, 1992

4 Mehta, T.S. Population Education, NCERT, New Delhi

5 Saha, N.K., Population Education Studies Publishers Private Ltd., New Delhi

6 Singh, N.P., Population Education, Vinod Pustak Mahatur, Agara, 2008

इकाई - 12

पर्यावरण शिक्षा

इकाई की संरचना :

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषाएं
12.3 पर्यावरण के विभिन्न प्रकार
12.4 पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ एवं प्रकार
12.5 पर्यावरण प्रदूषण के दुष्परिणाम
12.6 पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषाएं
12.7 पर्यावरण - शिक्षा के माध्यम
12.8 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य
12.9 पर्यावरण शिक्षा - ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
12.10 विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा
12.11 मूल्यांकन प्रश्न
12.12 संदर्भ ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषाएं समझ सकेंगे ।
- पर्यावरण के तीन प्रकारों को जान सकेंगे ।
- पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ एवं प्रकार जान सकेंगें ।
- पर्यावरण प्रदूषण के दुष्परिणामों एवं उपायों से अवगत हो सकेंगे ।
- पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा जान सकेंगे ।
- पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य समझ सकेंगे ।
- विभिन्न स्तर पर पर्यावरण शिक्षा से अवगत हो सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

पृथ्वी की समस्त वस्तुओं को दो भागों में विभाजित किया गया है - (1) जैविक और (2) अजैविक । इन सभी वस्तुओं का प्राणी मात्र पर एकजुट प्रभाव ही पर्यावरण कहलाता है । निःसन्देह इसमें पेड़, पौधे, वनस्पति भूमि. वायु, जल, प्रकाश ताप आदि सभी सम्मिलित हैं । अच्छे पर्यावरण की संकल्पना उन स्थितियों से है जिसमें प्राणधारी की समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह सुखमय जीवन बिता सके । वहीं प्रदूषित पर्यावरण अनेक समस्याओं से ग्रसित होता है और जीवन को कष्टमय बना देता है ।

12.2 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषाएं

पर्यावरण शब्द दो शब्दों परि + आवरण से मिल कर बना है - 'परि' शब्द का अर्थ होता है - 'चारों - ओर' तथा 'आवरण' का अर्थ होता है - 'ढ़के हुए या 'घेरे हुए । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पर्यावरण से आशय उन तथ्यों या घटकों से है जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है । दूसरे शब्दों में जो तत्व, वस्तुएं, पदार्थ, घटक, जीव जन्तु आदि परिवेश को प्रभावित करते हैं उनके समन्वित रूप को पर्यावरण कहते है ।

पर्यावरण शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द Environment शब्द का हिन्दी रूपान्तर है । Environment शब्द फ्रांसीसी भाषा के Environir शब्द से उद्भूत है, जिसका अर्थ है - घेरना या ढकना । अत: स्पष्ट है कि पर्यावरण हमारे आस-पास का एक ऐसा आवरण है जो हमारे क्रिया-कलापों को प्रभावित करता है ।

पर्यावरण की परिभाषाएं (Definitions of Environment)

जिन्सवर्ग के अनुसार - "पर्यावरण उन सबको कहते हैं, जो कि जैव स्वरूप या वस्तु को निकट से घेरे होते हैं एवं उन्हें प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं ।"

वुडवर्थ के अनुसार - "पर्यावरण में वे सब हैं, जिन्होंने व्यक्ति को जीवन आरम्भ करने के समय से प्रभावित किया है ।"

डगलस व हालैण्ड के शब्दों में - "पर्यावरण शब्द का प्रयोग उन सब बाह्य शक्तियों, प्रभावों तथा दशाओं का सामूहिक रूप से वर्णन करने के लिए किया जाता है, जो जीवित प्राणियों के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, बुद्धि विकास और परिपक्वता पर प्रभाव डालते है ।"

रॉस के अनुसार - "पर्यावरण कोई भी वह बाहरी शक्ति है, जो हमको प्रभावित करती है।"

मैकाइवर के अनुसार - "भू पृष्ठ तथा उसकी समस्त प्राकृतिक शक्तियाँ, दशाएँ जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव जीवन को प्रभावित करती है, पर्यावरण के अन्तर्गत आती है।"

ब्रिटैनिका इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार - "पर्यावरण उन सभी बाह्य प्रभावों का समूह है जो जीवों को भौतिक एवं जैविक शक्ति से प्रभावित करते रहते हैं तथा प्रत्येक जीव को आवृत्त किए रहते हैं ।"

12.3 पर्यावरण के विभिन्न प्रकार

पर्यावरण के मुख्य तीन रूप माने गये हैं -

1. प्राकृतिक या भौगोलिक पर्यावरण से तात्पर्य उस पर्यावरण है, जो मनुष्य को पूर्ण रूप से प्रकृति से प्राप्त है । इस दृष्टि से पृथ्वी का धरातल, आकाश, वायु पर्वत, वनश्री, वनस्पतियाँ, पृथ्वी के गर्भ में विद्यमान खनिज पदार्थ तथा प्राकृतिक जल संसाधन, भौगोलिक पर्यावरण के अन्तर्गत आते है ।
2. सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत मानवीय संबंधों से निर्मित समूह, संगठन, समाज, समुदाय, समिति तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाएं आती है ।

3. सांस्कृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत संस्कृति के समस्त उपादान कर्म, नैतिकता, प्रथाएँ, लोकाचार, कानून तथा व्यवहार, प्रतिमान आदि आते है ।

12.4 पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ एवं प्रकार

पर्यावरण प्रदूषण से आशय पर्यावरण के किसी एक घटक या समग्र पर्यावरण में होने वाला ऐसा परिवर्तन है, जो कि मानव व अन्य प्राणियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है ।

1. ओडम के अनुसार, "प्रदूषण हमारी हवा, मृदा एवं जल के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक लक्षणों में अवांछनीय परिवर्तन है, जो मानव जीवन तथा अन्य जीवों, हमारी औद्योगिक प्रक्रिया, जीवन दशाओं तथा सांस्कृतिक विरासतों को हानिकर रूप में प्रभावित करता है, अथवा प्रभावित करेगा अथवा जो कच्चे पदार्थों के स्रोतों को नष्ट कर सकता या करेगा ।"
2. राष्ट्रीय पर्यावरण अनुसंधान परिषद् के अनुसार - "मनुष्य के क्रियाकलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं ।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार (Kinds of Environmental Pollution)

1. वायु प्रदूषण (Air Pollution): वायु में मिलने वाले अवांछित ठोस, द्रव्य या गैसीय तत्व जिनकी अधिकता या कमी के कारण जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों तथा मनुष्यों के स्वास्थ्य एवं क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है वायु प्रदूषण की स्थिति की ओर इशारा करते हैं ।

वायु प्रदूषण में वृद्धि का सर्वाधिक मुख्य कारण डीजल व पेट्रोल से चलित वाहनों की संख्या में असीमित वृद्धि और घरेलू या कार्यालयों में प्रयोग में लाये जाने वाले विविध विद्युत उपकरण है । काफी समय से पेट्रोल तथा डीजल से चलने वाले विभिन्न यातायात के साधनों द्वारा कार्बन मोनोआक्साइड. कार्बन डाइआक्साइड, सल्फर आक्साइड तथा नाइट्रोजन आक्साइड जैसी विषैली गैसों का वातावरण में फैलाव हो रहा है ।

ग्लोबल वार्मिंग (Global Warming) हरित ग्रह प्रभाव (Green House Effect), स्माग घटनाएँ (Smog Episode), ओजोन पर्त का क्षय (क्मचसमजपवद वच्चिदम रत्तंमत) हमारे समक्ष विकट समस्या के रूप में उपस्थित है । यदि समय रहते इसके समाधान के लिए युद्ध स्तर पर प्रयास प्रारम्भ नहीं हुए तो समस्त प्राणी जगत की स्थिति क्या होगी इसका अनुमान स्वत: लगाया जा सकता है ।

2. मृदा या भूमि प्रदूषण (Soil Pollution) :मृदा प्रदूषण का संबंध मुख्य रूप से भूमि की ऊर्वरा शक्ति पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव से है । वर्तमान मानव समाज के द्वारा उत्पन्न जनसंख्या वृद्धि के कारण आवश्यक खाद्य पदार्थ की पूर्ति हेतु कृषि वैज्ञानिकों द्वारा उपज बढ़ाने की दृष्टि से अनेक रसायनों और खादों के प्रयोग का सुझाव दिया जाता रहा है । जिसके परिणामस्वरूप भूमि की उर्वरा शक्ति में ह्रास हो रहा है इसे ही मृदा प्रदूषण के नाम से जाना जाता है ।

3. जल प्रदूषण (Water Pollution)

जल में निश्चित अनुपात में खनिज, अकार्बनिक व कार्बनिक पदार्थ होते हैं । जब इसमें अनावश्यक और दूषित पदार्थ पहुँच जाते हैं तब जल प्रदूषित हो जाता है । प्रदूषित जल अनेक रोगों का जनक होता है । भारत में अधिकांश नदियाँ जल प्रदूषण से ग्रस्त है । जल में मिलने वाला गन्दा पानी, गन्दगी ले जाने वाले वाहन, मृत पशुओं और प्राणियों का जल में विसर्जन, कल-कारखानों का कूडा-कचरा, जल प्रदूषित करने में मुख्य भूमिका निभाते है । विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जल प्रदूषण की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी है -

"जब जल में भौतिक और मानवीय कारणों से कोई बाहरी या विजातीय पदार्थ मिलकर जल के स्वाभाविक या नैसर्गिक गुण को परिवर्तित कर देते हैं, जिसका कुप्रभाव जीवों के स्वस्थ्य पर पड़ता है । तो ऐसा जल, प्रदूषित जल कहलाता है ।"

4. ध्वनि प्रदूषण)Noise Pollution)

इस जगत में पाये जाने वाले समस्त प्राणियों के लिए ध्वनि एक अनुपम वरदान है । ध्वनि सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण साधन है हम अपने विचारों और भावों को दूसरों तक शब्दों या किसी अन्य प्रकार से भी ध्वनि के द्वारा पहुंचाने का प्रयास करते हैं ध्वनि एक प्रकार की ऊर्जा है ।

ध्वनि प्रदूषण आधुनिक युग की अन्य विकट समस्या है इस प्रकार अनैच्छिक या कष्टकर ध्वनि जो मनुष्यों को विचलित कर देती है या असुविधा की स्थिति पैदा कर देती है ध्वनि प्रदूषण के रूप में परिभाषित की जाती है । ध्वनि प्रदूषण की स्थिति में बहरापन, मंदबुद्धिता, उच्च रक्तचाप इत्यादि का खतरा होता है । अर्थात् ध्वनि प्रदूषण से सुनने की क्षमता घटती है. रूधिर ताप बढ़ जाता है, हृदय रोग तथा मंदबुद्धिता की संभावना बढ़ जाती है। तथा तंत्रिका-तंत्र संबंधी रोगों की संभावना बढ़ जाती है । विभिन्न प्रकार के वाहनों, मशीनों, राकेटों, रेडियो, टेलीविजन, लाउड स्पीकर या ध्वनि विस्फोटक यंत्रों एवं पटाखों द्वारा ध्वनि प्रदूषण होता है । जनसंख्या एवं वाहनों की वृद्धि से भी ध्वनि प्रदूषण में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है ।

5. रेडियोधर्मी प्रदूषण (Thermal and Radio Activity Pollution)

रेडियोधर्मी पदार्थ एवं तापीय प्रक्रम से भी प्रदूषण होता है । इस प्रक्रिया में रेडियोधर्मी कण व किरणे जल, वायु तथा मिट्टी में मिलकर प्रदूषण उत्पन्न करते हैं । नाभिकीय विस्फोट, आणविक ऊर्जा संयंत्र, परमाणु भट्टियां, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रान व लेजर किरणें इस प्रकार के प्रदूषण की वृद्धि करते हैं । कैंसर, ल्यूकेनिया आदि भयानक रोग इस प्रकार के प्रदूषण के ही परिणाम है ।

12.5 पर्यावरण प्रदूषण के दुष्परिणाम

पर्यावरण प्रदूषण के अनेक दुष्परिणाम हैं । संक्षेप में इन दुष्परिणामों को हम निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं -

1. पर्यावरण प्रदूषण से मनुष्यों के स्वास्थय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । इससे उनका समुचित विकास नहीं हो पाता ।

2. प्रदूषण से अनेक प्रकार के रोगों की वृद्धि होती है । मियादी बुखार, पीलिया, हैजा, डायरिया, क्षय रोग, कैंसर, बहरापन, अंधापन, आदि अनेक रोग पर्यावरण प्रदूषण के परिणाम है ।
3. प्रदूषण से मनुष्य में रोग निरोधक क्षमता का ह्रास होता है, जिससे मनुष्य अनेक शारीरिक-मानसिक रोगों का शिकार हो जाता है ।
4. प्रदूषण का मनुष्य के सामाजिक-आर्थिक विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के उपाय (Remedial Measures to Control Pollution)

आज विश्व जिन समस्याओं से सर्वाधिक रूप से संत्रस्त है, उन समस्याओं में पर्यावरण की समस्या अत्यन्त विकट है ।

1. जनसंख्या नियंत्रण
2. वन-श्री और वनस्पति की रक्षा और विकास
3. नदियों और जल संसाधन की रक्षा एवं स्वच्छता का संरक्षण
4. परिवहन के साधनों से निकलने वाले धुओं या गैसों को नियंत्रित करने का प्रयास ।

अन्य कुछ उपाय

1. पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सबसे पहले अपनी और तथा अपने घर की स्वच्छता पर पूरा ध्यान देना चाहिए । हमें अपने शरीर, वस्त्रों और अपने घर की पूरी सफाई रखनी चाहिए ।
2. अपने घर के गन्दे पानी को निकालने की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए ।
3. नागरिक सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम में अपना सहयोग दें । प्रत्येक बच्चे के जन्म पर या अन्य शुभ अवसर पर कम से कम एक वृक्ष लगाएँ ।

12.6 पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषाएं

शब्द रचना की दृष्टि से यदि हम पर्यावरणीय शिक्षा को परिभाषित करें तो कह सकते हैं पर्यावरणीय शिक्षा दो शब्दों से मिल कर बनी है ये दो शब्द हैं - पर्यावरण - शिक्षा। अर्थात् वह शिक्षा जो हमें पर्यावरण का ज्ञान प्रदान करती है ।

पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण सम्बन्धी जानकारी व समझ उत्पन्न करने की प्रक्रिया है यह वह शिक्षा है, जो पर्यावरण के माध्यम से पर्यावरण के विषय में, पर्यावरण के लिए होती है । इस प्रक्रिया में पर्यावरण तथा मानव के पारस्परिक संबंधों पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन की शिक्षा दी जाती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पर्यावरण-शिक्षा पर्यावरण के बारे में जानकारी, अवबोध, रुचियों, अभिवृत्तियों, कौशलों व जागरूकता के विकास संबंधी क्रियाओं की शिक्षा है ।

1. संयुक्त राज्य अमेरिका का पर्यावरणीय शिक्षा अधिनियम, 1970 - "पर्यावरणीय शिक्षा का अर्थ है - वह शैक्षिक प्रक्रिया जो मानव के प्राकृतिक तथा मानव निर्मित वातावरण से संबंधित है । इसमें जनसंख्यावृद्धि, प्रदूषण, संसाधनों का विनियोजन एवं नि:शेषण,

संरक्षण, प्रौद्योगिकी तथा संपूर्ण पर्यावरण के शहरी तथा ग्रामीण नियोजन का संबंध भी निहित है ।"

2. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, 1982 - "पर्यावरण-शिक्षा को परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है । पर्यावरण-शिक्षा की विशिष्ट विषय वस्तु को कभी भी परिभाषित नहीं किया गया है । फिर भी सार्वभौमिक रूप से यह स्वीकार किया गया है कि पर्यावरण शिक्षा 'अन्त: अनुशासनात्मक" होनी चाहिए ।"

"पर्यावरण-शिक्षा (पर्यावरणीय शिक्षा) से तात्पर्य उस शैक्षिक अध्ययन-अध्यापन सामग्री से है जो शिक्षार्थी को पर्यावरण के विविध घटकों एवं कारकों, पर्यावरण जन्य समस्याओं तथा उनके समाधान की विधाओं का ज्ञान कराकर पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति जागरूकता विकसित करती है।"

युनेस्को के लिए फिनिश नेशनल कमीशन ने अपनी पर्यावरण शिक्षा की सेमिनार रिपोर्ट में निम्न परिभाषा दी है "पर्यावरण शिक्षा" पर्यावरण सुरक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन है । पर्यावरण शिक्षा किसी विज्ञान अथवा विषय के अध्ययन की अलग शाखा नहीं हैं । इसे जीवनपर्यन्त सम्पूर्ण शिक्षा के अन्तर्गत चलाया जाना चाहिए ।

"Environment Education is a way of implementing the goals of environmental protection. Environmental education is not a repeat branch of science or subject of study. It should be carried out according to the principle of lifelong integral education

(national commission for Unesco. Report of the seminar on environmental education. Jamnee, Finland, 1974)

पर्यावरण शिक्षा को परिभाषित करते हुए अनेक पर्यावरण विशेषज्ञों ने लक्ष्यों को परिभाषा का आधार बनाया है -

"पर्यावरण शिक्षा का मुख्य प्रयोजन नागरिकों के अपने उत्तरदायित्वों में पर्यावरण की सुरक्षा और प्रबन्ध के बारे में जाग्रति पैदा करना है और उसे बढ़ाना है ।

"The main purpose of environment education is to create and enhance the awareness of the citizen to their own responsibility for protecting and managing the environment: H.T. Hewarsam")

अंत में, संक्षिप्त रूप में हम यह कह सकते हैं -

पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण के बारे में जानकारी कर अपने कौशल से उसकी समस्याओं को समझने, हल निकालने और मिटाने अथवा दूर करने की शिक्षा है और वह सभी कार्य निष्पादन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उसकी पुनरावृत्ति न हो ।

12.7 पर्यावरण - शिक्षा के लक्ष्य

पर्यावरण शिक्षा के लक्ष्य इस प्रकार है -

1. विश्व की जनसंख्या को पर्यावरण तथा इससे संबंधित समस्याओं से परिचित करना तथा उनमें अपेक्षित जागरूकता का विकास करना ।
2. आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा परिस्थितिकी स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में पायी जाने वाली समस्याओं से शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्तियों को परिचित कराना ।
3. पर्यावरण की गुणवत्ता की दृष्टि से सवंर्द्धित संरक्षित तथा विकसित करना ।
4. व्यक्ति समूहों तथा समाज के व्यवहार को पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में अपेक्षा के अनुरूप परिवर्तित करने में सहायता देना ।

पर्यावरण शिक्षा के लक्ष्य -

बेलग्रेड वर्कशॉप, पर्यावरण विषय पर पांच विभिन्न देशों में आयोजित क्षेत्रीय बैठकों और टिबलिसी सम्मेलन की अनुशंसाओं के आधार पर पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य निम्न निर्धारित किए गए है -

1. शहरी और ग्रामीण क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और परिस्थितिकी की परस्पर अवलिम्बता के बारे में स्पष्ट जानकारी का विकास करना तथा इसमें रूचि बनाये रखना।
2. प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण संरक्षण और सुधार के लिए वांछनीय ज्ञान मूल्य, मनोवृति तथा वचनवद्धता प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना ।
3. पर्यावरण के प्रति व्यक्तिश: समूह तथा समाज सभी में नए व्यावहारिक दृष्टिकोण का निर्माण करना ।

12.8 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य

1. पर्यावरण के प्रति संचेतना विकसित करना (To create awareness about environment) - व्यक्तियों तथा व्यक्ति समूहों को पर्यावरण तथा पर्यावरण जन्य समस्याओं से अवगत कराकर उनमें पर्यावरण के विविध पक्षों के प्रति संचेतना उत्पन्न करना ।
2. ज्ञान संचरण (To develop knowledge regarding environment)व्यक्तियों तथा व्यक्ति समूहों को पर्यावरण के विविध पक्षों विषयक जानकारी से सुविज्ञ करना ।
3. सकारात्मक अभिवृत्ति का विकास (To develop positive attitude towards environmental awareness) - व्यक्तियों तथा सामाजिक समूहों में सामाजिक मूल्यों, वातावरण के प्रति रागात्मक संबंध, प्रेम भावना तथ उसके संरक्षण एवं सुधार के लिए अभिवृति विकसित करना ।
4. कौशल का विकास (To create skills for solving environmental problem) पर्यावरण संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए कौशल का विकास करना ।
5. मूल्यांकन योग्यता विकसित करना (To develop evaluation ability) - व्यक्तियों तथा व्यक्ति समूहों में पर्यावरण तथा शैक्षिक कार्यक्रमों की परिस्थितिकीय राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सौन्दर्यात्मक तथा शैक्षिक कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित करना ।

6. सहभागिता के लिए प्रोत्साहित करना (To encourage co-operative activities) -पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के क्रियाकलापों में सहभागिता के लिए प्रोत्साहित करना।

12.9 पर्यावरण शिक्षा- परिप्रेक्ष्य

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम 1965 ई. में कील विश्वविद्यालय सभी के लिए पर्यावरण शिक्षा का प्रवर्तन कर पर्यावरण अवबोध को अभिनव आयाम दिया । पर्यावरण शिक्षा की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 1972 ई. में जो अवधारणा मुखरित हुई, वह अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण थी । 'संयुक्त राष्ट्र संघ' (यू.एन.ओ. के स्टाकहोम में आयोजित सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण तथा पर्यावरण अवबोध हेतु एक विस्तृत कार्यक्रम प्रस्तुत हुआ इस कार्यक्रम को स्टाकहोम घोषणा-पत्र सन् 1972 ई. कहा जाता है । इस घोषणा पत्र को विश्व पर्यावरण का "मैग्नाकार्टा" या 'महान अधिकार-पत्र" कहा जाता है । इसमें पर्यावरण संरक्षण हेतु 26 महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इस महाधिकार पत्र की अनुशंसाओ के अनुसार 'यूनेस्को' के अन्तर्गत "संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम" यू.एन.ई.पी.) का गठन किया गया । यू.एन.ई.पी. ने सन् 1975 ई0 में अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम (आई.ई.ई.पी) का प्रवर्तन किया । इस कार्यक्रम का उद्देश्य सामान्यत: विचारों तथा सूचनाओं का आदान-प्रदान तथा क्रियान्वयन, परामर्श सेवा उपलब्ध कराना, अनुसंधान में समन्वय तथा विकास की सुविधा तथा इन कार्यक्रमों से जुड़े व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान करना आदि था ।

इसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम (International Environment Education Project I.E.E.P.) द्वारा बेलग्रेड में अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्य-गोष्ठी का आयोजन 1975 में किया गया । इस घोषणा पत्र में पर्यावरण शिक्षा की औपचारिक विज्ञप्ति की गयी ।

बेलग्रेड सम्मेलन के उपरान्त प्रत्येक क्षेत्र में क्षेत्रीय सम्मेलन हुए । इन सम्मेलनों में क्षेत्र के शिक्षा विशेषज्ञों ने भाग लिया और अपने-अपने क्षेत्रों में पर्यावरण शिक्षा के प्रचार-प्रसार के निश्चय किया ।

1976 ई. में एशियायी देशों की क्षेत्रीय बैठक बैंकाक में नवम्बर 1976 ई. में सम्पन्न हुई । इस सम्मेलन में एशियाई देशों में पर्यावरण शिक्षा के लिए कार्यक्रम निर्धारित किए गए । 1977 में जार्जिया (यू.एस.एस.आर. का एक गणराज्य) में विभिन्न सरकारों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया । 1980 में बैंकाक में वहां क्षेत्रीय बैठक बुलाई गयी तथा एक कार्य गोष्ठी का आयोजन किया गया । इस बैठक में पर्यावरण शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए विशिष्ट विचार प्रस्तुत किये गये । 1992 ई. में पृथ्वी सम्मेलन पर पर्यावरण शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए गए ।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन 1992 के जून माह में ब्राजील की पुरानी राजधानी 'रियोडी जेनरो' नामक शहर में बारह दिनों तक आयोजित किया गया । 1997 में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन हुआ ।

पर्यावरण की सूचना के समुचित अभिगमन के लिए सितम्बर, 2000 में डबलिन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के तत्वाधान में एक वैश्विक सम्मेलन आयोजित किया गया । इसका मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण तथा सतत् विकास सुनिश्चित करना और पर्यावरणीय सूचनाओं के अभिगमन में वृद्धि के लिए प्रयास करना था ।

भारत में महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन पर आधारित 'बेसिक शिक्षा' के पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा अंगीकार करने का एक प्रयास किया गया था । बेसिक शिक्षा के तीन वैचारिक आधार थे:

1. शिक्षा के उत्पादक क्रियाओं का समावेश ।
2. उत्पादक क्रियाओं से पाठ्यक्रम का सह-सम्बन्ध तथा भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के अवबोध के अपेक्षित सामग्री का समावेश ।
3. विद्यालय तथा स्थानीय समुदाय से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने का प्रयास ।

सन् 1963 ई. में पहली कक्षा से लेकर आठवीं कक्षा तक के लिए जो पाठ्यक्रम और पाठ्य-सामग्री निर्धारित की गयी, उसमें पर्यावरण संबंधी जानकारी को यथोचित स्थान दिया गया। सन् 1975 में नये पर्यावरण पाठ्यक्रम को निर्धारित किया गया । 1 नवम्बर, 1980 ई. को केन्द्र में पर्यावरण मंत्रालय खोला गया । 1985 में एक नया एकीकृत विभाग गठित किया गया जिसका नाम 'पर्यावरण वानिकी एवं वन्य जीवन विभाग' रखा गया ।

1985 ई. की मार्च में देशबन्धु द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया तथा 'भारतीय पर्यावरण समाज' की स्थापना की गई । 1985-1990 के बीच तत्कालीन प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए जिनसे पर्यावरण शिक्षा को प्रोत्साहन मिला । सन् 1993 ई. में पर्यावरण शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए दिल्ली में 'विश्व पर्यावरण कांग्रेस' की स्थापना की गयी ।

पर्यावरण शिक्षा का स्वरूप

पर्यावरण शिक्षा का स्वरूप दो प्रकार का हो सकता है -

1 पर्यावरण शिक्षा को एक स्वतंत्र विषय के रूप में पढ़ाया जाए ।

2 विभिन्न विषयों को पर्यावरण शिक्षा के सामंजस्य से पढ़ाया जाए ।

व्यावसायिक

जीव विज्ञान	भौतिक रसायन
(वनस्पति, प्राणी, मानव)	(भौतिकी, रसायन विज्ञान)
अन्य विषय	पर्यावरण शिक्षा, मानविकी
सामाजिक विज्ञान	गणित सांख्यिकी
(समाज, राजनीतिक अर्थ)	

(ii) विभिन्न विषयों में पर्यावरण शिक्षा का सामंजस्य

प्रथम प्रकार से पर्यावरण शिक्षा को पढ़ाने से न केवल विद्यार्थियों पर पाठ्यक्रम का बोझ बढेगा बल्कि जिस विषयवस्तु को वे अलग-अलग विषयों में पढ़ चुके है, उसकी भी पुनरावृत्ति होगी ।

पर्यावरण शिक्षा को अन्य विषयों में समाकलिन करने पर पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों आदि पर अलग से विचार करने का औचित्य ही नहीं रहता । पर्याप्त विमर्श के पश्चात् यह समझ बनी कि प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण विषय को एक अलग विषय के रूप में पढ़ाया जाए जबकि विद्यालयी शिक्षा के अन्य स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा को अन्य विषयों के साथ पढ़ाया जाए ।

12.10 विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा

1. प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा (Environmental Education at Primary Level) यह स्थानीय वातावरण उन्मुख होती है । जहाँ शिक्षा विभिन्न स्कूल विषयों जैसे सामाजिक विज्ञान इत्यादि के अलावा प्रकृति शिक्षा और भाषा के साथ जुड़ी होती है । यह पाठ्य विधि व्यावहारिक क्रियाओं द्वारा होती है जैसे)i) प्रकृति अध्ययन (ii) प्रकृति से सम्बन्धित क्रीडाएँ (iii) प्रकृति पर प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम (फनप्र) (पअ) प्रकृति से नमूना इकट्ठा करना (v) चिडियाघर और पशु अभयारण्य की सैर ।
2. माध्यमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा (Environmental Education at Secondary Level): पर्यावरण शिक्षा वातावरण उन्मुख होती है । इसका पाठ्यक्रम कई विषयों जैसे सामान्य विज्ञान, सामाजिक भाषाओं को शामिल करता है । इसकी पाठ्यविधि भी व्यावहारिक होती है । जैसे: (i) प्राकृतिक घटनाओं को अनुभव करना । (ii) पौधो, पक्षियों, जानवरों, चट्टानों से संबंधित क्रियाएँ (iii) प्रकृति से संबंधित क्रीड़ाएँ । (iv) वातावरण पर प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम (Qui) (v) प्राकृतिक घटनाओं से संबंधित प्रमुख केन्द्रों का भ्रमण करना । (vi) स्थानीय वातावरण और मुद्दों से संबंधित समस्याओं की पहचान जैसे हवा, पानी, मिट्टी, ध्वनि प्रदूषण, वनों की कटाई, अनियमित चराई इत्यादि।
3. महाविद्यालय / तृतीयक स्तर (Environmental Education at College / Tertiary Level): महाविद्यालय स्तर पर पर्यावरण शिक्षा का क्षेत्रफल विस्तृत है । यह अध्ययन, अनुसंधान और ज्ञान के विस्तार से संबंधित है । यह निम्नलिखित तालिका में दिया गया है ।

वातावरण में तीसरे दर्जे और कॉलेज स्तर की शिक्षा

अवस्था / स्तर	लक्ष्य	सामग्री	शिक्षण नीति
तीसरा दर्जा / कॉलेज	संरक्षण में अनुभव पर आधारित कायम रहने वाला विकास ।	कॉलेज / विश्वविद्यालय पर विज्ञान एवं तकनीकी	अध्यापन, व्यावहारिक एवं कार्य-आधारित क्षेत्र-कार्य

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अभ्यास किये जाते हैं:

1. सब विभागों में हर पाठ्यक्रम को पर्यावरण शिक्षा से एकीकृत करना ।

2. पाठ्यक्रमों में विभिन्नता जैसे वातावरण अभियांत्रिकी, सिविल अभियांत्रिकी, नगर नियोजन,मानव प्रबन्ध, औद्योगिक डिजाइनिंग इत्यादि ।
3. संरक्षण से संबंधित पाठ्यक्रम जैसे भूमिका की उपयोगिता, ऊर्जा, प्रबन्ध, वन जीवन प्रबन्ध,राष्ट्रीय उद्यान, जल संसाधन इत्यादि ।
4. पर्यावरण स्वास्थ्य, जनस्वास्थ्य और सफाई इत्यादि को मेडिकल और पूर्व मेडिकल पाठ्यक्रम में पूरा स्थान मिलना चाहिए ।
5. पाठ्यक्रम जैसे जीव-चिकित्सा विज्ञान, विश्व विज्ञान, पौष्टिकता, औषधि का प्रयोग इत्यादि को उच्च शिक्षा पाठ्यक्रमों में पूरा स्थान मिलना चाहिए ।
6. मानव विज्ञान श्रेणी और सामाजिक विज्ञान में कई विषयों जैसे मानव-पर्यावरण, सामाजिक नियोजन समुदाय संगठन और सेवाएं मनोवैज्ञानिक और परामर्श इत्यादि को शामिल किया जाना चाहिए ।
7. क्लब और सोसाइटियों का संगठन जो कि पर्यावरण के विभिन्न अध्ययनों में संबंधित है, वह भी उच्च शिक्षा का एक महत्वपूर्ण घटक होना चाहिए ।
8. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के सम्मेलनों और सदस्यता को बढ़ावा देना ताकि अनुसंधान क्षेत्रों और आवश्यकता-आधारित पाठ्यक्रमों को विकसित किया जा सके ।
9. पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर चर्चा, सेमिनार, वर्कशॉप और इसे अनुसंधान के रूप में पहचानना ।

12.11 मूल्यांकन प्रश्न

1. पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषाएं समझाइये?
2. पर्यावरण प्रदूषण से आप क्या समझते हैं, इसके विभिन्न प्रकार कौन से हैं?
3. पर्यावरण प्रदूषण के दुष्परिणाम एवं उपायों का विश्लेषण कीजिए ।
4. पर्यावरण शिक्षा का अर्थ समझाते हुए कुछ परिभाषाएं लिखिये ।
5. पर्यावरण शिक्षा के प्रमुख लक्ष्य एवं उद्देश्य कौन से हैं?
6. पर्यावरण शिक्षा - ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर एक टिप्पणी लिखिये ।
7. विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा की क्या भूमिका है?

12.12 संदर्भ ग्रंथ

1. माथुर भावना (2001) "मानव और पर्यावरण भूगोल" राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी ।
2. शर्मा, सिंह एवं बसंल (2002) "पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण" सूर्या पब्लिकेशन,नई दिल्ली ।

इकाई - 13

भारत में तकनीकी शिक्षा

इकाई की संरचना

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 तकनीकी शिक्षा

13.3 भारत में तकनीकी शिक्षा का विकास

13.3.1 स्वतन्त्रता पूर्व परिदृश्य

13.3.2 स्वतन्त्रता पश्चात् तकनीकी शिक्षा का विकास

13.4 सारांश

13.5 स्वमूल्यांकन

13.6 सन्दर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी -

- तकनीकी शिक्षा के प्रत्यय को जान सकेंगे ।
- वर्तमान के उच्च तकनीकी संस्थानों के मानदण्डों को जान सकेंगे ।
- भारत में तकनीकी शिक्षा के विकास को समझ सकेंगे ।
- भारत में ब्रिटिश शासकों के द्वारा तकनीकी शिक्षा की शुरूआत को समझ सकेंगे ।
- अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के कार्य क्षेत्र को समझ सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

तकनीकी शिक्षा को लेकर हमारे देश में हमेशा एक असमंजस का माहौल रहा है । पिछली सरकारे रही हों या अभिभावक-विद्यार्थी, सबमें इसके प्रति एक उदासीनता का भाव रहा है । लेकिन आज भूमंडलीकरण के दौर में जब दुनिया सिकुड़ती जा रही है और ज्ञान तथा उद्यम के नये क्षितिज खुलते जा रहे हैं, सरकार तथा विद्यार्थी भी इसमें संभावनाओं की तलाश में जुट गये हैं । विदेशी विश्वविद्यालयों के आगमन को विद्यार्थी भी नई राहों की ओर उम्मीद भरी नजरों से देख रहे हैं ।

वर्तमान में पाँच अहम मानदंडों - प्रतिष्ठा, शैक्षणिक सामग्री की गुणवत्ता, छात्रों की देखभाल, अधोसंरचना और रोजगार की सम्भावना के आधार पर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के साथ कॉलेजों की रैंकिंग की जा रही है ।

13.2 तकनीकी शिक्षा

देश में तकनीकी शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत अभियांत्रिक (इंजीनियरिंग), प्रौद्योगिक, प्रबंधन, वास्तुकला (आर्किटेक्चर), फार्मेसी, नगर नियोजन, हॉटल मैनेजमेन्ट, शिल्प, अनुप्रयुक्त कला एवं शिल्प इत्यादि आते हैं ।

भारत में तकनीकी शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा तन्त्र को एक महत्वपूर्ण भाग प्रदान करती है । हमारे देश में आर्थिक एवं सामाजिक विकास में सक्रिय भूमिका का निर्वहन करती है । भारत में तकनीकी शिक्षा कई भागों में - डिप्लोमा, डिग्री, मास्टर डिग्री एवं क्षेत्र विशेष में शोध, आर्थिक वृद्धि व तकनीकी विकास के विभिन्न पहलुओं का प्रबन्धन आदि में विभक्त है ।

13.3 भारत में तकनीकी शिक्षा का विकास

हाल के वर्षों में भारत में तकनीकी शिक्षा बहुत तेजी से बढ़ी है । इसके बावजूद देश के प्रौद्योगिकी संस्थान अपने क्षेत्र में सबसे अच्छे बने हुए हैं । लेकिन भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान विश्वस्तरीय संस्थान बनने से अब भी काफी दूर है । भारत में तकनीकी विकास को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

13.3.1 स्वतन्त्रता पूर्व का परिदृश्य

भारत में ब्रिटिश शासकों द्वारा तकनीकी शिक्षा की शुरूआत भवन निर्माण, नहर, सड़क, बन्दरगाह आदि के निर्माण व मरम्मत के लिए तकनीकी अभियन्ताओं की आवश्यकता थी । उन्हें शिल्पकार, चित्रकार, ड्राफ्ट्समैन आदि के प्रशिक्षण की आवश्यकता थी । जिससे वे यन्त्रों व उपकरणों का प्रयोग कर सकें । स्थल व नौसेना तथा सर्वेक्षण विभाग में अधीक्षण अभियन्ता ब्रिटेन के कूपरस हिलन महाविद्यालय से नियुक्त किये जाते थे । इसी प्रकार फोरमैन, क्राफ्टसमैन, कलाकार एवं तकनीकी अभियन्ताओं की नियुक्ति भी ब्रिटेन से होती थी । अन्य सभी नीचे के तकनीकी कर्मियो की नियुक्ति स्थानीय स्तर पर होती थी । चूंकि ये लोग अनपढ़ थे, इनकी कार्यक्षमता बहुत कम थी । इसलिए उन्हे इस क्षेत्र में लिखने-पढ़ने, भूगोल, यान्त्रिकी का ज्ञान करवाने के लिए आयुध फैक्टरी के समीप औद्योगिक प्रशिक्षण स्कूल खोले गये । सन् 1825 से पहले कलकत्ता व मुम्बई में इस प्रकार के स्कूल थे । लेकिन इस हेतु जो प्रमाण उपलब्ध है वह गुण्ड्डी, मद्रास में औद्योगिक प्रशिक्षण विद्यालय खोला गया । जो आयुध (गन व कारतूस) फैक्ट्री के समीप था । इसी प्रकार सन् 1854 में पूना में अभियन्ताओं के प्रशिक्षण के लिए एक विद्यालय खोला गया ।

अमेरिका व यूरोप में तकनीकी महाविद्यालयों का विकास हो रहा था, जो गणित में विशेष प्रशिक्षण दे रहे थे । भारत में भी यह मांग उठने लगी कि औपनिवेशिक भारत में भी इस प्रकार के तकनीकी विद्यालय खोले जाए । सर्वप्रथम तकनीकी महाविद्यालय उत्तर प्रदेश में सन् 1847 में रूड़की में थामसन सिविल इंजीनियरिंग महाविद्यालय शुरूआत की गई । अपर गंगा नहर के रखरखाव के लिए एक बड़ा वर्कशॉप खोला गया । जो उस समय किसी भी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध नहीं था । लेकिन थामसन सिविल इंजीनियरिंग महाविद्यालय डिप्लोमा की उपाधि दे रहा था । जो इंजीनियरिग के समकक्ष थी । सन् 1856 में कलकत्ता,

मुम्बई व मद्रास में तीन इंजीनियरिंग महाविद्यालय खोले गये । नवम्बर 1856 में कलकत्ता में बंगाल इंजीनियरिंग महाविद्यालय खोला गया । जिसे सन् 1880 में सिबपुर बिशॉप महाविद्यालय में स्थानान्तरित कर दिया ।

मुम्बई में इंजीनियरिंग महाविद्यालय स्थापित न होने के कुछ कारण थे । लेकिन पूना तकनीकी विद्यालय को क्रमोन्नत कर महाविद्यालय का दर्जा दे दिया । मद्रास प्रेजेन्डसी में आयुध फैक्ट्री, गुण्ड्डी में तकनीकी महाविद्यालय की शुरूआत की गई । शिबपुर, पूना व गुण्ड्डी इंजीनियरिग महाविद्यालय सिविल में डिग्री देते थे । सन् 1887 में बोम्बे विक्टोरिया जुबली तकनीकी संस्थान, बॉम्बे में इलेक्ट्रॉनिक्स, मैकेनिकल व टेक्सटाइल में डिग्री देते थे ।

सन् 1907 में स्वदेशी आन्दोलन के द्वारा भारत में एक राष्ट्रीय तकनीकी विश्वविद्यालय भारतीय शिक्षा परिषद् के सहयोग से खोले जाने की मांग उठी । इस प्रकार भारतीय शिक्षा परिषद ने कई तकनीकी विद्यालयों की स्थापना की गई । लेकिन जादवपुर में ही तकनीकी विद्यालय बना रहा । यह सन् 1908 में मेंकेनिकल व इंजीनियरिग में डिप्लोमा तथा 1921 में डिग्री देने लगा ।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917) में मेंकेनिकल व इलेक्ट्रोनिक डिग्री महाविद्यालय की स्थापना हेतु बहस प्रस्तुत की । भारतीय औद्योगिक आयोग (1915) के अध्यक्ष सर थोमस होलैण्ड ने भी औद्योगिक शिक्षा के शुरूवात करने के लिए कई सुझाव दिये। पण्डित मदन मोहन मालवीय के प्रयास से बनारस विश्वविद्यालय में सन् 1917 में मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल तथा धातुकर्म में इंजीनियरिंग की उपाधि प्रारम्भ की गई । सिबपुर, गुण्ड्डी तथा पूना में 15 वर्ष पश्चात् मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल एवं धातुकर्म इंजीनियरिंग में पाठ्यक्रमों को प्रारम्भ किया गया ।

13.3.2 स्वतन्त्रता पश्चात तकनीकी शिक्षा का विकास

राष्ट्र के सामाजिक व आर्थिक विकास में तकनीकी शिक्षा एक महत्वपूर्ण एवं सशक्त भूमिका निर्वहन करती है । भारत में तकनीकी शिक्षा विभिन्न स्तरों पर प्रदान की जाती है जैसे - शिल्पकला, डिप्लोमा, डिग्री, अधिस्नातक और शोध जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में तकनीकी विकास एवं आर्थिक उन्नति के विभिन्न पहलुओं को दृष्टिगत रखा जाता है । भारत में औपचारिक तकनीकी शिक्षा का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के मध्य में हुआ ।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् का गठन नवम्बर 1945 में हुई । राष्ट्रीय स्तर की शीर्ष सलाहकार संस्था जो देश में तकनीकी शिक्षा के समन्वित विकास हेतु सुविधाओं पर सर्वे का संचालन करें । राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के तहत अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद को देश में तकनीकी शिक्षा के समन्वित विकास सुनिश्चित करने के लिए नियोजन, नीति निर्धारण, मानक, गुणात्मक शिक्षा का रखरखाव, प्राथमिक क्षेत्रों में कोष का निर्धारण, मूल्यांकन व मॉनीटरिंग, प्रमाणीकरण एवं पुरस्कार आदि का वैधानिक अधिकार सौंपा गया ।

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय में भी एक राष्ट्रीय कार्यकारी समूह का निर्माण किया, जो अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के योगदान - तकनीकी शिक्षा के

निरूपण और मानकों के रखरखाव के सन्दर्भ में जांच करेगा । कार्यकारी समूह के सुझावों में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद को अति आवश्यक वैधानिक अधिकार देते हुए इसे और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु विद्यमान तथा प्रचलित प्रविधियों को पुनसंरचित कर आवश्यक आधारभूत ढांचें को सुदृढ़ बनाया जावें । उपर्युक्त कार्यकारी समूह के सुझावों को दृष्टिगत करते हुए अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम 52 सन् 1987 संसद के दोनों सदनों में पारित किया गया । यह अधिनियम 28 मार्च 1988 से लागू किया गया । तकनीकी शिक्षा के लिए अखिल भारतीय वैधानिक परिषद् की स्थापना 12 मई 1988 में इस दृष्टिकोण के साथ की गई । यह परिषद देश भर तकनीकी शिक्षा के समन्वित विकास एवं उचित नियोजन, गुणात्मक एवं मात्रात्मक तकनीकी शिक्षा के उत्थान एवं नियमन व मानकों का उचित पालन सुनिश्चित करवाये ।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् के अंग निम्नलिखित ब्यूरो हैं -

1. प्रशासनिक ब्यूरो
2. शैक्षिक ब्यूरो
3. अभियान्त्रिक व प्रौद्योगिक ब्यूरो
4. वित्त ब्यूरो
5. प्रबन्ध व प्रौद्योगिक ब्यूरो
6. योजना व विश्वसनीयता ब्यूरो
7. शोध व संस्थानिक विकास ब्यूरो

भारत में तकनीकी शिक्षा को तीन स्पष्ट भागों में विभाजित किया गया है-

- औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान :- जहाँ कुशल श्रमिकों के लिए विभिन्न ट्रेड चलाये जाते है ।
- पोलेटेक्निकल महाविद्यालय :- जहाँ मध्यम स्तर के तकनीकी कुशलों के लिए डिप्लोमा कार्यक्रम।
- इंजीनियरिंग महाविद्यालय :- जहाँ इंजीनियरिंग व प्रौद्योगिकी में स्नातक व अधिस्नातक डिग्री पाठ्यक्रम कार्यक्रम ।

ग्यारहवीं योजना के प्रारंभ के समय 19 केंद्रीय विश्वविद्यालय, 7 भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, 20 राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, 4 भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, 2 भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान, 6 भारतीय प्रबंधन संस्थान और 1 योजना और वास्तुकला विद्यालय के अलावा केंद्र द्वारा वित्तपोशित कुछ अन्य शिक्षण संस्थाएं थी । ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान तकनीकी और उच्च शिक्षा के अनेक संस्थान खोले गये हैं । 13 नये केंद्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना के अलावा 3 प्रांतीय विश्वविद्यालयों को केंद्रीय विश्वविद्यालयों में परिवर्तित किया गया है । 8 नये आईआईटी, 7 नये आईआईएम, 3 नये आईआईएसईआर, 2 नये एसपीए और अनेक नयी पॉलिटेक्निक संस्थाएं भी स्थापित की गई है। इनके अतिरिक्त 10 नयी राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थाओं को मंजूरी दी गई है । राष्ट्रीय औसत की तुलना में कम सकल नामांकन अनुपात वाले शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए जिलों में 374

महाविद्यालयों की स्थापना पर विचार किया जा रहा है । विश्वस्तरीय 14 विश्वविद्यालयों (अथवा नवोन्मेशी विश्वविद्यालय) और 20 नये आईआईटी संस्थानों की स्थापना का विचार अभी प्रारंभिक अवस्था में है ।

वर्ष 2007-08 में विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा पर व्यय कुल शिक्षा परिव्यय का क्रमश: 11.83 प्रतिशत और 5.33 प्रतिशत भाग रहा । तकनीकी शिक्षा पर व्यय का अंश वर्ष 2006-07 के 3.8 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2007-08 में 5.33 प्रतिशत हो गया ।

ग्यारहवीं योजना के पहले तीन वर्षों के दौरान मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा शिक्षा पर किए गए बजटीय व्यय के विश्लेषण के अनुसार केंद्रीय योजना और गैर-योजना व्यय दसवीं योजना के केंद्रीय योजना और गैर-योजना व्यय में हुई, वार्षिक वृद्धि के विपरीत क्रमश: 521 प्रतिशत और 44 प्रतिशत की दर से बढ़ा है । उच्च शिक्षा में केंद्रीय योजना और गैर-योजना तथा सार्वजनिक व्यय में केंद्रीय योजना और गैर-योजना तथा सार्वजनिक व्यय में राज्य योजना और गैर-योजना का हिस्सा क्रमश: 8 प्रतिशत, 13 प्रतिशत, 6 प्रतिशत और 73 प्रतिशत रहा है । नौवीं से दसवीं योजना में केंद्रीय योजना व्यय बढ़कर 86 प्रतिशत हो गया । इसी अवधि में राज्य योजना व्यय बढ़कर 76 प्रतिशत हो गया । केंद्रीय योजना व्यय 10 वीं योजना की तुलना में 11 वीं योजना में 10 गुने से भी अधिक बढ़ गया । तकनीकी शिक्षा के विस्तार के लिए धन जुटाने हेतु किसी प्रकार की संस्थागत व्यवस्था कायम करने पर भी विचार की जाने की आवश्यकता है ।

भारत में तकनीकी शिक्षा के बारे में जब बात की गई है तो आवश्यक है कि शिक्षा तकनीकी को भी हम समझें । चूंकि हम शिक्षा के विद्यार्थी है तो शैक्षिक तकनीक के बारे में जानकारी होनी जरूरी है ।

शिक्षा तकनीकी का इतिहास

भारत में आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी यह स्पष्ट है कि आर्थिक एवं उत्पादन क्षेत्रों में धीरे-धीरे तकनीकी का प्रवेश हो चुका है व इसका प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है । शिक्षा के क्षेत्र में भी इसका वांछित है तथा शिक्षा में तकनीकी का प्रयोग होने लगा है व इस दिशा में अनुसंधान भी होने लगे हैं । शिक्षा के दो- प्रमुख क्षेत्र अधिगम एवं शिक्षण है । इन दोनों प्रक्रियाओं के माध्यम से अधिगमकर्ता अपने उद्देश्यों को निरन्तर पुनर्बलन नहीं दे सकता है जो एक आदर्श अधिगम स्तर के लिए आवश्यक है और इसलिए शिक्षण को मशीन एवं अन्य शिक्षण सहायक सामग्री की आवश्यकता पड़ती है ।

सन् 1960 से पूर्व 'शैक्षिक तकनीकी' को दृश्य-श्रव्य सामग्री तथा कक्षा-शिक्षण से सम्बन्धित अधिकतर शिक्षण सामग्री से सम्बन्धित किया जाता था । अधिकतर शिक्षकों एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए शैक्षिक तकनीकी का अर्थ शिक्षण में प्रयुक्त सहायक सामग्री से ही होता था । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी शैक्षिक खिलौने आदि का प्रयोग प्राथमिक कक्षाओं में होता था । सन् 1950 के दशक में स्टैनले एडवर्ड, बी.एफ, स्किनर आदि अभिक्रमित अध्ययन पद्धति का विकास किया तथा उसी के आधार पर कुछ उत्कृष्ट पुस्तको का निर्माण भी हुआ । कार्डो तथा बोर्डो को प्रस्तुत कर शिक्षण के यंत्रीकरण करने का प्रयास किया गया । सन्

195 में सर्वप्रथम इंग्लैंण्ड के शिक्षाविद् का प्रयोग किया और धीरे-धीरे अन्य देशों व भारत में महत्व का बिन्दु बन गया । यह शिक्षा के 'एक विषय' के रूप में निहित किया गया व इस क्षेत्र में अध्ययन व विकास के लिए प्रयास प्रारम्भ हो गया । शैक्षिक तकनीकी अब शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का 'कार्यात्मक विश्लेषण' प्रस्तुत कर शिक्षा प्रणाली के अन्य तत्वों का अध्ययन करती है जो शिक्षण में अदा से प्रदा तक की प्रक्रिया में निहित होते हैं । इस दिशा में कार्य करते हुए शैक्षिक अनुसंधान एव समझा एव शैक्षिक तकनीकी केन्द्र के नाम से पृथक विभाग खोला, जो शैक्षिक तकनीकी का विकास एव उनके द्वारा विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का निदान करने की सम्भावना एवं शोध की दिशा में कार्य करने का प्रयास करता है ।

शैक्षिक तकनीकी के विकास के परिणामस्वरूप ही अन्य क्षेत्रों की भांति अब विज्ञान एवं मशीनों का प्रयोग शिक्षा में होने लगा है । शिक्षण मशीन, रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकॉर्डर, कम्प्यूटर एवं भाषा प्रयोगशालाओं का प्रयोग अब शिक्षण प्रक्रिया में अधिकाधिक किया जाने लगा है । मानव ज्ञान के सभी पक्षों - संचय संचरण आज आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के माध्यम से विश्व में कहीं भी दूर बैठा विद्यार्थी, प्रभावी शिक्षक को सुनकर लाभ उठा सकता है एवं ज्ञान में वृद्धि कर सकता है । इसके माध्यम से वह अपने ज्ञान को आधुनिकतम सीमा तक वृद्धि कर सकता है । शिक्षण तकनीकी एवं व्यवहार तकनीकी में अनेक शिक्षण मशीनों - हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर का प्रयोग किया जाने लगा है ।

शैक्षिक तकनीकी की आवश्यकता

वर्तमान युग को तकनीकी युग कहा जाता है । जैसे-जैसे शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होती गई, शिक्षा को अधिकाधिक वैज्ञानिक आधार देने की आवश्यकता अनुभव होने लगी क्योंकि प्रत्येक तकनीकी विकास के आधार शिक्षा ही है । शिक्षा की अवधारणा प्रमुखतया आधुनिकतम संकल्पना के रूप में बालक का सर्वांगीण विकास है । यह शिक्षण की अपेक्षा अधिगम पर बल देती है तथा बालक के व्यवहार में अपेक्षित अनुकूलतम व्यवहारगत परिवर्तन इस प्रकार से करती है कि बालक की अन्तर्निहित क्षमताओं को बहुमुखी कर सामाजिक वातावरण में विकसित कर सके । बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रमुख आधार बनता है - 'ज्ञान' जिसके माध्यम से अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन उद्देश्यानुसार लाने का प्रयास किया जाता है । अत: ज्ञान के संचय, प्रसार एवं विकास हेतु आधुनिकतम तकनीकियों की आवश्यकता अनुभव हो जाने लगी । इसमें भी आधुनिकतम यंत्रीकरण कर विकास किया जाने लगा और यह विकास के पथ पर है-

1	2	3
ज्ञान का संचय	ज्ञान का प्रसार	ज्ञान का विकास
प्रिण्टिग मशीन,	रेडियों, दूरदर्शन,	शिक्षण विधि, प्रविधि
ऑफसैट, प्रिटिंग,	कम्प्यूटर, सी.सी.	व्यूह रचना, शिक्षण
पुस्तकें, टेप-	टीवी.,	सिद्धान्त प्रतिमान
रिकॉर्डर,	सैटेलाइट	के विकास हेतु
फिल्म	आदि	वैज्ञानिक
		शोधकार्य

आदि

शिक्षा तकनीकी का सम्बन्ध केवल हार्डवेयर (मशीन) अभियांत्रिकी से नहीं है, वरन् शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु, अनुदेशन को संकलित करने हेतु एवं शिक्षण के प्रभाव का मूल्यांकन करने हेतु आधुनिकतम तकनीकी के प्रयोग करने से है । यह हार्डवेयर के प्रयोग के माध्यम से हो सकती है अथवा सॉफ्टवेयर के विकास के रूप में हो सकती है, यथा - शिक्षण प्रतिमान, शिक्षण सिद्धान्त ।

अभिक्रमित अनुदेशन, शिक्षण पद्धति, प्रविधि अथवा व्यूहरचनाओं का विकास । दूरगामी शिक्षा आधुनिक शिक्षा तकनीकी का एक उदाहरण है । शिक्षा तकनीकी में व्यावहारिक पक्ष अधिक सक्रिय रहता है इसलिए इसको शिक्षा अभियंत्रण भी कहा जाता है । यह शिक्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक ज्ञान का व्यावहारिक कार्यों में क्रमबद्ध प्रयोग करती है । यह अन्य विषय क्षेत्रों, यथा - मनोविज्ञान, भौतिकी, समाजशास्त्र, प्रशासन, प्रबन्ध आदि के सिद्धान्तों को ग्रहण कर शिक्षा में विधि, प्रविधि, व्यूहरचना, शिक्षक-शिक्षार्थी अन्तःक्रिया, मूल्यांकन प्रक्रिया आदि की रूपरेखा बनाने एवं विद्यालय संगठन तथा प्रशासन में सुधार लाने हेतु उनका व्यावहारिक क्रम में वैज्ञानिक प्रयोग है ।

13.4 सारांश

एक सर्वसंपन्न शिक्षा प्रणाली जो युवा वर्ग को व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ-साथ कौशल व प्रतिभा बढ़ाने का उपयुक्त मौका व साधन दे, इस तरह के अभाव को उत्पन्न नहीं होने देती । किंतु सैकड़ों ऐसे बच्चों के लिए जिन्हें उच्च शिक्षा में या तो रूचि नहीं है या फिर जो आर्थिक कारणों की वजह से पढ़ाई जारी नहीं रखपाते तथा परिवार का खर्च चलाने हेतु कम उम्र में ही नौकरी करने पर मजबूर हो जाते हैं, उनके लिए सदियों से चली आई हमारी शिक्षा प्रणाली हकीकत से कितनी दूर है इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि आज हमारे देश में केवल पांच प्रतिशत लोग ही किसी प्रकार की कार्यकुशलता रखते हैं । अन्य सभी विकसित देशों में यह संख्या इससे कहीं अधिक है। दक्षिण एशिया में 85 प्रतिशत, मलेशिया में 95 प्रतिशत तथा अमेरीका, चीन, रूस आदि देशों में 60 प्रतिशत से अधिक है ।

13.5 मूल्यांकन प्रश्न

1. भारत में तकनीकी शिक्षा के विकास को विस्तार पूर्वक समझाइये ।
2. ब्रिटिश शासकों के द्वारा तकनीकी शिक्षा के विकास को बताईये ।
3. अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के कार्यप्रणाली को समझाईये ।

13.6 संदर्भ ग्रंथ

1. Agarwal, A.N. (1986) Indian Economy problems of development and planning, Wiley Eastern Ltd., Delhi.
2. Altbach, Philip G. (1996) Higher Education and Modernization. Vikas Publishing House, New Delhi.

इकाई - 14

शिक्षा एवं विकसित होती सामाजिक असमानता

इकाई की संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 सामाजिक असमानता का अर्थ

14.3 सामाजिक असमानता के कारक

14.4 सामाजिक असमानता के प्रकार

14.5 सामाजिक असमानता को दूर करने के उपाय

14.6 सामाजिक असमानता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका

14.7 सामाजिक असमानता को दूर करने के प्रमुख सरकारी प्रयास

14.8 सारांश

14.9 शब्दावली

14.10 स्वमूल्यांकन

14.11 सन्दर्भ ग्रंथ

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्-

- विद्यार्थी शिक्षा के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- विद्यार्थी शिक्षा के सम्प्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे ।
- विद्यार्थी शिक्षा के विभिन्न अंगों के मध्य सह-सम्बन्ध को समझ सकेंगे ।
- विद्यार्थी शिक्षा के कार्यों का वर्गीकरण कर सकेंगे ।
- विद्यार्थी व्यक्ति के विकास में शिक्षा की भूमिका को जान सकेंगे ।
- विद्यार्थी सामाजिक असमानता के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- विद्यार्थी सामाजिक असमानता के कारणों को समझ सकेंगे ।
- विद्यार्थी सामाजिक असमानता के प्रकारो के मध्य भेद कर सकेंगे ।
- विद्यार्थी सामाजिक असमानता को दूर करने के प्रयासों और उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- विद्यार्थी सामाजिक असमानता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका को समझ सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

शिक्षा के सामाजिक कार्यों में महत्वपूर्ण कार्य है सामाजिक जागरूकता का विकास करना व अपने आस पास फैली सामाजिक बुराइयों व सामाजिक असमानताओं को दूर करना । सामाजिक असमानता का अर्थ होता है कि समाज के कुछ न्यूनतम प्रतिशत लोगों के पास धन, सम्पदा, पद, प्रतिष्ठा आदि अन्य लोगों की तुलना में ज्यादा होता है । समाज में आर्थिक

संसाधनों व सामाजिक संसाधनों का केन्द्रीकरण एक छोटे से वर्ग या लोगों में केन्द्रित हो जाता है ये थोड़े से प्रतिशत लोग समाज के अन्य लोगों से भेदभावपूर्ण व्यवहार करते है या यूँ कहा जाए की इस स्थिति में सुविधासम्पन्न वर्ग व वंचित वर्ग के बीच में असमानताएं उत्पन्न हो जाती है यही सामाजिक असमानता कहलाती है ।

सामाजिक असमानता कई प्रकार की होती है जैसे जातिभेद, रगंभेद, लिंगभेद, आर्थिक, अस्पृश्यता आदि । इन सभी प्रकार की असमानताओं को दूर करने में केवल शिक्षा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । शिक्षा के माध्यम से ही समाज के वंचित वर्ग को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है । यद्यपि सरकार ऐसे पिछड़े व अविकसित वर्गों के उत्थान के लिए बहुत सारे कानून बना रही है कार्यकारी योजनायें चला रही है । निःशुल्क शिक्षा, आवास, भोजन, चिकित्सा आदि सभी प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था कर रही है किन्तु इससे शिक्षा का महत्व कम नहीं हो जाता बल्कि बढ़ जाता है क्योंकि इन सब अधिकारों व योजनाओं के प्रति जागरूकता शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त होती है अत: सामाजिक असमानता को दूर करने के सरकारी प्रयासों के अतिरिक्त व्यक्तिगत स्तर पर भी प्रयासों की अत्यधिक आवश्यकता है ये व्यक्तिगत प्रयास जागरूकता केवल शिक्षा द्वारा ही सम्भव है ।

यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा के विकास ने विश्व परिदृश्य को बदल कर रख दिया है । शिक्षा जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास का बहुआयामी साधन है, शिक्षा ने विकास के सर्वसुलभ अवसर सभी को उपलब्ध करा दिये है । पिछले दशक में ज्ञान का जो विस्फोट हुआ है । उसने समूचे विश्व को एक पंक्ति में ला खड़ा किया है । ज्ञान के विस्फोट ने शिक्षा के महत्व को बढ़ा दिया है । अब सभी देशों की सरकारे अपने देश, समाज व संसाधनों के आधार पर शिक्षा के विकास के लिए एकजुट प्रयास कर रही है तथा शिक्षा के प्रचार प्रसार के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों को तीव्रता प्रदान करने में सहयोग कर रही है । वर्तमान में सभी देशों में अन्तर्राष्ट्रीय मानकों पर आधारित शिक्षण संस्थाओं की स्थापना बढ़ी संख्या में की जा रही है यह स्थिति पश्चिम से निकल कर पूरे विश्व में फैल चूकी है विकासशील व अविकसित राष्ट्र भी शिक्षा की ज्योति से अपने विकास का मार्ग प्रशस्त कर रहे है ।

किन्तु इससे विपरीत तस्वीर का दूसरा पहलु भी है जो हमें विकास की वास्तविकताओं से परिचित करवाता है बेशक विश्व में ज्ञान के विस्फोट ने सभी को विकास की राह दिखलाई है किन्तु वास्तविकता यह है कि अभी भी विश्व के तीन चौथाई आम लोगों तक विकास की रोशनी भी नहीं पहुंची है । शिक्षा के अवसर सभी को समान रूप से प्राप्त नहीं है । शिक्षा से भी पहले मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं रोटी-कपड़ा-मकान तक भी सभी को समान रूप से उपलब्ध नहीं है । हम केवल विज्ञान व तकनीकी विकास के कारण भौतिकता का तो विकास कर पाये है किन्तु सामाजिक विकास सही मायनों में अभी तक प्रारम्भ नहीं हुआ है । समाज के बहुत से वर्ग अभी तक अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने से वंचित है । समाज में अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, लिंगभेद, सामाजिक-आर्थिक स्तर पर भेदभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । जनता के मध्य आर्थिक खाई चौड़ी होती जा रही है और यही स्थिति सामाजिक असमानता को जन्म देने व उसे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है । विकासशील राष्ट्रों व अविकसित राष्ट्रों में सामाजिक असमानता की स्थिति और जटिल होती जा रही है क्योंकि वहां के समाज अभी भी

बन्द समाज है उनमें कट्टरता पाई जाती है अत: सामाजिक असमानता अभी भी अभिशाप बनी हुई है ।

14.2 सामाजिक असमानता का अर्थ

प्रत्येक समाज में कुछ लोगों के पास धन, संपदा, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शक्ति जैसे मूल्यवान संसाधनों का हिस्सा समाज के अन्य लोगों से ज्यादा होता है । अर्थात समाज के कुछ लोग सर्वसुविधा सम्पन्न होते है व अन्य लोग सुविधाविहिन होते है ज्यादातर समाजों में सुविधासम्पन्न लोगों का प्रतिशत कम होता है व सुविधाहीन लोगों का प्रतिशत अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा होता है इस **सुविधा सम्पन्नता** को समाजशास्त्र की भाषा में **सामाजिक संसाधन** कहा जाता है ।

इस सामाजिक संसाधन के अन्तर्गत तीन तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें पूंजी नाम से संबोधित किया जाता है ।

1. भौतिक सम्पत्ति एवं आय के रूप में **आर्थिक पूंजी**
2. प्रतिष्ठा व शैक्षणिक योग्यताओं के रूप में **सांस्कृतिक पूंजी**
3. सामाजिक संगतियो एवं सम्पर्को के जाल के रूप में **सामाजिक पूंजी**

उक्त तीनों प्रकार की पूंजी के सम्मिश्रित रूप को सामाजिक संसाधन कहा जाता है । इसी सामाजिक संसाधन के असमान वितरण से सामाजिक असमानता उत्पन्न होती है ।

यही सामाजिक संसाधनों तक असमान पहुँच की पद्धति साधारणतया सामाजिक असमानता कहलाती है । अर्थात जब समाज के कुछ लोगों के हाथ में यह सामाजिक संसाधन केन्द्रित रहते है समाज का आम वर्ग जो इन संसाधनों तक नहीं पहुँच पाता है उसे सामाजिक असमानता कहते है ।

यह असमानता व्यक्तियों के बीच प्राकृतिक भिन्नता के कारण नहीं होती वरन् यह समाज द्वारा उत्पन्न की जाती है । जिसमें व्यक्ति रहते है ।

जैसे- कोई व्यक्ति असाधारण बुद्धिमान या प्रतिभासम्पन्न हो सकता है अथवा कोई व्यक्ति समृद्धि सफलता पाने के लिए कठोर परिश्रम करता है व जीवन में अच्छी व बेहतर स्थिति को प्राप्त करता है इसे सामाजिक असमानता नहीं कहा जायेगा । 'यह प्राकृतिक भिन्नता है कि कोई मनुष्य असाधारण बुद्विमान है व कोई मुर्ख व कोई अत्यधिक परिश्रमी है कोई आलसी या कामचोर किन्तु यदि प्रतिभा व योग्यता होते भी, अवसर, अधिकार, सुविधा सीमित है और वह समाज के कुछ वर्गों या कुछ लोगों तक ही सीमित है उन्हीं के लिए उपलब्ध है तो यह भिन्नता ही सामाजिक असमानता है ।

सामाजिक असमानता वह परिस्थिति हैं, जिसमें समाज के वैयक्तिक समूहों को अन्य महत्वपूर्ण समूहों के समान सामाजिक स्तर प्राप्त नहीं होता । सामाजिक असमानता में मताधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य आवासीय गुणवत्ता, परिवहन, पारिवारिक गुणवत्ता, अच्छा पडौस, रोजगार, व्यावसायिक संतुष्टि आदि के प्रति असमान व्यवहार व अवसरों की अनुपलब्धता सम्मिलित होती हैं । यद्यपि समाज में हरेक समान होना चाहिए व जीवन जीने के औसतन स्तर को प्राप्त करने का अधिकारी होना चाहिए

किन्तु सामाजिक असमानता समाज के बड़े वर्ग को समाज कल्याण के लाभ से वंचित करती हैं। यह वर्ग आर्थिक दृष्टि व सुविधाओं की दृष्टि से भी वंचित वर्ग होता है ।

इस प्रकार सामाजिक असमानता सामाजिक दृष्टि से असमान सामाजिक व्यवहारों, राजनैतिक व व्यावसायिक दृष्टि से अवसरों की न्यूनता व अनुपलब्धता, आर्थिक दृष्टि से असमान वितरण, नैतिक दृष्टि से वंचना, भौतिक दृष्टि से सुविधाहीन वर्ग के लिए प्रयुक्त अर्थ में परिलक्षित होती हैं ।

14.3 सामाजिक असमानता के कारक

सामाजिक असमानता के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने व समझने के लिए इसके उत्तरदायी कारकों को समझना होगा वे इस प्रकार है-

14.3.1 सामाजिक-स्तरीकरण

यह व्यवस्था जो एक समाज में लोगों का वर्गीकरण करते हुए एक अधिक्रमित संरचना में उन्हें श्रेणीबद्ध करती है उसे समाजशास्त्री सामाजिक स्तरीकरण कहते है । यह अधिक्रम लोगों की पहचान एवं अनुभव, उनके दूसरो के साथ संबंध तथा संसाधनों एवं अवसरों तक उनकी पहुँच को आकार देता है इसकी व्याख्या इसके तीन सिद्धान्त करते है-

- सामाजिक स्तरीकरण समाज में व्यापक रूप से पाई जाने वाली व्यवस्था है जो सामाजिक संसाधनों को, लोगों की विभिन्न श्रेणीयों में असमान रूप से बाँटती है जिसका लोगों की व्यक्तिगत क्षमता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है ।
- सामाजिक स्तर पीढ़ी दर पीढ़ी बना रहता है अर्थात एक व्यक्ति को उसकी सामाजिक स्थिति अपने आप मिली हुई होती है ।
- सामाजिक स्तरीकरण को विश्वास या विचारधारा का समर्थन मिलता है इसी समर्थन से यह प्रक्रिया चलती रहती है । वे लोग जिन्हें समाज में उच्च श्रेणी व विशेषाधिकार प्राप्त है वे इस प्रक्रिया का समर्थन करते है व वे जो इस क्रम में सबसे नीचे होते है वे इसका विरोध करते है ।

14.3.2 पूर्वाग्रह

पूर्वाग्रह का अर्थ होता है पूर्वधारणा 'पूर्व निर्णय' अर्थात वह 'पूर्व विचार या पूर्व धारणा जो किसी विषय, व्यक्ति या समूह के बारे में बिना जाँचे, परखें, सोचे समझे पहले से ही बना ली जाती है यह पूर्वाग्रह सुनी सुनाई बातों पर आधारित होते हैं व सही जानकारी प्राप्त होने के बाद भी बदले नहीं जाते है ।

सामाजिक असमानता विकसित करने में यह पूर्वाग्रह बड़ी भूमिका निभाते है क्योंकि समाज के वंचित वर्ग के प्रति सम्पन्न वर्ग पूर्वाग्रह ग्रसित रहता है । वह वर्ग कभी भी वंचित वर्ग को अपने समान प्रतिभा सम्पन्न नहीं मान पाता है ना ही उन्हें सुविधा का उपभोग करने का समान अधिकार दे पाता है ।

14.3.3 सामाजिक बहिष्कार

सामाजिक बहिष्कार वह तौर-तरीके है जिनके जरिये किसी व्यक्ति या समूह को समाज में पूरी तरह घुलने मिलने से रोका जाता है, अलग रखा जाता है या पृथक रखा जाता है ।

सामाजिक बहिष्कार इच्छित नहीं होता अर्थात बहिष्कृत लोगों की इच्छाओं के विरुद्ध किया जाता है सामाजिक बहिष्कार में लोगों को अवसरों से वंचित कर दिया जाता है और ये किसी भी कारण से हो सकता है चाहे कारण आर्थिक हो, सामाजिक या सांस्कृतिक ।

इस प्रकार सामाजिक बहिष्कार भी सामाजिक असमानता का कारक होता है । उपरोक्त तीन कारक सामाजिक असमानता को जन्म देते है एवं इसके विकास में भी योगदान देते है ।

14.4 सामाजिक असमानता के प्रकार

सामाजिक असमानता एक ज्वलंत सामाजिक विषय-वस्तु है । यह समस्या समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विविध रूप से विद्यमान है-समाजों में यह पिछली सदियों से चली आ रही है। सामाजिक असमानता कई प्रकार की होती है । इनमें से कुछ निम्न प्रकार है-

14.4.1 जाति प्रथा

जाति व्यवस्था एक विशिष्ट सामाजिक संस्था हे । यह संस्था विभिन्न जातियों के बीच भेदभावपूर्ण व्यवहार को विकसित करती है और उसे न्यायसंगत भी ठहराती है । विश्व समाजों में जाति प्रथा सामाजिक असमानता का भयावह कारण भी रही है । ऐतिहासिक दृष्टि से प्रारम्भ में जाति प्रथा व्यवसाय के आधार पर वर्गीकृत थी किन्तु वास्तव में यह वर्गीकरण आर्थिक परिस्थिति के अनुरूप भी होता था । कालान्तर में समाज निश्चित रूप से बदला है । हमें ऐसा लगता है कि आधुनिक युग में तीव्र परिवर्तनो से जाति प्रथा शिथिल हुई है किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है । कुछ समय से यह देखने में आ रहा है कि यह अधिक कट्टरता की ओर बढ़ी है । जातियाँ उपजातियों में बँट गई है, प्रत्येक उपजातियों में भी निम्न व उच्च वर्ग बन चुका है । जातियों के मध्य आधुनिक समूह भी बन गए है । अनेक प्रयासो के बावजूद सामाजिक आर्थिक समूहों के बीच जातीय अंतर अभी भी बना हुआ है । भारत में तो सामाजिक असमानता की यह स्थिति और भयावह होती जा रही है ।

14.4.2 अस्पृश्यता

इसे बोलचाल की भाषा में छुआछूत कहा जाता है । यह जाति व्यवस्था का अत्यन्त घृणित व दूषित पहलू है । विशेषकर भारतीय समाज की यह अत्यन्त प्राचीन बुराई है जो सदियों से चली आ रही है । अस्पृश्यता के अन्तर्गत कुछ जातियों को 'अछूत' व कुछ लोगों को अशुद्ध समझा जाता रहा । इसी कारण ये जातियाँ व लोग सामाजिक असमानता का शिकार होते रहे हैं । स्वतंत्र भारत में इस सामाजिक असमानता को दूर करने के लिये अस्पृश्यता निवारण अधिनियम के द्वारा अस्पृश्यता उन्मूलन कर दिया गया है ।

14.4.3 सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति

समाज में रहने वाले लोगों की प्राय: सामाजिक व आर्थिक स्थिति भिन्न होती है । कुछ लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते है और कुछ विपन्न । सम्पन्न लोगों को समाज में उच्च व प्रतिष्ठित स्तर प्राप्त होता है जबकि निम्न आर्थिक वर्ग इस स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाता। इस प्रकार सामाजिक आर्थिक परिस्थिति भी लोगों के मध्य सामाजिक असमानता को जन्म देती है ।

14.4.4 लिंग-भेद

लैंगिक असमानताएं प्राकृतिक होती है किन्तु प्रारम्भ से ही प्रत्येक समाज में महिला व पुरूष के बीच में भेदभाव रख गया है । यह लिंग भेद सामाजिक है प्राकृतिक नहीं । स्त्री को समाज में, परिवार में, दोयम दर्जे का समझा जाना, कार्य स्थल पर उसे पुरुषों के बराबर योग्य ना समझना, उन्हें महत्वपूर्ण दायित्व नहीं सौंपना, कई स्थानों व कार्यों पर उसे कार्य करने की छूट नहीं देना, समान कार्य पर समान वेतन ना देना, स्त्रियों को हेय की दृष्टि से देखना आदि वर्तमान समाजों में लिंगभेद के आधार पर सामाजिक असमानता को दर्शाते हैं । जनगणना - 2011 के अनुसार भारत में महिलाओं का लिंगानुपात प्रति हजार पुरूषों की तुलना में 940 है ।

14.4.5 रंगभेद

व्यक्ति की त्वचा के रंग के आधार पर काले गोरे का भेदभाव करना रंगभेद कहलाता है। मनुष्य जाति ने प्राचीन काल से ही इस भेद का दंश सहा है । विकसित व आधुनिक कहे जाने वाले पाश्चात्य देश भी इस जघन्य बुराई में संलिप्त रहे है । ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन अमेरिका की दास प्रथा से लेकर आधुनिक काल में दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद की समस्या तक इस सामाजिक असमानता का इतिहास बहुत लम्बा रहा है और गोरे लोगों ने काले लोगों के प्रति अत्यधिक बर्बरता पूर्ण व्यवहार किया है यद्यपि अब विश्व से रंगभेद की नीति व रंगभेद पर आधारित असमानता पूरी तरह समाप्त कर दी गई है किन्तु यह सैद्धान्तिक रूप में ज्यादा है व्यवहारिक में कम प्रतीत होती है ।

14.4.6 अवसरों की न्यूनता

समाज में विकास के अवसर अत्यधिक न्यून है साथ ही कड़ी प्रतियोगिता है । विकास के अवसरों पर कुछ ही प्रतिशत लोगों का आधिपत्य है और यदि थोड़े बहुत अवसर सामने आते भी है तो उच्च सम्पर्क व भाई-भतीजावाद आदि के कारण वे अवसर जरूरतमंद व प्रतिभावान को नहीं मिल पाते । समाज के न्यून्तम प्रतिशत लोगों के पास विकास के अवसरों की कमी नहीं है जबकि इसके ठीक विपरित समाज का एक बड़ा वर्ग ऐसा है जिनके पास अवसर है ही नहीं या है तो बहुत कम । समाज की यह स्थिति सामाजिक असमानता के विकास के लिये उत्तरदायी है ।

14.4.7 अन्यथा सक्षम

हमें अपने आसपास बहुत से ऐसे लोग दिखाई दे जायेंगे जो ठीक से सुन नहीं सकते, देख नहीं सकते, चल नहीं सकते या हाथों से काम नहीं कर सकते । अब तक ऐसे लोगों को शारीरिक विकलांग, अपंग, मंदबुद्धि, अक्षम, निर्योग्य आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता था । ऐसे लोग केवल इसलिए “अक्षम” नहीं होते कि वे शारीरिक या मानसिक रूप से बाधित होते है बल्कि इसलिए अक्षम होते है क्योंकि समाज उनकी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है । ऐसे अक्षम लोग ऐतिहासिक काल से अब तक होते रहे है किन्तु कभी किसी शासन, सरकार, संगठन या लोगों ने इनके अधिकारों के बारे में कभी नहीं सोचा । सदैव इनकी अक्षमताओं को प्राकृतिक प्रकोप माना गया व इनके प्रति सहानुभूति दर्शायी गई कभी इन्हें समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ने का प्रयास नहीं किया गया । अभी हाल ही के वर्षों में ऐसे लोगों को मान्यता मिलने लगी है इन्हें अधिकार दिये जा रहे है ।

ऐसे लोगों के लिए अब 'अन्यथा सक्षम' शब्द का प्रयोग होने लगा है । 'अन्यथा सक्षम' शब्द विशेष रूप से सारगर्भित है क्योंकि यह आम लोगों द्वारा अक्षम समझे जाने के भाव पर प्रश्न चिन्ह लगाता है व उसे सही दृष्टिकोण प्रदान करता है । शारीरिक रूप से विकलांग अपनी जैविक अक्षमता के कारण विकलांग नहीं होते बल्कि समाज ही उन्हें ऐसा बनाता है अत: अन्यथा सक्षम लोगों का संघर्ष भी एक प्रकार सामाजिक असमानता का उदाहरण है ।

14.4.8 आर्थिक असमानता

समाज में व्याप्त सामाजिक असमानता का मुख्य स्त्रोत आर्थिक असमानता है । यही वो असमानता का प्रकार है जिसने सदियों से समाज में वर्ग संघर्ष को जन्म दिया है । कार्ल मार्क्स ने भी इसी असमानता को अपने दर्शन में इंगित किया है । आर्थिक असमानता समाजों में आज भी ज्यों की त्यों बनी हुयी है । समाज के एक वर्ग या कुछ मुट्ठी भर लोगों के पास धन व पूँजी का बडा हिस्सा है साथ ही पूँजीपति और अधिक पूँजीपति बनते चले जा रहे है और समाज का एक बहुत बड़ा तबका जो कि आर्थिक रूप से पिछड़ा व अक्षम है वह और अधिक गरीब होता जा रहा है । यह आर्थिक असमानता की खाई और अधिक चौड़ी होती जा रही है । इससे समाज में अमीर गरीब वर्ग के बीच में असमानता को और अधिक बल मिल रहा है ।

14.4.9 वर्ग असमानता

भारतीय समाज तीन वर्गों में विभाजित हैं उच्च, मध्यम व निम्न वर्ग । उच्च वर्ग जो समाज के शिखर पर है धनाढ्य व सर्व सुविधा सम्पन्न होता हैं । मध्यम वर्ग जो आत्मनिर्भर हैं, अपनी आवश्यकताओं के अनुसार आजीविका कमा लेता हैं जो यद्यपि धनीवर्ग नहीं है किन्तु गरीब वर्ग भी नहीं कहा जा सकता । ये वर्ग शिक्षित है व नौकरियों के माध्यम से आत्मनिर्भरता पूर्ण जीवन व्यतीत करता हैं । निम्न वर्ग जो शारीरिक श्रम, दैनिक आजीविका पर आधारित है व शिक्षित नहीं हैं । समाज में इन तीनों वर्गों के बीच असमान व्यवहार देखा जाता हैं । उच्च वर्ग मध्यम वर्ग को अपने समकक्ष नहीं मानता इसी तरह मध्यम वर्ग सदैव उच्च वर्ग के प्रति पूर्वाग्रह रखता है । उच्च व मध्यम वर्ग का निम्न वर्ग के प्रति असमान व्यवहार देखा जाता हैं । इस प्रकार समाज में व्याप्त वर्गों के बीच असमानता पाई जाती हैं । इस असमानता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही हैं । 'कार्ल मार्क्स' ने भी इस असमानता को वर्ग संघर्ष के रूप में वर्णित किया है ।

14.4.10 आयु आधारित असमानता

आयु असमानता से तात्पर्य नौकरियों में अथवा रोजगार के अवसरों में भर्ती, पदोन्नति व संरक्षण के प्रति विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों के प्रति असमान व्यवहार से हैं । विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित संस्थाओं के कार्यकारी वातावरण में प्राय: यह असमानता देखी जाती हैं । नौकरियों में आयु की विभेदकारी असमानता जहाँ 40 वर्ष तक के व्यक्तियों के लिए अवसरों का लाभ पहुँचाती हैं । वहीं दूसरी और 40 वर्ष से ऊपर आयु के लोग सामान्यत: रोजगार के लिए संघर्ष करते पाये जाते हैं । इस प्रकार बढ़ती उम्र के लोगों के साथ असमानता के व्यवहार को बढ़ाने में विश्व में चल रही बाजारीकरण प्रक्रिया ने ओर अधिक योगदान दिया हैं ।

14.4.11 भाषा आधारित असमानता

भारतीय समाज में अनेक भाषाभाषी लोग रहते है । सदियों से भाषा व लिपी संस्कृति का महत्वपूर्ण पोषक अंग रही हैं किन्तु पिछले कुछ दशकों में अपनी मातृभाषा के प्रति कट्टरता व दूसरे भाषा-भाषियों के प्रति असहिष्णुता ने भाषायी असमानता को जन्म दिया हैं । वर्तमान जैसे आधुनिक तकनीकी युग में भी भारत में भाषायी विवाद, भाषा को लेकर नवीन राज्यों की मांग, भाषायी कट्टरता के कारण होने वाली हिंसक घटनाएँ समाज में भाषायी असमानता को प्रकट करती है ।

14.5 सामाजिक असमानता को दूर करने के उपाय

समाज में विभिन्न प्रकार की असमानताऐं लम्बे समय से विद्यमान है कुछ प्राचीन काल से चली आ रही है, कुछ आधुनिक युग की देन है । विश्व का कोई समाज इन असमानताओं से अछूता नहीं है । समय में परिवर्तन के साथ-साथ इन असमानताओं के बारे में चितंन किया गया है । जागरूकता विकसित की गई है । इन असमानताओं को दूर करने के लिए सरकारी स्तर पर भी प्रयास हुए है । यद्यपि ये प्रयास न्यूनतम ही साबित हुए है किन्तु इससे इन प्रयासों का महत्व कम नहीं हो जाता । ये प्रयास इस प्रकार हैं ।

- जाति प्रथा के रूप में विकसित हुई सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा कानून बनाये गये है । जनजातियों व पिछड़ी जातियों के उत्थान हेतु विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण की व्यवस्था की गई है ।
- अस्पृश्यता को पूरी तरह निषेध कर दिया गया है । अस्पृश्यता निवारण अधिनियम भारत में पूरी तरह लागू कर दिया गया है ।
- सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति को मजबूत करने के लिए उच्च शिक्षा में भी आरक्षण की व्यवस्था है । शिक्षा के सभी क्षेत्रों को सभी वर्गों के लिए खोल दिया गया है । जिससे सभी लोग शिक्षित हो सकें व समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकें ।
- स्त्री व पुरूषों के बीच लिंग भेद के आधार पर होने वाली सामाजिक असमानता को भी पहले की अपेक्षा काफी हद तक दूर किया गया है । महिलाऐं उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही है, उच्च पदों पर कार्य कर रही है । महिलाओं के लिये घरेलू हिंसा कानून, दहेज निरोधक कानून आदि कानून बनाये व लागू किये गये है । निर्वाचित निकायों में 33 प्रतिशत के आरक्षण की व्यवस्था की गई है ।
- रंग भेद की नीति को सम्पूर्ण विश्व से समाप्त कर दिया गया है । सयुंक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से अब विश्व का कोई भी देश रंगभेद के आधार पर मनुष्यों के बीच भेदभाव नहीं कर सकता है ।
- अवसरों की न्यूनता की समस्या को दूर करने के लिये नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था की गई है । बड़ी संख्या में सरकारी व नीजि क्षेत्रों में लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान किये जा रहे हैं । रोजगारोन्मुखी शिक्षा पाठयक्रम संचालित किये जा रहे हैं ।

- अन्यथा सक्षम लोगों को उनकी सुविधानुसार शिक्षा प्राप्त करने के अवसर दिये जा रहे हैं । विशेष विद्यालयों की व्यवस्था की जा रही है । शिक्षा व नौकरियों में अन्यथा सक्षम लोगों को सीटों का आरक्षण दिया जा रहा है ।
- आर्थिक असमानताओं को दूर करने के लिये सरकार द्वारा समाज के आर्थिक रूप से पिछडे वर्गों को शिक्षा, निशुल्क आवास, भोजन, चिकित्सा आदि सुविधाऐं प्रदान की जा रही है बी.पी.एल. परिवारों हेतु विशेष प्रयास किये जा रहे हैं ।
- सरकारी तन्त्र में भ्रष्टाचार को रोकने के लिये सरकार ने **सामाजिक अंकेक्षण** के प्रावधान को अपनाया है । सरकार प्रत्येक क्षेत्र में पारदर्शिता को अपना रही है व जवाबदेह प्रशासन हेतु कटिबद्ध है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विश्व का कोई भी देश हो विशेषकर भारत, समाज में व्याप्त सामाजिक असमानताओं को दूर करने के पुरजोर प्रयास किये जा रहे हैं ।

14.6 सामाजिक असमानता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका

जैसा कि हम इस अध्याय के प्रारम्भ में शिक्षा के अर्थ को समझ चुके हैं कि शिक्षा मनुष्य का विकास करने में उसे सभ्य व सुसंस्कृत बनाने का एक मात्र माध्यम है । शिक्षा मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण व विकास करती है । यहाँ पर शिक्षा का अर्थ कोरे किताबी ज्ञान से नहीं है, यहाँ शिक्षा का अर्थ व्यवहारगत परिवर्तन, अभिवृत्यात्मक परिवर्तन से है । शिक्षा से ही विचार एवं व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आता है । वास्तव में यही सकारात्मक परिवर्तन सामाजिक असमानताओं को दूर करने में सहायक होता है । समाज के ऐसे लोग या वर्ग जो वंचित हैं, सुविधाहीन है, पद, प्रतिष्ठा, धन जैसे सामाजिक संसाधनों से दूर हैं। जिन्हें जीवन में असमानताओं का सामना करना पड़ता है । उनके लिए शिक्षा ही ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से ये वर्ग इन असमानताओं का सामना सशक्तता से कर सकता है । सरकार भी शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए प्रयास कर रही है । शिक्षा के अधिकार अधिनियम द्वारा समाज के वंचित वर्ग को अनिवार्य व निशुल्क शिक्षा उपलब्ध करवाई जा रही है । उच्च शिक्षा के द्वार भी सभी जातियों, सभी वर्गों के लिए खोल दिये गये है । इतना ही नहीं उच्च शिक्षा में पिछड़ी जाति व जनजातियों को आरक्षण भी प्रदान किया है । अब भारत का कोई नागरिक शिक्षा का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत निशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कर सकता है । इसके अतिरिक्त रोजगारोन्मुख शिक्षा प्राप्त कर वह जीवन में किसी भी रोजगार को अपना सकता है व सम्मानजनक व गुणवत्ता युक्त जीवन जी सकता है ।

शिक्षा जहाँ एक ओर व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाती है वही उसमें प्रेरणा व आत्मविश्वास का भी संचार करती है । यह आत्मविश्वास विभिन्न सामाजिक असमानताओं जैसे जातिवाद, अस्पृश्यता, लिंगभेद, रंगभेद, ऊँच-नीच का भेद भाव, अमीर-गरीब का भेद-भाव आदि से संघर्ष करने की शक्ति देता है । एक शिक्षित व्यक्ति ही अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होता है । वह कर्तव्यों का वहन भी भली-भाँति करता है । इस तरह वह अपने पर हो रहे अत्याचारों व शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सकता है । समाज में आरन-पास कहीं भी फैल रही असमानताओं को दूर करने में अपना सक्रिय योगदान दे सकता है ।

अत: विश्लेषणात्मक तथ्य है कि शिक्षा सामाजिक असमानताओं को दूर करने या रोकने का सबसे प्रभावशाली व शक्तिशाली माध्यम है ।

14.7 सामाजिक असमानता को दूर करने के प्रमुख सरकारी प्रयास

सामाजिक असमानता को दूर करने के प्रमुख सरकारी प्रयास निम्न प्रकार देखे जा सकते हैं:-

14.7.1 निरौपचारिक शिक्षा

6 से 14 वर्ष तक के बालकों का एक बड़ा वर्ग सामाजिक आर्थिक कारणों से औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाता हैं । इस वर्ग में कामकाजी बालकों की बड़ी संख्या भी सम्मिलित है । विद्यालयों में इस तरह के बालकों की ड्रॉप आउट रेट अन्य बालकों की अपेक्षा ज्यादा है । प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति व 1992 के कार्यकारी कार्यक्रम (Programme of Action) में शिक्षा की व्यूह रचना के एकीकृत घटक के रूप में "निरौपचारिक शिक्षा" के व्यवस्थित व व्यापक कार्यक्रम को अपनाया गया । 1970 के दशक में एन.सी.ई.आर.टी. के एक प्रयोग से निरौपचारिक शिक्षा का सम्प्रत्यय उभर कर सामने आया । 1978 में इसे केन्द्रिय योजना के रूप में प्रायोजित किया गया । प्रारम्भ में इसे शैक्षिक रूप से पिछड़े नौ राज्यों में - आन्ध्रप्रदेश, आसाम, बिहार, जम्मु-कश्मीर, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल व बाद में अरूणाचल प्रदेश में चलाया गया । निरौपचारिक शिक्षा विद्यालय जाने में असक्षम बालकों को उनकी सुविधानुसार समय, स्थान व क्षमता अनुरूप पूर्णतया विकेन्द्रीकृत व लचीलेपन से शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराती है । ग्रामीण क्षेत्रों व शहरी कच्ची बस्तियों में यह कार्यक्रम निरौपचारिक शिक्षा केन्द्रों द्वारा चलाया गया ।

14.7.2 मिड-डे-मिल

विद्यालयी बालकों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने के लिए विश्व का सबसे बड़ा पोषाहार कार्यक्रम **मिड-डे-मिल** भारत में चलाया जा रहा है । स्वतंत्र भारत में 1980 में सर्वप्रथम केरल, तमिलनाडु, संघशासित प्रदेश पाण्डिचैरी में यह कार्यक्रम आरम्भ किया गया । विद्यालयों में नामांकन, उपस्थिति व अवरोधन को बढ़ाने के लिए (NP - NSPE National Programme of Nutritious Support to Primary Education) को एक केन्द्रिय योजना के रूप में 15 अगस्त 1995 को लागु किया गया । 1997 - 1998 में इसे पूरे भारत में व 2002 में इसी समस्त सरकारी, अनुदानित सभी प्रकार के विद्यालयों के प्राथमिक स्तर के बालकों के लिए लागु कर दिया गया । 2010-11 तक लगभग 11.36 करोड़ प्राथमिक स्तर के बालक, लगभग 3.39 करोड़ उच्च प्राथमिक स्तर के बालक इस योजना का लाभ उठा रहे हैं। अब तक लगभग 12 लाख 63 हजार विद्यालयों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा चुका है ।

14.7.3 ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के तहत 1987 में इस अभियान को प्रारम्भ किया गया । इस अभियान का उद्देश्य प्राथमिक स्तर पर पढ़ने वाले बालकों को

संस्थागत उपकरणों व अनुदेशनात्मक सामग्रियों की सुविधा उपलब्ध कराना था । इस अभियान के अन्तर्गत अध्यापकों को इन सामग्रियों को उपयोग में लाने हेतु प्रशिक्षित करने का कार्य किया गया । विद्यालय भवन व उपकरण सामग्रियों के लिए केन्द्र सरकार द्वारा अनुदान दिया गया । 1987-1994 तक लगभग 12 करोड़ 80 लाख रु. इस योजना पर खर्च किये गये ।

14.7.4 लोकजुम्बिश

"शिक्षा सबके लिए" उद्देश्य को लेकर सर्वप्रथम राजस्थान में 1989 में यह योजना प्रारम्भ कि गई। इस परियोजना के उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिक सुलभता, 14 वर्ष की आयु के विद्यार्थी के लिए अवरोधन, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एवं सभी बालकों के लिए अधिगम के आवश्यक स्तरों को उपलब्ध कराना आदि थे । इस कार्यक्रम में पर्यावरण निर्माण, ग्रामीण स्तरीय निकायों की स्थापना, विद्यालयी सुविधाओं में सुधार, सेवारत शिक्षकों का प्रशिक्षण, प्राथमिक शिक्षा गुणवत्ता सुधार, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सुधार, लैंगिक समानता आदि लक्ष्य रखे गये ।

इसके नवाचार युक्त प्रयासों को देखते हुए आगे चलकर इसे सर्वशिक्षा अभियान का अंग बना दिया गया ।

14.7.5 महिला समाख्या

1989 में भारत सरकार द्वारा सर्वप्रथम उत्तरप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक राज्य में महिला समानता के लिए यह शिक्षा योजना आरम्भ की गई । महिला सशक्तिकरण, आधारभूत समानता हेतु जागरूकता, कामकाजी बालिकाओं को क्षमतापूर्ण बनाने और उन्हें अधिगम के अवसर उपलब्ध कराने के लिए यह योजना आरम्भ की गई । इस योजना हेतु केन्द्र, आवासीय केन्द्र भी बनाये गये । यह योजना राज्य सरकार, युनिसेफ, वर्ल्ड बैंक के सहयोग से चलाई जा रही है ।

14.7.6 सम्पूर्ण साक्षरता अभियान

सम्पूर्ण साक्षरता अभियान के प्रतिमान को शिक्षा की व्यूह रचना के रूप में स्वीकार कर लिया गया है । यह अभियान क्षेत्र विशेष, समय बाध्य, ऐच्छिक कार्यकर्ता आधारित, कीमत प्रभावी व परिणाम आधारित रहा है । तमिलनाडू के "कामराजार'' (Kamarajar District) जिले में भारत छोड़ो आन्दोलन की 50वीं वर्षगाँठ पर इसी की तर्ज पर "निरक्षरता हटाओ" आदोलन चलाया गया । इस अभियान को नौ चरणों में क्रियान्वित किया गया । जिसके अन्तर्गत कार्यक्रम की भूमिका तैयार करना, छोटे-छोटे समूह गठित करना, संगठनात्मक संरचना हेतु जिला स्तर पर साक्षरता समितियों का गठन, जिलों के सर्वे, कार्यक्रम की व्यूह रचना हेतु अनुकूल वातावरण तैयार करना, शिक्षण अधिगम सामग्रियों का विस्तार, प्रशिक्षण हेतु कार्यकारी दलों का निर्माण, वास्तविक अधिगम प्रक्रियाओं का क्रियान्वयन एवं स्थितियों का अवलोकन व मूल्यांकन का कार्य किया गया।

14.7.7 डी.पी.ई.पी

1994-95 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया । इस कार्यक्रम के उद्देश्य 6 से 11 वर्ष के सभी बच्चों के लिए समान रूप से प्राथमिक शिक्षा के अवसर उपलब्ध

कराना, प्राथमिक शिक्षा गुणवत्ता में सुधार, अपव्यय व अवरोधन को सुनिश्चित करना, सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित करना था । इस कार्यक्रम के प्रथम चरण में 1999-2000, 2003-2004 तक इस कार्यक्रम को भारत के 10 जिलों में चलाया गया और द्वितीय चरण में 2001-2002, 2004-2005 तक भारत के 9 जिलों में चलाया गया ।

14.7.8 जनशाला (Janshala)

1998 में भारत व संयुक्त राष्ट्र संघ के संयुक्त प्रयासों के तहत एक सामुदायिक प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम जनशाला के नाम से प्रारम्भ किया गया । इस कार्यक्रम का उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण था । इस कार्यक्रम में बालिका शिक्षा, अनुसूचित जाति जन जाति शिक्षा, कामकाजी बालकों के लिए शिक्षा, विशेष आवश्यकता वाले बालकों तक शिक्षा पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया । जनशाला कार्यक्रम संयुक्त राष्ट्र संघ के पाँच निकायों यूएनडीपी, युनीसेफ, युएनएफपीए, युनेस्को, आईएलओ के संयुक्त उपक्रम द्वारा चलाया गया । जनशाला का अर्थ सामुदायिक विद्यालयों से है अत: इस कार्यक्रम का लक्ष्य समुदाय को सशक्त बनाना, समुदाय को विद्यालयों के निकट लाना एवं औपचारिक विद्यालयों को समुदाय की आवश्यकताओं व अपेक्षाओं के प्रति उत्तरदायी बनाना था । इस कार्यक्रम की अवधि 1998-2002 तक थी ।

14.7.9 कस्तुरबा गांधी बालिका विद्यालय

भारत सरकार ने अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग व अल्प संख्यक बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा हेतु आवसीय विद्यालयों की नई योजना को क्रियान्वित किया हैं। इस योजना के अंतर्गत पूरे भारत के दूरदराज व पिछड़े इलाकों में 710 आवसीय विद्यालय खोले गये है । जहाँ बालिकाओं को नि:शुलक प्राथमिक शिक्षा आवासीय सुविधा के साथ उपलब्ध कराई जा रही है । इस योजना का क्रियान्वयन दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत व जनगणना 2001 के आकड़ों के आधार पर किया गया है । यह योजना मानव संसाधन विकास मंत्रालय के प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, सर्वशिक्षा अभियान, एनपी.ई.जी.ई.एल के संयुक्त सहयोग से चलाई जा रही है ।

14.7.10 आर.ई.आई

यह योजना राजस्थान में एक नवाचारयुक्त लक्ष्य आधारित योजना के रूप में आरम्भ की गई । इस योजना के अन्तर्गत स्थानीय लोगों का सहयोग एवं निजी क्षेत्रों की सहभागीता प्राप्त करने के लिए पहल की गई । वर्ड ईकोनोमिक फोरम व भारतीय उद्यम के सहयोग से जनवरी 2005 में इसे आरम्भ किया गया । इन प्रयासों के तहत नन्दी फाउण्डेशन, पीरामल फाउण्डेशन व कॉनफैडरेशन ऑफ इण्डियन इण्डिस्ट्री ने राजस्थान सरकार के साथ शिक्षा के विकास के लिए पहल की । नन्दी फाउण्डेशन ने उदयपुर जिले के मद्रास गाँव के 220 विद्यालयों के 40 हजार विद्यार्थीयों को स्वास्थ सुविधाएँ उपलब्ध कराने का कार्य हाथ में लिया और पीरामल फॉउण्डेशन ने शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता हेतु कार्य आरम्भ किया । यह प्रयास शिक्षा के क्षेत्र में पी.पी.पी को बढ़ाने के लिए था ।

14.7.11 11वीं पंचवर्षीय योजना

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 11वीं पंचवर्षीय योजना को 'भारत की शिक्षा योजना' के रूप में प्रस्तुत किया । दिसम्बर 2007 को राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इसे पारित किया और इस योजना में शिक्षा को त्वरित विकास के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में प्रयोग में लाने का लक्ष्य रखा गया । इस योजना के अन्तर्गत सर्वशिक्षा अभियान के तहत लड़के व लड़कियों की ड्रॉपआउट दर को कम करने, माध्यमिक शिक्षा का विकास, निजी व सरकारी विद्यालयों के प्रसार, उच्च, तकनिकी, व्यवसायिक शिक्षा व्यवस्था व गुणवत्ता सुधार हेतु प्रावधान रखे गये । इस योजना द्वारा राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की प्रमुख सिफारिशों को भी क्रियान्वित करने का कार्य किया गया । इसके अतिरिक्त खुले विद्यालय, खुले विश्वविद्यालय प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम, आई.सी.टी ऐजुकेशन, आई.सी.टी लाईब्रेरी, ऐड्यूसेट पी.पी.पी. आदि के विकास हेतु कार्य किये गये । इस योजना में लगभग 1750 करोड़ रुपये व्यय करने का लक्ष्य रखा गया ।

14.7.12 सर्व शिक्षा अभियान

प्राथमिक शिक्षा के निश्चित समय में सार्वभौमिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार द्वारा यह कार्यक्रम चलाया गया है । संविधान के 86वे संशोधन के अन्तर्गत 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए राज्य सरकारों की साझेदारी से यह कार्यक्रम क्रियान्वित किया जा रहा है । इस कार्यक्रम का लक्ष्य जीवन कौशल सहित गुणवत्ता पूर्ण प्राथमिक शिक्षा, बालिका शिक्षा, विशेष आवश्यकता वाले बालकों के लिए शिक्षा उपलब्ध कराना है ।

14.7.13 शिक्षाकर्मी योजना

ग्रामीण क्षेत्रों व दूरदराज के पिछड़े इलाकों के अल्पशिक्षित लड़के व लडकियों की पहचान कर उन्हें प्रशिक्षित करके एक सामुदायिक शिक्षक के रूप में रोजगार प्रदान करने की यह एक नवाचारी योजना है । यह योजना शिक्षा के विकास में समाज की सहभागिता, संरचनात्मक ढांचे में सुधार व नवीनीकरण, पाठ्यक्रम विकास, साक्षरता दर को बढ़ाने में समुदाय का सहयोग आदि पर कार्य कर रही है ।

14.7.14 शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2010

स्वतंत्रता के 63 वर्षों पश्चात् 01 अप्रैल, 2010 के दिन ऐतिहासिक "शिक्षा का अधिकार अधिनियम" जम्मु-कश्मीर राज्य को छोड़कर पूरे भारत में लागू हो गया । इस अधिनियम द्वारा भारत देश के 6-14 वर्ष के बालकों को व असामान्य परिस्थितियों में 18 वर्ष तक के बालकों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया है । इस अधिनियम के तहत 25 प्रतिशत सीटों का आरक्षण वंचित वर्ग के लिये सभी निजी व अल्प संख्यक विद्यालयों में सुनिश्चित किया गया है । इसकी क्रियान्विति पर होने वाले व्यय को केन्द्र व राज्य सरकारें मिलकर वहन करेगी । यह सहभागिता 75 प्रतिशत केन्द्र की व 25 प्रतिशत राज्य की होगी । इस अधिनियम के क्रियान्वयन के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त असमानताओं को दूर करने में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सकेगा ।

14.8 सारांश

वर्तमान आधुनिक युग में हम शिक्षा का अत्यन्त विकसित रूप देख रहे हैं । विश्व समाजों ने शिक्षा को खुले रूप में अपना लिया है लेकिन सामाजिक स्तर पर आमूलचूल परिवर्तन लाने में अभी भी शिक्षा उतनी कारगर सिद्ध नहीं हुयी है । इसका ज्वलंत उदाहरण है विभिन्न समाजों में पायी जाने वाली सामाजिक असमानता । सामाजिक संसाधनों जैसे-धन, संपदा, शिक्षा, पद, प्रतिष्ठा, स्वास्थ्य शक्ति का समाज के न्यूनतम वर्ग में केन्द्रित होने व समाज के एक अन्य बड़े वर्ग का इन संसाधनों से वंचित रहने पर उत्पन्न स्थिति को सामाजिक असमानता कहते हैं ।

सामाजिक असमानता के कई कारकों में समाजिक स्तरीकरण, पूर्वाग्रह, सामाजिक बहिष्कार आदि प्रमुख हैं । वर्तमान समय में समाज में कई प्रकार की सामाजिक असमानता पाई जा रही है । जाति प्रथा, अस्पृश्यता, सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति, लिंगभेद, रंगभेद, अवसरों की न्यूनता, अन्यथा सक्षम लोगों के प्रति असमानता, आर्थिक असमानता आदि प्रकार की सामाजिक असमानताएं समाज में चहुँ ओर व्याप्त है । इन सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिये सरकारी व गैर-सरकारी प्रयास किये जा रहे हैं । सरकारें कानून बना कर व नागरिकों को अधिक से अधिक सुविधायें प्रदान कर इन सामाजिक असमानताओं को दूर करने में अपना योगदान दे रही हैं किन्तु जब तक शिक्षा का विकास नहीं हो जाता तब तक ये प्रयास सतही ही सिद्ध होंगे । शिक्षा सभी प्रकार की असमानताओं को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि शिक्षा द्वारा ही अभिवृत्यात्मक परिवर्तन व व्यवहारगत परिवर्तन लाया जा सकता है । यदि हम समाज में फैली इन असमानताओं को व्यावहारिक रूप में दूर करना चाहते हैं तो हमें शिक्षा के माध्यम से समाज में जागरुकता व नागरिकों में स्वजागरुकता लानी होगी । समाज के लोगों की सोच में बदलाव लाना होगा तभी हम सभी प्रकार की सामाजिक असमानताओं को दूर कर एक स्वस्थ, विकसित, शिक्षित व सही मायने में आधुनिक समाज का निर्माण करने में सफलता प्राप्त कर पायेंगे । इस हेतु शिक्षा ही हमारा मार्ग प्रशस्त कर सकती है ।

14.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. सामाजिक असमानता का अर्थ समझाइये?
2. सामाजिक असमानता के उदाहरणों की सूची बनाइये?
3. सामाजिक असमानता के कारणों की जाँच कीजिये?
4. सामाजिक असमानता के प्रमुख प्रकारों की उदाहरण की समीक्षा कीजिये?
5. सामजिक असमानता को दूर करने के लिए आप क्या योगदान देंगे?
6. सामाजिक असमानता को दूर करने के सरकारी प्रयासों की सूची बनाइये?
7. सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए शिक्षा की भूमिका की समीक्षा कीजिये?
8. शिक्षा व सामाजिक असमानता में किस प्रकार का सहसम्बन्ध है स्पष्ट कीजिये?

14.10 शब्दावली

संलिप्तता	:	सलंग्न होना
अभिवृत्यात्मक	:	दृष्टिकोण, विचार में
सामाजिक संसाधन	:	धन पद, प्रतिष्ठा
अधिगमकर्ता	:	सीखने वाला
वंचित वर्ग	:	मूलभूत सुविधाहीन वर्ग
ड्राप आउट रेट	:	अध्ययन बीच में छोड़कर जाने वाले विद्यार्थीयों की दर
आई.सी.टी.	:	सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी

14.11 सन्दर्भ ग्रंथ

1 एन.सी.ई.आर.टी., भारतीय समाज, कक्षा-12, 2007

2 Sharma, K.L. Social Inequality in India, Second edition, Rawat Publication Jaipur and New Delhi

3 http://en.wikipedia.org

4 http://google.com

5 http:// en.wikipedia.org/wiki/social_inequality

6 http://ceelbas.ac.uk/research/socialinequality

7 http://www.sociosite.net/topics/inequality.php.

इकाई - 15

विज्ञान और प्रौद्योगिकी युग में शिक्षा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 शिक्षा के विकास की कसौटी
15.3 वर्तमान समाज का स्वरूप
15.4 शिक्षा की वर्तमान स्थिति
15.5 विज्ञान और प्रौद्योगिकी युग में शिक्षा का भविष्य
15.6 मूल्यांकन प्रश्न
15.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- प्रौद्योगिकी और विज्ञान के अनुरूप वर्तमान समाज की अवधारणा का बोध कर सकेंगे।
- समाज की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे ।
- वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के दोषों का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- शिक्षा के विकास की कसौटियों का ज्ञान हासिल कर सकेंगे ।
- वर्तमान समाज के अनुरूप शिक्षा के लिये आलोचनात्मक चिन्तन विकसित कर सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वस्तुत: यह विषय विचारणीय है । मनुष्य जीवन के दो अपरिहार्य तथ्यों में पहला है समाज । समाज में मनुष्य सामाजिक प्राणी की संज्ञा के अन्तर्गत अस्तित्व युक्त है । दूसरा तथ्य है कि समाज के अन्दर रहने की क्षमताओं, आदर्शों व मूल्यों के अनुरूप अपने व्यक्तित्व के विकास के साथ समाज के विकास में योगदान करते हुये श्रेष्ठ रूप से जीवन का निर्वाह करना । इस लक्ष्य को पूरा करने में शिक्षा ही एक मात्र सशक्त साधन है । यहां अभी शिक्षा के स्वरूप की चर्चा नहीं हो रही है । क्योंकि शिक्षा तो देशकाल सापेक्ष है । अत: प्रौद्योगिकी और विज्ञान के युग में शिक्षा कैसी है और कैसी हो, यह चर्चा बाद में की जायेगी ।

प्रौद्योगिकी और विज्ञान ने कल्पना से परे समाज को परिवर्तित कर दिया है । इस संदर्भ में आगर्बन ने जो के स्थान के प्रत्यक्षदर्शी है । प्रौद्योगिकी हमारे पर्यावरण को परिवर्तित करके, जिसे हम अनुकूलन कहते है, हमारे समाज को परिवर्तित करती है । यह परिवर्तन सामान्यतया भौतिक पर्यावरण में है और हम परिवर्तन से जो अनुकूलन करते हैं, उससे बहुधा प्रथाऐं और सामाजिक संस्थाऐं संशोधित हो जाती है । इस प्रकार विज्ञान व तकनीकी के नित नये आविष्कारों से मनुष्य को सामाजिक संबंधों पर भी भारी प्रभाव पड़ता है । इसी विचार को समर्थन मैकाइवर और वेज ने किया है भाप से चलने वाले इंजनों के आविष्कार से इसके

क्रान्तिकारी सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन हुए, जिसकी कल्पना आविष्कारक ने भी नहीं की होगी, आज भाप से लेकर अणुशक्ति तक जितने भी आविष्कार हुए उनके कारण समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जैसे श्रमविभाजन और विशिष्टीकरण की प्रवृत्तियाँ बढ़ी, व्यापार और वाणिज्य में उन्नति हुई, जीवन स्तर बढ़ा, छोटे-छोटे नगर महानगर बने, अनेक नये नगर बसे, परिवार का विघटन हुआ, गंदी बस्तियां बढ़ी, अपराध बढ़े और मनोरंजन व्यापारीकरण आदि हुआ । यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रौद्योगिकी और विज्ञान से समाज में परिवर्तन बहुत तीव्र गति से होता है ।

शिक्षा इतनी त्वरित गति से परिवर्तन के साथ अनुकूलन नहीं कर पाती । फलत: समाज विघटन की ओर उन्मुख होने लगता है । अत: युग और काल सापेक्ष शिक्षा के संबंध में विचार करना आज की अपरिहार्य आवश्कता बन गई है ।

सबसे पहले शिक्षा का विकास का अर्थ समझना है ।

15.2 शिक्षा के विकास की कसौटी

शिक्षा का विकास तब ही माना जायेगा जब शिक्षा से समाज प्रगति करे । समाज के प्रगति करने की विभिन्न विद्वानों ने कसौटियाँ निर्धारित की है । इनमें प्रमुख हाब हाउस, टाड, हार्ट तथा डिवाइन एवं वोगार्डस है ।

हाब हाउस के अनुसार प्रगति की कसौटी

- आदर्श जनसंख्या
- लोगों की कार्यक्षमता में वृद्धि
- स्वतंत्रता की भावना और
- परस्पर सेवा की वृद्धि है ।

टाड के अनुसार

- सम्पत्ति की प्रचुरता
- अच्छा स्वास्थ्य
- अवसरों की समानता वाली सामाजिक व्यवस्था
- सामाजिक स्थिरता
- आदर्श जनसंख्या की प्रगति ही शिक्षा के विकास की कसौटी है ।

हार्ट महोदय ने कहा है कि प्रगति की कसौटी

- लंबी आयु
- उच्च मानसिक स्वस्थ्य
- अवकाश का अधिक समय है ।

डिवाइन

- प्रगति की कसौटी के रूप में चौदह बिन्दुओं का महत्व देते है ।
- प्राकृतिक साधनों का संरक्षण और अधिक से अधिक व्यक्तियों के लिये उनका दोहन
- मानसिक रूप से दुर्बल और शराबी माता-पिता के बच्चों की संख्या में कमी
- अधिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण में वृद्धि और गंदे मकानों, गंदगी और छूत के रोगों की संख्या में कमी।

- हानिप्रद मनोरंजन के साधनों में कमी, स्वस्थ्य मनोरंजन में वृद्धि तथा शहरी जीवन में विश्राम की सुविधाओं की सुविधा।
- शहरी, स्वस्थ्य व संपन्न परिवारों के बच्चों की संख्या में अनुशासनहीन बच्चों की संख्या में कमी और उद्योगों में बच्चों के शोषण पर रोक ।
- अधिक से अधिक व्यक्तियों के लिये सृजनात्मक कार्य हेतु अवसर प्रदान करते हुए ईमानदार एवं कार्य कुशल व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि तथा कामचोर और बेकार व्यक्तियों की संख्या में कमी करना।
- व्यापार और उद्योगों में प्रजातांत्रिक सुविधाओं की वृद्धि करना और श्रमिक, पूंजीपति एवं उपभोक्ता के बीच अच्छे संबंधों की स्थापना और एक-दूसरे के हितों का संरक्षण करना ।
- सामाजिक बीमा की व्यवस्था-दुर्घटना, बीमारी, मृत्यु, रोग, बेकारी के समय
- जीवन स्तर का उन्नयन
- काव्य. संगीत व ललित कलाओं के प्रति अभिरूचि
- सरकार से अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर बल
- व्यावसायिक, बौद्धिक एवं जनकल्याणकारी शिक्षा का विकास
- व्यक्तियों के आध्यात्मिक और धार्मिक जीवन के प्रति अभिरूचि
- पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास

बोगार्डस के अनुसार सामाजिक प्रगति की कसौटी

- सार्वजनिक हित के लिये, न कि चतुर व्यक्तियों के लिये प्राकृतिक साधनों का उपयोग
- शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि तथा गंदी बस्तियों और संक्रामक रोगों में कमी
- उपयोगी मनोरंजन के साधनों में वृद्धि
- संगठित परिवारों की संख्या में वृद्धि
- कार्य करने की स्वतंत्रता
- उद्योग व व्यापारों में जनता को अधिक से अधिक अधिकार
- दुर्घटना, बीमारी, मृत्यु, वृद्धावस्था और बेकारी के समय सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था
- जीवन स्तर में विकास
- सरकार व जनता के बीच सहयोग में वृद्धि
- विविध कलाओं-संगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला, कविता आदि का अधिकाधिक प्रसार व्यावसायिक व कल्याणकारी, शिक्षा का प्रचार व प्रसार
- आध्यात्मिक प्रवृत्ति का विकास
- सामुदायिक और सहयोगी जीवन में वृद्धि

15.3 वर्तमान समाज का स्वरूप

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अर्न्तसंबंध पर समाज आधारित है मानव जाति के वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक आविष्कारों के अध्ययन करके हेरोल्ड इन्निस ने कहा है नशा तकनीकी साधन कुछ ही अवधि में साधन न रहकर साध्य हो जाता है । क्योंकि आविष्कृत ये

उपकरण स्वायत्त हो जाते है और फिर अन्य उपकरणों के साथ मानव का भी पुन: आविष्कार करते हैं । इन्निस महोदय के इस कथन को आधार बना कर ही मार्शल मैकलुहन ने अपना प्रसिद्ध सूत्र मीडियम इज द मैसेज गढ़ा । जिसमें मानव के पुन: आविष्कार के माध्यम के रूप में स्वायत्त उपकरणों की बात की है। इन दोनों के मध्य अन्तसंबंध की तीन अवस्थायें मानी गई है ।

प्रथम अवस्था:- आर्थिक गतिविधियों के लिये अत्यवस्थित ढंग से कुछ यांत्रिक आविष्कारों का उपयोग किया जाना । इस अवस्था में कमजोर किस्म का कार्य कारण संबंध होता है ।

द्वितीय अवस्था:- जब विज्ञान व विज्ञान पर आधारित प्रौद्योगिकी के बीच सुस्पष्ट कार्य कारण संबंध होते हैं परिणामास्वरूप व्यापारिक प्रौद्योगिक प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक गवेषणाओं के सुगठित प्रयास होना जिनसे उत्पादन बढ़े ।

तीसरी अवस्था:- जब वैज्ञानिक गणवेशनाओं का कार्य शासन की प्रमुख सूची में सम्मिलित कर लिया जाये और शासन स्वयं पूरी शक्ति के साथ उस कार्य को करने लगे ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मानव समाज को आज ऐसी स्थिति में ला दिया है । जब मानव समाज के अभिप्राय और स्वरूप में मौलिक परिवर्तन होना अनिवार्य हो गया है । आज जो समाज है वह औद्योगिक समाज से भी आगे की स्थिति में है जिसे टेक्नोट्रोनिक समाज की संज्ञा दी गई है । पर टेक्नोट्रोनिक समाज से पहले पूर्व स्थिति के रूप में औद्योगिक समाज को जानना जरूरी है ।

15.3.1 औद्योगिक समाज की विशेषताऐं

- औद्योगिक समाज में उत्पादन कृषि के अलावा उद्योगों पर केन्द्रित होता है । यान्त्रिक शक्ति महत्वपूर्ण हो जाती है । यह पशु व श्रमशक्ति का स्थान ले लेती है ।
- औद्योगिक समाज में रोजी और बेरोजगारी की समस्या अधिक होती है । औद्योगिक श्रमिकों के लिए कल्याणकारी सेवाऐं उपलब्ध कराने की प्रमुख समस्या होती है ।
- शिक्षाविदों का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक प्रगति हेतु नवीन सम्भावनाओं के सृजन के लिये परंपरागत रूढ़ियों को तोड़ना है । केवल साक्षरता ही नहीं अपितु यांत्रिक शिक्षा भी एक लक्ष्य होता है।
- सामाजिक नेतृत्व के क्षेत्र में एकतन्त्रवादी, सामन्तवादी के स्थान पर बहुतंत्रवादी समुदाय के हाथ में आ जाता है । इस नेतृत्व की आधारशिला नव अर्जित सम्पत्ति होती है । सघन प्रतियोगिता नेतृत्व की उर्जा के उत्पेरक व अभिव्यक्ति होती है ।
- विश्वविद्यालय की स्थिति ज्ञान के भंडार के रूप में होती है, चाहे वह ज्ञान अप्रासंगिक ही क्यों न हो । ज्ञान ही समाहत होता है ।
- सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिये अनेकों प्रकार की विचारधाराओं का उदय होता है ।
- राजनैतिक सहयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है । निष्क्रिय जनसमूह को सक्रिय कर मताधिकार के लिये जाग्रत करना श्रमिक वर्ग के हितों के लिये संघर्ष, श्रमिक संगठनों की भूमिका आदि प्रमुख विशेषताऐं होती हैं।

- मताधिकार वाले जनसमूह को विचारधाराओं पर आधारित कार्यक्रमों के माध्यम से संगठित किया जाता है । राजनैतिक रूझानों को जनसंचार साधनों की सहायता से प्रभावित भी किया जाता है ।
- आर्थिक शक्ति विशिष्ट व्यक्तियों के हाथ में रहती है ।
- मनोरंजन का केन्द्र परिवार नहीं रहता है होटल आदि सार्वजनिक स्थान मनोरंजन का केन्द्र हो जाते है । स्वजनों का स्थान प्राय: मित्र वर्ग ले लेता है ।
- औद्योगिक समाज में वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान, उत्पादन की प्रणालियों के लिये किया जाता है ।

15.5.2 टेक्नोट्रोनिक (वर्तमान) समाज की विशेषताऐं

टेक्नोट्रोनिक समाज का निर्माण प्राविधिकी तथा इलेक्ट्रोनिक्स के साधनों विशेषत: कम्प्यूटर व संचार साधनों के प्रभाव द्वारा होता है ।

यह अनुमान प्रौद्योगिकी के आधार पर है कि 21 वीं सदी में मनुष्य की औसत आयु लगभग 120 वर्ष हो जायेगी । साइबर नेटिक्स तथा स्वचालन के प्रभाव से काम करने की आदतों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होंगे ।

विश्राम का अधिक समय मिलेगा । उपलब्धि मूल समाज मनोरंजन केन्द्रित समाज में बदल जायेगा ।

टेक्नोट्रोनिक समाज में वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान का उपयोग उत्पादन के साथ ही जीवन के समस्त क्षेत्रों को प्रभावित करने के लिये किया जायेगा । अब मनुष्य समाज असाधारण रूप से एक दूसरे के निकट आ गया है और आधुनिक विकसित साधनों से सदा परस्पर एक दूसरे के संपर्क में रहता है ।

- यन्त्रों का संचालन स्वचालन (आटोमेटिक) तथा साइबरनेटिक्स द्वारा होता है ।
- प्रमुख प्रश्न औद्योगिक कुशलता को समयातीत न होने देने श्रमिकों को सुरक्षा व लाभ में साझेदारी व अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित करोड़ो श्रमिकों की मानसिक कल्याण से संबंधित होगे ।
- शिक्षा सार्वजनीक (यूनिवर्सल) होने के साथ प्रतिभाषालियों के अग्रिम प्रशिक्षण की सुविधा भी देती है । बुनियादी समस्या सामाजिक प्रतिभा के विवेक युक्त दोहन की प्रभावकारी पद्धति को खोज निकालने की होती है ।
- बहुतांत्रिक नेतृत्व को राजनैतिक नेतृत्व की अनेक चुनौतियों का सामना करना होता है । राजनैतिक नेतृत्व में ज्ञान शक्ति का औजार हो जाता है तथा शक्ति अर्जन के लिये प्रतिभा का प्रभावशाली संचरणमोबिलाइजोन)) एक महत्वपूर्ण मार्ग होता है ।
- विश्वविद्यालय एक विचारालय होता है । वह राजनैतिक नियोजन तथा सामाजिक नवीनीकरण का उद्गम स्थल होता है ।
- सामाजिक संघर्षो को कम करने की बढ़ती हुई क्षमता, सामाजिक प्रश्नों को सुलभ करने के लिये अपेक्षाकृत अधिक समस्या समाधान कारक(प्रेगमेटिक) प्रवृति को जन्म देती है जो विचार धाराओं की सीमाओं से ऊपर उठकर विभिन्न समस्याओं को सुलझाती है ।

- शान्त व निष्क्रिय जनसमूह को सक्रिय करने के लिये राजनैतिक सहभागिता का अर्थ अत्यधिक जटिल निर्णयों में (जो औसत नागरिक की परिधि से बहुत दूर के होते है) भागीदारी बनाना होता है ।
- अधुनातन संचार पद्धतियों आदि के विकास के फलस्वरूप लाखों असमान्वित नागरिकों के वैयक्तिक समर्थन की सहायता से प्रतिभाशाली जनभावनाओं को जरूरत के अनुसार पैदा करने व जनता की तर्कवृद्धि पर नियंत्रण करने में सफलता प्राप्त करते है । ऐसे समय विश्व की समस्यायें, सुलझाने में दूरदर्शन आदि का महत्वपूर्ण योगदान होता है । भाषा के बजाय कल्पनाशीलता (इमेजरी) की भूमिका महत्वपूर्ण होती है ।
- आर्थिक शक्ति का अवैयक्तीकरण हो जाता है । राजकीय संस्थाओं, सेना सहित औद्योगिक संगठनों और वैज्ञानिक संस्थानों के बीच अत्यन्त जटिल आत्मनिर्भरता होती है । राजनैतिक शक्ति और आर्थिक शक्ति एक-दूसरे के साथ जुड़ जाती है ।
- समाज के अन्तर्गत परस्पर मैत्री का अभाव हो जाता है । संभावित परिवर्तनों के साथ ही अन्य परिवर्तन मनुष्य के व्यक्तित्व को सीधे प्रभावित करने की असीम क्षमता वाले हो जाते है ।
- टेक्नोट्रोनिक समाज में जीवन के हर क्षेत्र में वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान का उपयोग होता है ।

15.4 शिक्षा की वर्तमान स्थिति

आज शिक्षा से डाक्टर, इंजीनियर आदि तकनीकी व्यक्ति तो बन रहे है । पर वे दिशाहीन और बेरोजगार होकर भटक रहे है । भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई ने इन्हीं के लिये कहा था कि तकनीकी व्यक्ति जो पढ़ लिखकर तैयार हो रहे है । वे अधिक सुविधापूर्वक जीवन जीने की कामना लिये होते है । वे श्रम का कार्य स्वयं न कर नौकरों से कराने की इच्छा करते है । स्वावलंबी जीवन पसंद नहीं करते । इसी प्रकार के विचार एक दीक्षान्त समारोह में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने भी व्यक्त किये कि शिक्षा का उद्देश्य है, मनुष्य बनाना किन्तु वह उद्देश्य आज पूरा नहीं हो पा रहा है । वर्तमान शिक्षा आज मनुष्य को ऐश्वर्य और भोगों में रमाती है । आज शिक्षा केवल नौकरी का साधन है । मनुष्य को पूर्ण रूप से परमुखापेक्षी बनाती है । मनुष्य के अन्दर कमाने के हुनर को दबाने का साधन है । स्वतंत्र चिंतन शक्ति का अभाव समाज के लिये घातक हो रहा है । परिणाम स्वरूप मनुष्य स्वत्व की सत्ता को भूलकर परकीय सत्ता व महत्व के आधीन होता जा रहा है ।

15.4.1 संवेदनशीलता का अभाव

शिक्षा का संबंध मनुष्य की चेतना से है । मनुष्य की चेतना का संबंध संवेदना से है । आज शिक्षा से संवेदना सीमित हो गयी है । क्योंकि शिक्षा प्रकिया यांत्रिक हो गई है, यांत्रिकता के प्रभाव से ज्ञान के स्त्रोत के रूप में काम के अनुभव की मान्यता प्राय: समाप्त है । आज पढ़े लिखे लोगों की चेतना इस तरह संकुचित हो गई है कि सही-गलत, उचित-अनुचित विभेद की क्षमता लुप्त है । पढ़ा लिखा व्यक्ति, व्यवस्था के निर्धारित मानकों के अनुसार काम करने वाला साधन मात्र बना हुआ है । आज हर प्रकार की शिक्षा में नियमन से शिक्षा प्रकिया का

औपचारिक ढाँचा हिल गया है फिर भी शिक्षा के सभी बदलाव इसी अव्यवस्थित ढाँचे के बीच हो रहे है ।

15.4.2 शिक्षा की आधारभूत संरचना की अप्रासंगिकता

शिक्षा अभी तक आमजन के लिये स्वप्न बनी हुई है । आम लोगों की शैक्षिक के मसले का आयाम व्यापक है । आज भी 6 से 14 वर्ष की आयु के लगभग आधे बच्चे विद्यालय से बाहर है। अगर वे सभी बच्चे विद्यालय आने के बारे में सोचे तो देश की शिक्षा की आधारभूत संरचना चरमरा जायेगी इन बच्चों की विद्यालयी शिक्षा में स्वीकार करने की कोई ठोस तैयारी नहीं है । आमजन के बीच आज भी शैक्षिक स्थिति अस्पष्ट है ।

15.4.3 सिद्धान्त व व्यवहार में संबंध विच्छेद

आज शिक्षा में प्रौद्योगिकी व विज्ञान की प्रधानता से सिद्धान्त और व्यवहार में अलगाव है सृजनात्मक के लिये कोई स्थान नहीं है । जबकि सिद्धान्त और व्यवहार में एकता के लिये यह जरूरी है । आज शिक्षा विशिष्ट और विशेषज्ञ बनने के भावबोध में अवरूद्ध हो गई है । आमजन में विशेष उद्देश्य के रूप में साधारण जीवन शैली में अंतर बढ़ रहा है और आमजन के बीच अलगाव पैदा हो रहा है । समाज में अनेक मतभेद पैदा होने से एक दूसरे से कटकर अलग रहने की प्रकिया शुरू हो गई है । ज्ञान सृजन की प्रकिया में आमजन की सृजनात्मक भागीदारी का अभाव है । ज्ञान और सूचना के बीच अंतर का बोध आमजन को नहीं हो रहा है ।

15.4.4 शिक्षा में जीविकोपार्जन का माध्यम

शिक्षा की बदली अवधारणा में शिक्षा को जीविकोपार्जन का माध्यम और साधन समझा जा रहा है। आज धन संचय का पहलु शिक्षा प्रकिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है । जिसका उद्देश्य भौतिक संसाधनों का उपयोग और दिखावा है । व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा अब शिक्षा की व्यवस्थित प्रकिया के अनुशासन का एक अनिवार्य हिस्सा बनने की होड़ में प्रकृति का निर्धारण मांग के अनुरूप हो रहा है । सारा शिक्षा तंत्र बाजार की मांग के रूप में काम कर रहा है ।

15.4.5 शिक्षा में संवैधानिक प्रावधनों का उल्लंघन

शिक्षा में संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन वास्तव में चिंतनीय है । संविधान के अनुच्छेद 14 में समनता के अधिकार को देश की समानांतर शिक्षा प्रकिया सामाजिक विषमता को जन्म दे रही है। अनुच्छेद 15 के अनुसार भारत में नागरिकों के बीच अंतर का भी विरोध है । फिर भी सरकारी और गैर सरकारी पर धडल्ले से चल रही शिक्षा के लिये आधारभूत व्यवस्था की कमजोरी एक कलंक है । अनुच्छेद 16 में लोक नियोजन के संदर्भ में समान अवसर का प्रावधान है । किन्तु आमजन के बच्चों के लिये दोराम दर्जे की शिक्षा व्यवस्था कायम है । संविधान के अनुच्छेद 38 में सामाजिक न्याय हेतु सामाजिक व्यवस्था का प्रावधान है । देश में चल रही समानांतर शिक्षा प्रकिया से संविधान की भावना के अनुरूप सामाजिक व्यवस्था ध्वस्त हो रही है । समाज का निर्माण भी इस भावना के प्रतिकूल ही होगा । अनुच्छेद 39 के प्रावधान स्वतंत्र व गरिमामय वातावरण बच्चों में स्वास्थ्य के विकास की सुविधा समानांतर शिक्षा व्यवस्था के चलते दिवास्वप्न बन कर रह गई है । अनुच्छेद 46 के अनुसार अनुसूचित जाति व जनजाति के बच्चों के लिये शिक्षा का प्रावधान है किन्तु वर्तमान शिक्षा

व्यवस्था में इनके जीवन से जुड़े संदर्भों का शिक्षा प्रकिया में कोई स्थान नहीं है । जिससे शिक्षा उनके लिये रूचिकर नहीं हो पाती है और वे शिक्षा की ओर आकर्षित नहीं हो पाते । संविधान के 86 वे संशोधन के अनुसार राज्य कानून निर्धारित पद्वति से 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा । बाद में अनुच्छेद 13 (क) अपने या आश्रित बच्चे की 6 से 14 वर्ष की आयु की अवधि में बच्चे के माता-पिता या अभिभावक शिक्षा का अवसर प्रदान करेंगे । इस संशोधन से पहले संविधान के अनुसार प्रारंभिक शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी राज्य की थी । अब राज्य बढ़ी चतुराई से इस जिम्मेदारी से मुक्त हो गया है ।

15.4.6 शैक्षिक परिपेक्ष्य में बदलाव से लक्ष्य से भटकाव

बाजारीकरण के कारण शिक्षा के मूल्य के साथ शैक्षिक तत्वों की प्राथमिकता भी बदल गई है । शिक्षा व्यवस्था ने अब बाजार के व्यवसाय का रूप धारण कर मुनाफा कमाने के भाव को स्थापित किया है । शिक्षा की इस व्यवस्था में असत्य तथ्यों की प्रस्तुति बड़े धडल्ले से हो रही है । शिक्षा की इस व्यवस्था से आमजन को कोई सरोकार नहीं है । फिर भी आमजन अपना सरोकार ढूढ़ने के लिये व्यर्थ ही इधर-उधर भटक रहा है । इससे आज शिक्षा के बारे में काफी गलतफहमियां पैदा हुई है । शिक्षा की प्रकिया बाजार के प्रतिपादक भाव से प्रभावित है । शिक्षा व्यवस्था में प्रतिपादक का वर्चस्व कायम है ।

15.4.7 शैक्षिक संरचना में सृजनात्मक भागीदारी की गुंजाइश की कमी

शिक्षा व्यवस्था में अभी तक अपनाये शिक्षा शास्त्र के अनुसार आदेश निर्देश पर काम करने की संस्कृति प्रचलित है । शिक्षा का संचालन नौकरशाही तरीके से हो रहा है । इसमें सृजनात्मक सहभागिता संभव नहीं है । सारी सक्रियता एक निर्धारित प्रकिया के अर्न्तगत है । सक्रियता एक सीमित दायरे में कैद है । दायरे के अन्दर ही निर्देशित रहती है अर्थात सक्रिय होने का भ्रम है।

15.4.8 निजी संस्थाओं का बढ़ता हुआ वर्चस्व

निजी संस्थाओं के बढ़ते हुये जाल ने शिक्षा में व्यापार का स्वरूप ग्रहण कर लिया है । इन्हें शिक्षा की दुकानें कहना अधिक उपयुक्त होगा । इन संस्थाओं की लगातार बढ़ती हुई संख्या इस बात का प्रमाण है कि सरकार देश की भावी पीढ़ी को शिक्षा के संतोषजनक अवसर उपलब्ध कराने में पूर्णत: विफल रही है।

यह जरूरी नहीं है कि निजी शिक्षण संस्थाओं का शैक्षिक स्तर हमेशा गुणवत्तापूर्ण ही हो । निजी शिक्षा संस्थान आज सामाजिक अलगाव व विघटन के रूप में प्रमाणित हो रहे है । ये निजी संस्थान भारतीय संविधान के अनुसार शैक्षिक अवसरों की समानता की राह में बाधा उत्पन्न कर रहे है ।

15.4.9 कॉरपोरेट संस्कृति को स्वीकार करने की बाध्यता

शिक्षार्थी के जीवन में शिक्षा और जीवन अलगाव से आज ज्ञान बोझ में बदल रहा है । अत: उच्चस्तरीय तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान के साथ भाषा व सामाजिक ज्ञान भी प्रभावित हो रहा है।

शिक्षा प्रक्रिया में भेदभाव आदि का समाधान बाजारीकरण व निजीकरण में हो रहा है । यही कारण है कि कॉरपोरेट संस्कृति को उसकी मान्यता के अनुरूप स्वीकार करने की आज

बाध्यता है। पुस्तकीय ज्ञान शिक्षार्थी को अपने संसार से बहुत अलग दिखाई देता है । ज्ञान के नाम पर वहीं सहजता से वह अपनी संस्कृति से अलग दिखाई पड़ता है ।

15.4.10 लोक संस्कृति के स्तर पर विषयता

शिक्षार्थी आज खेलकूद की विषमता से जूझ रहा है । आज अभिजात्य वर्ग के खेल व खेल के साधन ही जीवन का अंग बने है । आमजन के बच्चों के खेलकूद का दायरा सीमित हो गया है । खेलकूद का आधार बदलने से लोक संस्कृति के स्तर पर विषमता बढ़ गई है; इस रूप में ज्ञान सृजन का अवसर लगातार कम हो रहा है । यही स्थिति लोक संस्कृति की भी है । आज गुरू का स्थान शिक्षक ने ले लिया है । शिक्षा देना अब पेट भरने का धन्धा हो गया है । शिक्षक का कार्य अब पेशा बन गया है जबकि शिक्षा का कार्य यांत्रिक नहीं है।

15.4.11 शिक्षा व वैश्वीकरण

भूमंडलीकरण के कारण शिक्षा में बाजार के मूल्य और मान्यता का वर्चस्व है । आज आमजन अपनी जीवनभर की कमाई बच्चों के भविष्य निर्माण के लिये उनकी शिक्षा में लगा रहे है क्योंकि वैश्वीकरण की आँधी में महंगाई तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा काफी महत्वपूर्ण हो गई है । इससे आमजन को बेहतर रोजगार पाने की गुंजाईश का अहसास होता है ।

विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में निरंतर होने वाले विकास के कारण रोजगारपरक विषयों के संदर्भ चार पाँच वर्षो में ही बदल जा रहे हैं । आज विद्यार्थी शिक्षा के बाजार में बना रहने के लिये जुगाड़ करना मुश्किल है क्योंकि विशिष्ट शिक्षा में हुए एक बदलाव के बाद दूसरे बदलाव में बने रहने के लिये भारी भरकम रकम की अतिरिक्त जुगाड की जरूरत होती है । परिणाम होता है कि मध्यम वर्ग के अधिकांश विद्यार्थी दूसरी बार अतिरिक्त पैसों की व्यवस्था नहीं कर पाते और तब पहली बार खर्च किए पैसे की प्रासंगिकता समाप्त हो जाती है ।

15.5 विज्ञान और प्रौद्योगिकी युग में शिक्षा का भविष्य

जब नाव डूब रही हो तो नौका संचालन और नौका निर्माण कला पर भाषण देना और सैद्धान्तिक वाद विवाद पूर्णत: अनुपयुक्त है । नौका आधार कहाँ और किनारा कहाँ, यह बात तब ही सार्थक है जब नाव सही सलामत हो । जब यह लगता हो कि अब तैर कर ही पार करना होगा, तब इन सब बातों का कोई अर्थ नहीं । आज प्रौद्योगिकी और विज्ञान के युग में मनुष्य का दावा है प्रकृति पर उसने विजय पा ली है । उसके समान शक्तिमान कोई नहीं है । आज मोटर रेस और वायुयान ने उसके पैरों की जगह ले ली है । दूरदर्शन उसकी आखों का पर्याय हो गया है । आज चिड़ियों की तरह उड़ना और मछली की तरह तैरना साधारण बात हो गई है । मनुष की सेवा में अनेकों घोड़ों की ताकत के समान विद्युत की शक्ति आज उपयोग में लायी जा रही है । यह सब विज्ञान और प्रौद्योगिकी का ही तो करिश्मा है ।

इसी युग शिक्षा के ढाँचे की ऐसी हालत हो गई है कि कहीं भी हाथ डालिये लगता है सब कुछ हाथ से निकल गया है । प्रवेश, परीक्षा, अध्यापन सत्र की नियमितता, डिग्री, स्तर, गुणवत्ता कहीं से भी शुरू करे कोई बिन्दु नहीं मिलता । वह केन्द्र बिन्दु ही गायब है जहां से आप वृत खींच सके और कुछ कह सके । पर आशा पर ही सारा संसार टिका है ।

यही कारण है कि आज का युवा वर्ग असंतुष्ट है और नाराजगी निरन्तर बढ़ रही है । अपने परिवार की जीवन भर की कमाई तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में लगाने के बाद भी

युवा वर्ग असंतुष्ट जीवन जीने को विवश है । फिर भी बाजारू मूल्य के दबाव के कारण प्रतिरोध के स्तर उभर नहीं पा रहे है ।

वैश्वीकरण की प्रकिया ने विद्यालयी, विश्वविद्यालयी, प्रौद्योगिकी और तकनीकी शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में शैक्षिक तत्वों को बदल दिया है । शिक्षा बाजारू मूल्य के अनुरूप प्रासंगिक बन गई है । परिणाम यह है कि शिक्षण व्यवस्था में अनेक शिक्षा व्यवस्था के विश्लेषण के बाद अब भविष्य की शिक्षा के बारे में भेदभाव पैदा हो गये है ।

15.5.1 सामाजिक प्रगति और शिक्षा का समय आ ही गया है

आज शिक्षा ज्ञान और व्यवहार में असंतुलन कायम करके मात्र अंको के प्रतिशत का खेल हो गई है जबकि शिक्षा का उद्देश्य समाज का निर्माण करना है । स्वामी रामतीर्थ ने कहा है यदि समाज डूबता है तो आप अवश्य डूबेंगे । यदि समाज ऊंचा उठता है तो आप अवश्य ऊंचा उठेंगे । यह विश्वास करना बिल्कुल मूर्खता होगी कि एक अपूर्ण समाज में पूर्ण मनुष्य हो सकता है । क्या हाथ शरीर से कटकर अपने का पूरी तरह बलवान बनाने की आशा कर सकता है । समाज की सर्वोच्च सत्ता मनुष्य को मानव बनाने में अपरिहार्य रूप से महत्वपूर्ण है । अत: सामाजिक प्रगति की अवहेलना करना संभव नहीं है । सामाजिक प्रगति के विषय में सबसे बड़ा व आधारभूत प्रश्न जीवन के आधारभूत मूल्यों का है । समाज की प्रगति इन्हीं मूल्यों से निर्धारित होती है । ये मूल्य संस्कृति द्वारा निश्चित किये जाते है ।

प्रगति की व्याख्या देश, काल, परिस्थिति और समाज के विचारों के अनुरूप परिवर्तनशील है । किसी भी प्रकार का परिवर्तन प्रगति नहीं कहला सकता । प्रगति स्वचालित नहीं होती । प्रगति में मनुष्य का अनिवार्यत: योगदान होता है । अत: मनुष्य को मनुष्य बनाना ही शिक्षा का लक्ष्य है ।

15.5.2 सुशिक्षित बनाना

गांधी ने हरिजन में लिखा था कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अशिक्षित पढ़े लिखे लोगों को जन्म दे रही है। आज लगभग सत्तर दशक के बाद भी गांधी जी का यह विचार उतना ही सत्य है जितना पहले था ।

सुशिक्षित कौन?

आज भी साक्षर और सुशिक्षित में अन्तर करना वक्त की जरूरत है । आज शिक्षा व्यवस्था का लक्ष्य शिक्षित बनाना प्राथमिकता से है । ग्रेसन कक में सुशिक्षित का अधिकार किसे दिया जाये । इस संदर्भ में उल्लेखनीय अभिव्यक्ति दी है । उन्होंने सुशिक्षित व्यक्ति के बारे में चार बिन्दु स्पष्ट किये है ।

- वह जो कुछ बोलता या लिखता है वह लाग लपेट रहित होता है
- वह पठित आदर्शों और आस्थाओं को व्यावहारिक धरातल पर लाता है और इनके लिये लड़ने का साहस दिखाता है ।
- माँ को बेटे के लिये प्यार के समान समाज के विकास के लिये ईमानदारी, सद्भाव व सहिष्णुता रखता है ।
- कठिन से कठिन परिस्थितियों में आशावादी बने रहता है ।

यही तो है आज की आवश्कता । शिक्षा के माध्यम से इसी प्रकार के शिक्षित वक्त की मांग है।

15.5.3 शिक्षा के विकास में बाधक तत्वों की पहचान

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था आपकी ही शर्तों और प्रतिबंधों के संकीर्ण दायरे में सीमित हो गई है । सबसे पहले जरूरी है कि शिक्षा के विकास में बाधक तत्वों की पहचान की जाये ।

15.5.4 सामाजिक बदलाव की दिशा तय करना

शिक्षा के संदर्भ में आमजन का असंगठन समाज में लगातार अलगाव पैदा कर रहा है। शिक्षा का विकास एक जटिल सामाजिक प्रकिया है । उचित दिशा में सामाजिक बदलाव के लिये नये शिक्षा शास्त्र का निर्माण जरूरी है । यही सामाजिक बदलाव के पक्ष में किया जाने वाला कार्य ही सच्चे अर्थों में शिक्षा शास्त्रीय कर्म है । इसके लिये शैक्षिक प्रकिया की संपूर्णता की स्पष्ट समझ आवश्यक है ।

15.5.5 शैक्षिक प्रकिया में सृजनात्मकता के लिये स्थान

इसके लिये सही दिशा में लगातार चलना जरूरी है । हर स्तर पर साथ मिलकर चलने की प्रतिबद्धता कायम करना आवश्यक है । सबसे पहले वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में आलोचनात्मक विश्लेषण की कार्ययोजना बनानी होगी । तत्पश्चात योजना की व्यावहारिक रूप देने के लिये विचार विमर्श की प्रकिया को उस सीमा तक जारी रखना जहां वह आमजन का मुद्दा बन जाय । जन प्रतिरोध का प्रमुख मुद्दा शैक्षिक मानकों में बदलाव बने ।

15.5.6 शैक्षिक मानकों में बदलाव

शैक्षिक मानकों के आधार पर शैक्षिक प्रकिया का आकंलन होता है । शैक्षिक मानकों को बनाने का काम भू-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में करना होगा । इससे आमजन को जीवन के अनुभव के लिये शैक्षिक प्रकिया में अधिकाधिक अवसर का विस्तार होता है ।

15.5.7 व्यक्ति केद्रित मूल्यों के स्थान पर सामाजिक मूल्य केन्द्रित शिक्षा

आज की शैक्षिक प्रक्रिया में व्यक्ति केन्द्रित मूल्य पर आधारित क्रिया चल रही है । व्यक्ति के स्थान पर सामाजिक मूल्य आधारित शिक्षा प्रकिया जरूरी है । सामाजिक मूल्यों की चेतना की समृद्धि से ही सामाजिक मूल्यों के बोध का दायित्व पूरा किया जा सकता है । इसके लिये अनुकूल सामाजिक संरचना की जरूरत है ।

15.5.8 शैक्षिक प्रकिया को सामाजिक संरचना से जोड़ना

जीविकोपार्जन के द्वेश में शिक्षा प्रक्रिया का बाजारू मूल्य से बाहर निकलना जरूरी है । इसके लिये बाजारू संस्कृति में बदलाव के कठिन कार्य को करना है । इस कार्य को सामाजिक संरचना के माध्यम से ही आगे बढ़ाया जा सकता है ।

15.5.9 समान शिक्षा प्रणाली के अस्तित्व की समृद्धि

आमजन के लिये आज दोयम दर्जे की शिक्षा व्यवस्था चल रही है । इसके लिये वस्तुत: आर्थिक अवरोध अधिक नहीं है अपितु प्रशासनिक इच्छा शक्ति की कमी है । अत: यह जरूरी है कि समान शिक्षा प्रणाली के काम को प्रमुखता दी जाए । इसके लिये समान शिक्षा प्रणाली के प्रतिकूल चलाये जा रहे कार्यक्रमों की व्यवस्था को खत्म करना आवश्यक है ।

15.5.10 विशेष वर्ग व आमजन की शिक्षा व्यवस्था के मध्य असंतुलन की समाप्ति

आज की शैक्षिक प्रक्रिया में आमजन के लिये खर्च की न्यूनतम व्यवस्था और कुछ खासवर्ग के लिये अधिक खर्च के बीच असंतुलन धड़ल्ले से चल रहा है । इस असंतुलन को

समाप्त करना आवश्यक है । शैक्षिक व्यवस्था की यह अप्रासंगिकता की समाप्ति जरूरी है । कुछ लोगों के लिये जो खास शिक्षा की व्यवस्था की जाती है वह सर्वथा अनुचित है ।

15.5.11 शिक्षा में सामान्तर कार्यक्रमों के लिये अनियमित निवेश पर प्रतिबन्ध

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में समानान्तर कार्यक्रमों का प्रावधान प्रचलित है । इन कार्यक्रमों के लिये अनियमित निवेश पर तत्काल निषेध लागू करने की जरूरत है अन्यथा आमजन के हित के लिये कार्य करने वाली शैक्षिक प्रक्रिया के पूर्णत: ध्वस्त हो जाने का खतरा है । परिणाम यह होगा कि शिक्षा की व्यवस्था सभी लोगों के लिये गुणवत्तापूर्ण हो तथा इस गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को प्राप्त करने के अवसर सभी के लिये समान हों यह स्थिति समाप्त हो जायेगी और समाज फिर अलगाव की ओर चल पड़ेगा । जिससे शिक्षा व्यवस्था के पुनर्निर्माण का कार्य असंभव तो नहीं पर अत्यंत कठिन हो जायेगा ।

15.5.12 शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य को मानव बनाना

मनुष्य की मानव बनाने की प्रक्रिया में संतुलन का विशेष महत्व है । असंतुलन से मानव की श्रेणी में आ जाता है और संतुलन से मानव की श्रेणी में इसका अर्थ है अधिक भौतिक व अध्यात्मवाद के मध्य समन्वय, सामंजस्य और पूर्ण संतुलन । आज की शैक्षिक प्रक्रिया में यह आवश्यक है कि मानवता और दानवता में संतुलन रहे । इसके लिये शैक्षिक प्रक्रिया में इन तत्वों को जोड़ना जरूरी है ।

- चरित्र चित्रण
- ज्ञान अर्जन करने की शक्ति व सामर्थ्य
- स्वाध्याय
- रूचि के अनुकूल जीविकोपार्जन की कुशलता
- विवेक और
- सामाजिक परम्पराओं व मान्यताओं आदि का परिज्ञान

15.5.13 शैक्षिक प्रक्रिया का आधार भारतीय संस्कृति

आज शिक्षा व्यवस्था के संबंध में भारतीय संस्कृति के संदर्भ में किसी प्रकार का संभ्रम नहीं है । विचारों की विविधता के बावजूद सभी भारतीय एक मत हैं कि शिक्षा का आधार भारतीय संस्कृति को ही होना चाहिए । हमारी राष्ट्रीय अस्मिता ही शिक्षा का आधार बनेगी । हम जो कुछ हैं हमारी जो पहचान है वह कायम रखें यही हमारी शिक्षा को करना है । उक्त संदर्भ में विश्व कवि रविन्द्र नाथ टैगोर के विचार निश्चय ही अनुकरणीय है । उन्होंने पढ़े लिखे लोगों के संदर्भ में कहा कि हम अपने ही देश में विदेशी जैसे है, आज भी शिक्षा की वही अवस्था है कि वह भारतीय संस्कृति पर आधारित जीवन से अलग-थलग पड़ी है ।

15.5.14 संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्

प्राचीन सामाजिक संगठन की स्थिरता की तुलना में आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के त्वरित विकास के साथ सामाजिक संगठन की स्थिति पूर्ण रूप से बदल चुकी है । आज प्रथाओं, परम्पराओं और विश्वासों का मूल्य घट रहा है । नैतिक मूल्यों की समाप्ति व सामाजिक विभेद बढ़ रहे हैं । व्यक्तिवाद और विशेषीकरण का विकास होकर अर्थ की महत्ता बढ़ रही है । सामाजिक परिवर्तन के इस युग में नैतिक गुणों का महत्व घटकर समाज में तनाव व संघर्ष बढ़

रहे हैं । जब व्यक्ति और समाज के जीवन में सुख शांति होगी तभी सामाजिक संगठन की चरितार्थता होगी । आज फिर से जरूरत है ऋग्वेद के इन श्लोकों पर आधारित समाज की ।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते । । 1/0191/2

समानी व आकूतिः समाना हृच्दयाणि वः ।

समानमस्तु वो मनों यथा वः सुसहासति । । ऋग्वेद 10/191/14

अर्थात सभी मनुष्य भली प्रकार मिल जुल कर रहें । सब लोग प्रेमपूर्वक परस्पर वार्तालाप करें । सबके मन में एकता का भाव हो । सब अवरोधी ज्ञान प्राप्त करें । विद्वान जिस प्रकार सदा से ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करके उपासना करते रहे है । उसी प्रकार तुम भी ज्ञान और उपासना में दत्तचित्र रहो । सबके संकल्प एक से हो । सबके आशय एक से हो । सबके मन में एक सी ऊंची भावना हो । सब लोग परस्पर-सहयोग करते हुए अच्छे ढंग से अपने कार्यों को पूरा करें ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है की भू मंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति पर आधारित विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था ही आज की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः यही आधार वाक्य शिक्षा का भी आधार हो ।

15.6 मूल्यांकन प्रश्न

1. नीचे लिखी विशेषताओं में से टेक्नोट्रोनिक समाज की विशेषता है?
   (क) सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिये अनेक विचारधाराओं का उदय ।
   (ख) यन्त्रों का संचालन स्वचालन (आटोमेटिक) तथा साइबरनेटिक्स द्वारा ।
   (ग) वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान का उपयोग उत्पादन प्रणाली के लिये ।
   (घ) बहुतंत्रवादी नेतृत्व की आधारशिला नव अर्जित सम्पत्ति ।
2. विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अंर्तसंबंध की अवस्थाऐं है?
   (क) दो (ख) चार (ग) तीन (घ) एक
3. नीचे लिखे कथनों में से सत्य और कथन छांटिए कथन के आगे दिये कोष्ठक में 'सत्य के लिये स' और असत्य के लिये 'अस लिखें?
   (क) आज का समाज कृषि मूलक है ।
   (ख) हार्ट ने प्रगति की कसौटी लंबी आयु को माना है ।
   (ग) हाब हाऊस प्रगति की कसौटी के रूप में चौदह बिन्दुओं की मान्यता देते हैं ।
4. वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अशिक्षित पढ़े लिखे लोगों को जन्म दे रही है । यह कथन किसका है?
   (क) जवाहर लाल नेहरू (ख) महात्मा गांधी
   (ग)रविन्द्र नाथ टेगोर (घ) सरदार वल्लभ भाई पटेल
5. स्वामी रामतीर्थ ने समाज के महत्व के बारे में क्या कहा है?

6. सुशिक्षित का अधिकार किसे दिया जाय? इस संबंध में ग्रेसन कर्क ने कितने बिन्दुओं की अभिव्यक्ति दी है?

   (क)चार (ख) छः (ग) दस (दो)

7. शिक्षा की वर्तमान स्थिति के संदर्भ में किन्हीं पांच बिन्दुओं की प्राथमिकता के आधार पर विवरण दीजिए?
8. शिक्षा का वैश्वीकरण होने से समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? इस प्रभाव से मुक्ति के ठोस उपाय अपने स्वतंत्र चिन्तन के आधार पर लिखिये?
9. वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन किस प्रकार किया जा रहा है?
10. विज्ञान और प्रौद्यौगिक युग में शिक्षा के भविष्य के संदर्भ की प्रमुख विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा कीजिए?

15.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्ट, च. शे. एवं पंचोली, ब. प्र. शिक्षा के बढ़ते चरण, कृष्णा ब्रदर्स कचहरी रोड, अजमेर (राज.)
2. GOVT.; OF INDIA, 2002. The National Human Development report, 2001, planning commission, New Delhi
3. Govt. of India, 2003 India 2003, A Reference amnual, Ministry of information and board cating New Delhi.
4. जैन, द. 1985 समाज एवं संस्कृति, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (मध्यप्रदेश)
5. कपूर श्या. चं. 1991 बदलते समाज की ओर, आशा प्रकाशन गृह करोलबाग, नई दिल्ली-110005
6. कुमार, अ. 2006 शिक्षा की मुक्ति, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राईवेट लिमिटेड, बी-7 सरस्वती काम्पलेक्स सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092
7. Kumar, A. 2001 Social transfer nation In Modern India, sarup, New Delhi.
8. Kuppuswamy, B1987 Social change in India Vikas Publishing House, New Delhi.
9. Ogburn, N.F. 1986 Social change dell. Newyork.
10. पांडे, रा. श 1991, शिक्षा वर्तमान संदर्भ में, बोहरा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद-211001
11. Sharma S.L. 1986 Development socio-Cultural Dimensions, Rawat Publication, Jaipur.

12. शास्त्री, ग. मु. 2004, शिक्षा विज्ञान, अमर जैन साहित्य संस्थान, गणेश विहार, सेक्टर 11, उदयपुर (राज)
13. Srinivas, M.N. 1986 India Social structure, Hindustan, Publishing corporation Delhi.
14. वालिया, जे. एस. 2008, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास अहम् पाल पब्लिशर्स, एन. एन. गोपालनगर, जालन्धर

ISBN - 13/978-81-8496-307-6